समर्पण

पंजाब की आत्मा

महाबली महाराजा रणजीत सिह

को

दर्पण

महाराजा रणजीत सिंह का राज सरकार-ए-खालसा

1839

परिचय

धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान का वह गुण है जिसके अधीन प्रत्येक भारतीय नागरिक की एकता की भावना को अक्षुण बनाया गया है । स्वतंत्रता संग्राम से सदियों पहले से भी भारतीय प्रशासक इस बात के पूर्ण ज्ञाता थे । इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत पुस्तक-''पंजाब का गौरव महाराजा रणजीत सिंह'' से मिलता है । महाराजा रणजीत सिंह ने जिस उदारता और विवेकशीलता से धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपने जीवन में संजो कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया था वह सदा के लिए एक प्रकाशस्तम्भ रहेगा । वास्तव में उन्होंने इतनी लम्बी अवधि तक लोक सेवा का जो व्रत धारण किया था वह इसी सिद्धांत का चमत्कार था ।

महाराजा रणजीत सिंह ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के आधार पर अपनी प्रजा में जिस प्रकार धर्मनिरपेक्षता की भावना को जागृत किया उसका उदाहरण बहुत कम मिलता है । उनके द्वारा प्रदर्शित पथ आज भी पूर्णतया उपयुक्त है और हमारे समाज को एक सूत्र में बाँध सकता है ।

राष्ट्र की भावनात्मक एकता को प्रमुख स्थान देते हुए पंजाब सरकार समय-समय पर ऐसे प्रकाशन करती रहती है जिससे देशवासियों को प्रेरणा एवं उत्साह मिलता रहता है । प्रस्तुत पुस्तक लोक सम्पर्क विभाग द्वारा पूर्व प्रकाशित पंजाबी संस्करण का हिन्दी रूपांतर एक ऐसा ही प्रयास है । मुझे पूर्ण आशा है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी में अनूदित होने के कारण अधिक से अधिक पाठक इसका लाभ उठायेंगे और एक अच्छे शहरी बनकर देश और समाज की सेवा भी कर सकेंगे ।

एस. एल. कपूर
वित्त आयुक्त (गृह) एवं
लोक सम्पर्क विभाग पंजाब

पंजाब, पंजाबीयत तथा महाराजा रणजीत सिंह

— डा० हरनाम सिंह शान

पंजाब उसका है जो पंजाब को प्यार करता है। पंजाबी उसके हैं जो उन्हें प्यार करता, सम्मान देता तथा स्वाभिमान के साथ जीने के लिए उत्साहित करता है, जो उनकी भावनाओं का प्रतिनिधित्व तथा अधिकारों की रक्षा करते हुए, उनके लिए मर मिटने के लिए भी तैयार रहता है।

पांच नदियों वाले पंजाब ने ही, आज से दो सौ साल पहले, एक ऐसे स्वाभिमानी तथा तेजस्वी सुपुत्र को जन्म दिया था, जिसने इस को मरते दम तक भी प्यार किया और अन्ततः इसकी सेवा संरक्षण में, आत्मोत्सर्ग कर दिया।

पंजाबियों ने भी सामूहिक रूप में जितना स्नेह-सम्मान उस महान् पंजाबी, अर्थात् रणजीत सिंह को दिया था, उन्होंने इतना कदाचित किसी अन्य पंजाबी, अथवा ग़ैर-पंजाबी को कभी दिया हो। किसी एक व्यक्ति के निधन पर शायद ही उन्होंने सामूहिक रूप में इतना रुदन तथा विलाप किया हो जितना के वे महाराजा रणजीत सिंह के 27 जून, 1839 को आखें मूंद जाने से शोक संतप्त हुए थे। तभी तो पंजाब हृदयों के मर्मज्ञ, समकालीन तथा उत्तरकालीन कवि, उनके विलाप तथा भावों की अभिव्यक्ति करते लिखते हैं —

---

1. उनकी ऐसी शोक संतप्त दशा का वर्णन करते हुए, पंजाब के इतिहास का लेखक ख़ाजा सय्यद मुहम्मद लतीफ लिखता है —

The drums beat mournfully, the musicians sang meloncholy dirges... This, combined with murmuring of a vast mourning crowd, whose anxious faces bore testimony to the grief and affliction inwardly felt by them, and to their love for their departed master, whom they adored, and who had loved them, gave the whole scene a most malancholy aspect. Latif, K. B. Syad Muhammad, History of the Punjab from the remotest antiquity to the present time, Calcutta 1891, p. 494.

1. हाए मरदाने! जग जाने रणजीत सिंह।
   तेरे बिन काने! जग बीच तीन काने हैं।[2]

2. हिन्दुन की हिन्द जरी, सिंघन की जिंद जरी ...
   जर गयो सुहाग भाग सगरी पंजाब के।[3]

3. जाफर बेग जहान विच पिआ रौला,
   अज उलट गई हिन्द दी पातशाही ।[4]

उस रात किसी रसोई में आग नहीं जली थी। ब्रिटिश भारत के तब के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड की महाराजा साहब के साथ 1838-39 में हुई मुलाकात के समय उपस्थित उनके मिल्टरी सैक्रेटरी, कैप्टन ओज़बरन ने अपने अन्तिम पत्र में लिखा था :

"आप उनकी मृत्यु के कारण पैदा हुई पीड़ा की तीक्षणता को शब्द भी नहीं दे सकते।[5] लाहौर से विदा होने से एक दिन पहले लिखे पत्र में अपने देशवासियों को यह भी उसने बताया था : "जिन अहसासों और भावनाओं के साथ उन्हें प्रत्येक व्यक्ति प्यार करता और सम्मान देता रहा है, वह इतने गहन तथा हार्दिक थे कि उनके आदेशों, अनुदेशों तथा संकेतों (जब वे बोलने से रुक गये थे) का अन्तिम श्वास तक, अधिकाधिक दृढ़ आज्ञाप्रियता के साथ पालन किया जाता रहा है।[6] मौके के गवाह, डा० हानिग बर्गर, ने उनकी शव-यात्रा का उल्लेख करते हुए लिखा था कि "उसे देख कर हमारे दिल धड़क रहे थे।"[7]

---

2. कवि जय सिंह (देखिए : कान्ह सिंह, गुरशब्द रत्नाकर महान कोश, पटियाला - 1930, पृष्ठ 763-64)

3. ज्ञान सिंह, ज्ञा. तवारीख खालसा, स्यालकोट - 1892, जिल्द 3, भाग - 1

4. जाफर बेग मीआं, बैंतां सरकार रणजीत सिंह कीआं जां सीहरफी की 1955 ई० की पाण्डुलिपि स: 21

5. Osborne, Capt. W. G. The Court and Camp of Runjeet Singh. London-1840, Indian ed., Calcutta-1952, p. 81.

6. Ibid., p. 79.

7. Honighberger, Dr. J. M., Thirty Five Years in the East : Experiments and Historical Sketches, relating to the Punjab and Cashmere, London-1852, p. 99.

सतारा के संग्रहालय में सुरक्षित एक मराठी पत्र का समकालीन लेखक बताता है कि "महाराजे की चिता के इर्द गिर्द एकत्रित भीड़ ने उस पर, व्यग्रता से, लपकने तथा उनकी देह के साथ ही अपने आपको जला लेने का जो स्वतः यत्न किया था, उसे बड़ी कठिनाई से नियंत्रित किया गया तथा रोका गया था।"[8] 27–28जून 1839 को "पंजाब अखबार" में लिखा है कि "उनके निधन तथा दाह संस्कार के समय जो दुःख एवं शोक हर उम्र, लिंग तथा धर्म के लोगों ने महसूस किया था तथा जो हाहाकर तब लाहौर में मचा था, उसे बयान करने में दिल व्यथापूर्ण हो जाता है।"[9]

ऐसे व्यापक विलाप, ऐसे सामूहिक हाहाकार का कारण, महाराजा रणजीत सिंह का पंजाब तथा पंजाबियों के साथ किया अजस्र प्यार, उनकी सेवा तथा सुरक्षा के लिए किया आजीवन संघर्ष तथा उनका मान-सम्मान बढ़ाने के लिए किया गया ऐसा प्रयास था जो उनके पूर्व कभी भी किसी अन्य ने नहीं किया था। उनकी कल्पना को पहले कभी किसी ने इस प्रकार आंदोलित नहीं किया था, उनके सपनों को कभी भी किसी ने भी इस प्रकार साकार नहीं किया था, जैसे महाराजा रणजीत सिंह कर गये थे। उनकी शताब्दियों की गुलामी की श्रृंखलाएं तोड़ने, उनकी सम्पत्ति तथा सम्मान का अपहरण करने वालों की धारा मोड़ने तथा उत्तरी भारत से अफगानी राज्य का सर्वदा के लिए उन्मूलन कर देने के लिए भी जो संघर्ष उन्होंने किया था, वह भी तब तक किसी और के हिस्से नहीं आया था। इसी तरह, उनकी बिखरी हुई शक्ति को संजोने, उनमें, सांझी राष्ट्रीय भावना उभारने, उनके अधिकारों में पंजाबीयत का गर्व जगाने, उनकी बलबुद्धि को एक सामान्य तथा स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए उपयोग में लाने हेतु जो पद्धति उन्होंने बनाई और सम्पन्न की, उसका तो उनसे पूर्व किसी को ध्यान मात्र भी नहीं था, इसी प्रकार उस सांझे तथा संपूर्ण राज्य के ढांचे के निर्माण

---

8. "The whole crowd that had assembled, attempted to jump in it, but were with difficulty prevented". (: A Marathi News-letter on the Maharaja's Death by G. S. Sardesai, R. B., in Maharaja Ranjit Singh First Death Centenary Memorial, ed. by Professors Teja Singh & Ganda Singh, Amritsar-1939, p. 49).

9. : Panjab Akhbar, dated 27 & 28 June, 1839. : National Archives of India, Secret Correspondence, 115-17 of 16.10.1839 and 78-80 of 4.12.1839

में प्रत्येक पंजाबी को उसका भागीदार अथवा हिस्सेदार बनाने तथा उसमें शान्ति, न्याय और समृद्धि लाने की भी जो योजना उन्होंने बनाई थी, वह भी मानो उन तक ही सीमित थी।

इसी लिए, वे केवल पंजाब के ही नहीं पंजाबी दिलों के भी बादशाह थे। पंजाब का शेर (शेरे पंजाब) तथा एशिया का नेपोलियन, बिस्मार्क अथवा महम्मद अली कहने में गर्व का अनुभव करते रहे हैं। उनके एक समकालीन इतिहासकार थोर्नटन ने तो उनसे भी महान तथा विलक्षण व्यक्ति माना है।

"रणजीत सिंह की मिश्र के महमत अली तथा फ्रांस के नेपोलियन के साथ तुलना की गई है। मि. जैकोमोंट ने उन्हें "लघुआकार बोनापार्ट" कहा है। कुछ बातों में तो वे दोनों से मिलते जुलते हैं। परन्तु उनकी परिस्थितियों तथा हैसियत के प्रसंग में, उनके चरित्र का मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि वे दोनों की अपेक्षा शायद अधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे।"[10] आदि काल से डलहौजी के समय तक के भारत का इतिहास, तीन जिल्दों में लिखने वाले जॉन मार्शमैन ने तो यहां तक माना है कि – "वे, अपने समय में, कुस्तुनतुनिया से लेकर पीकिंग तक सब से बड़े तथा एक असाधारण मनुष्य थे।"[11] उनके एक उत्तरकालीन देशवासी डा० सर गोकुल चन्द नारंग लिखते हैं।

"महाराजा रणजीत सिंह (धार्मिक नेताओं के अतिरिक्त) उन्नीसवीं शताब्दी के सब से महान हिन्दुस्तानी थे। उन्होंने एक गिरी और हारी हुई कौम को एक बार फिर पूर्ववत प्रभुत्व की स्वामिनी बना कर, अपने पैरों

---

10. Thornton, T. H., History of the Panjab, and of the Rise and Progress and Present Condition of the Sect and Nation of the Sikhs, London-1846, Vol. II, p.174. Jacquemontvi, Letters from India, describing a journey in the British Dominions of India, Tibet and Cashmere during the years 1829-1831, undertaken by the order of the French Government, translated from French by Edward Churton, London-1834, in his letter dated October, 1829.

11. Marshman, J. C., History of India from the earliest period to the close of Lord Dalhousie's Administration, 3 Vols., London-1867, Vol. 1, p. 39.

पर खड़ा कर दिया था, तथा हिन्दुओं को लड़ने और जीतने की कला पुनः सिखा दी थी। वे सम्राट चन्द्र गुप्त के पश्चात्, पहले हिन्दुस्तानी थे जिन्होंने विदेशी आक्रमणों के प्रवाह को पीछे मोड़ दिया था तथा आक्रमणकारियों को उनकी कन्दराओं तथा पर्वतों की तरफ पीछे धकेल दिया था जहां से निकल कर वे भारत पर आये दिन आक्रमण करते रहते थे। वे केवल एक महान योद्धा ही नहीं , उच्च कोटि की राजनीतिक प्रतिभा के स्वामी तथा एक महान् नीतिवान थे।[12]

1839 में जब उनका निधन हुआ था, तो संपूर्ण देश में एक बड़ा गहरा व्यापक शोक छा गया था,[12-ए] तथा प्रत्येक व्यक्ति ने इस तरह महसूस किया था जैसे कि उसका अपना पिता और संरक्षक उससे छीन लिया गया हो। यह बात तो हर जगह कही गई थी कि उनकी मृत्यु के कारण पंजाब की भूमि विधवा हो गई है।"[12-बी]

तभी तो यह कहना और मानना कोई मिथ्योक्ति अथवा अतिशयोक्ति नहीं –

माण नाल कहिंवदे नेपोलीयन फ़रंगी जिहन्
एहो सी पंजाब दा महाराणा रणजीत सिंह।
सदीआं दी कट के गुलामी पंजाबीआं दी
तणिया आजादी दा ताणा रणजीत सिंह।
गजदा लाहौर विच कंबदा नीपाल चीन,
पंजां दरियावां दा सी राणा रणजीत सिंह।
जित के पिशौर जिस काबल नाकाबल कीता
कदे न पंजाब ने भुलाया रणजीत सिंह।

---

12. Tripathi, Prof. L. K. & Har Dayal Singh (ed.), The Maharaja Ranjit Singh Centenary Volume, Cawnpore-1940, p. 45.

12-A. The event spread universal affliction throughout the Punjab. (M' Gregor, Dr. W. L., The History of the Sikhs, containing the Lives of the Gurus, the History of the Independent Sirdars or Misals and the Life of the Great Founder of the Sikh Monarchy, Maharaja Ranjit Singh, London-1846; reprint, Patiala-1970, Vol. II, p. 4.

12-B Narang, Dr. Sir Gokul Chand, Transformation of Sikhism, Lahore-1912; 5th ed., New Delhi-1960, p. 182.

खख्खड़ी दी डलीआं दे वांग पाटी कौम सारी
इको लड़ी विच परोया रणजीत सिंह।
मोइआ रणजीत सिंह सी, होइआ सी पंजाब रंडा
ताहीउं लोकी कूकदे जां मोइआ रणजीत सिंह।[13-ए]

शेरे पंजाब की ऐसी पीड़ाजनक मृत्यु से भी पैंसठ वर्ष बाद, उनके प्रभुत्व के स्वामी बन चुके विदेशी राज्य के एक महान कर्मी, सरलैपल ग्रिफिन ने बताया था :

"उनका नाम पंजाब में अभी भी हरेक की ज़ुबान पर चढ़ा हुआ है। उनकी तस्वीर अभी भी प्रत्येक झोंपड़ी और भवन पर लगी हुई है। अमृतसर तथा दिल्ली में हाथीदांत पर कार्य करने वाले कलाकारों की कृतियों का रुचिकर विषय अभी भी वे ही हैं।"[13] उनके ऐसे गुणों, विजयों तथा योगदानों, उनकी ऐसी लोक प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता को ही मुख्य रखते हुए पाकिस्तान के निवासी सय्यद वहीद-दीन ने, हाल ही में, बड़े गर्व तथा विश्वास के साथ कहा है :

"रणजीत सिंह लोगों की कल्पना में अभी भी वैसे ही जीते हैं जैसे वे अपने भौतिक जीवन के दौरान जीते रहे हैं। वे केवल वहीं, अर्थात् भारत में ही नहीं जी रहे जहां सिख अब रह रहे हैं, बल्कि वहां भी जहां वे पाकिस्तान बनने से पहले रह रहे थे। क्योंकि वे मुसलमानों और सिखों के एक तुल्य सांझे व्यक्ति थे, इस लिए मुसलमानों ने, उनको, सिखों के पाकिस्तान से निकलने के समय उनके साथ बिदा नहीं होने दिया था।"[14] कुछ आगे चल कर उन्होंने यह भी लिखा है।

"लोगों के हृदयों में रणजीत सिंह का लोकप्रिय इमेज चित्र एक विजयी नायक अथवा एक बलशाली सम्राट की अपेक्षा, एक दयालु पितामह के रूप में अधिक चित्रित है। वे इन तीन गुणों तथा रूपों के पुंज थे, परन्त

---

13 शेरे पंजाब की जुन, 1939 में मनायी गई मृत्यु - शताब्दी के समय मेरी रचित तथा प्रकाशित कविता का प्रथम चरण।यह कविता बाद में खालसा समाचार, अमृतसर में सम्बन्धित अंक में प्रकाशित हुई थी।

13 Griffin, Sir Lepal, Ranjit Singh, Oxford-1905, p. 90.
14 Waheed-ud-din, The Real Ranjit Singh, Karachi 1965, p. 5.

उनकी दयालुता उनकी आन-शान तथा राज्यशक्ति को पीछे छोड़ आई है और आज तक जीवित है ।[15]

इतिहास की इस सत्यता को कौन अस्वीकार करेगा कि पंजाब, 1001 ई० में, राजा जयपाल व सुलतान महमूद के हाथों हार जाने के पश्चात् भारत के ऐश्वर्य तथा सम्मान की लूट मार के लिए विदेशी हमलावरों के लिये मानो पायदान बन गया था । कभी कोई गज़नबी, कभी कोई गौरी, कभी कोई नादिरशाह और कभी कोई अहमदशाह बुरी तरह से इसके पीछे पड़कर समूचे देश के धन-माल तथा बहु-बेटियों को लूट कर गज़नी और काबुल की शोभा बनाता रहा था । पंजाब निवासियों की ये कहावतें

1 हकूमत नवाब अबदुला
  चक्की रही ना चुल्हा ।

2 खाधा पीता लाहेदा
  बाकी अहिमदशाहे दा ।[16] ए

इसी न्यायपूर्ण स्थिति के ही एक भयानक पक्ष की मुँह बोलती तस्वीरें हैं ।

अठारह वर्षों के नवयुवक रणजीत सिंह का पाला भी तो सर्वप्रथम इसी अहमदशाह दुर्रानी के पोते ज़मानशाह के साथ ही पड़ा था । उसी को उन्होंने 1798 वाले हल्ले के दौरान ऐसी चुनौती दी थी कि तब वह लाहौर से ही वापस काबुल चला गया था ।[16]

---

15. Ibid, p. 9.

16 ए पंजाब के दो ऐतिहासिक मुहावरे, कहाबते अथवा लोकोक्तियाँ ।

16 समकालीन इतिहासकार, मुंशी सोहन लाल एवं सय्यद बूटे शाह बताते हैं कि सरदार रणजीत सिंह ने अपने मुठी भर साथियों सहित, किले के सम्पन्न बुर्ज पर असीम जोश के साथ, तीन बार धावा किया था और शाह ज़मान को खुले टकराव के लिए ललकार आये थे । रणजीत सिंह ने तो गरज कर कहा था : ए अहिमदशाह के पोते, "बाहर आ और सरदार चढ़त सिंह के पोते के साथ दो हाथ कर ले ।" 'देखिए : सूरी, मु. सोहन लाल, उमदा-तु-त्वारीख, लाहौर 1885-9, दफतर 2, पृष्ठ-39, बूटे शाह, सय्यद, तवारीखे-पंजाब, पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी, लाहौर में सुरक्षित सन् 1948 की पाण्डुलिपि, ब. 638.

इस ललकार को, शेरे पंजाब की 1939 में मनाई गई मृत्यु शताब्दी के समय लिखित एक बार मैंने इस प्रकार प्रस्तुत करने का यत्न किया था ।

रणजीत सिंह ने अटक तक इसका पीछा किया था ।[17] और उसको पंजाब में से निकालने के तुरन्त बाद, लाहौर के कुछ प्रतिनिधियों के बुलावे पर, 7 जुलाई, 1799 को इसकी राजधानी पर कब्ज़ा कर पंजाबियों को सदियों के पश्चात् सुख की सांस दिलवाई थी ।[18] तभी उन्होंने अपने साथियों और सिपाहियों की एक तुरन्त घोषणा द्वारा यह स्पष्ट कह दिया था कि लाहौर हमारा अपना है और इसके सभी निवासी हमारे भाई-बहन, हमारे सगे संबंधी हैं । इसलिए हरेक के साथ बड़े आदर से व्यवहार करना है । किसी प्रकार की लूटमार अत्याचार और दुर्व्यवहार करने वालों को कठोर दण्ड का भागी बनना पड़ेगा ।[19]

यह घोषणा उस पंजाब की राजधानी में की जो उस समय चारों ओर से, अफ़गानों तथा मिसलदारों की बहुत अधिक स्वेच्छाचारिता, अशान्ति तथा लूट मार का शिकार बना हुआ था, जिसकी ऐसी विकट स्थिति को दृष्टिगत रख कर, जार्ज, फार्स्टर ने उपर्युक्त घटना के प्रायः पन्द्रह वर्ष पूर्व, अपनी 1783 की चिट्ठी में यह स्पष्ट लिखा :

"यदि कोई भावी घटना इस बात की मांग करे कि सिख लोग अपने राज्य तथा धर्म के अस्तित्व को अक्षुण रखने के लिए सांझा प्रयत्न करें, तो हम अनुभव कर सकते हैं कि कोई तीव्रता सम्पन्न सरदार अपनी प्रतिभा, सफलता और साथियों की शक्ति को समेट लेने के कारण, उनके पृथक राजमहल के भग्नावशेषों पर राज्य सत्ता का झण्डा लहरा सकता है ।[20] इसकी ऐसी दुर्दशा से लाभ उठा कर ही इसे

ओ अहमदशाह के पोतरे, क्यों कहर कमावें ?
क्यों इज्ज़त देश पंजाब दी, बल हथ बधावें ?
आ पोता आई आई चढ़त दा, दो हथ करा लै,
वेखां किवें पंजाब तों, तूं खाली जावें"

17. उम्दा-तु-तवारीख, वही कार्यालय 2, पृष्ठ 14

Ganda Singh Dr. A Brief Account of the Sikh People, Patiala 1956 P67.

18. Hasrat, Dr. Bikrama Jit, Life and Times of Ranjit Singh, Hoshiarpur-1977, p. 10 & 42.

19. : A Proclamation was made assuring the citizens of Peace and Freedom from molestation; a warning was issued to the soldiers that looting would be punished with death. (: Kushwant Singh. Ranjit Singh; Maharaja of the Panjab, London-1962, p. 39.)

20. Forster, G., A Journey from Bengal to England through North India, Kashmir, Afghanistan and Persia into Russia, 1783-1784, London-1798, Vol. 1, p. 295.

हड़पने अथवा अपने अधीन कर लेने के लिए बाहरी शक्तियां सभी ओर से ताक लगाये बैठी थीं। यदि पश्चिमी सीमा की ओर से अफ़गान अपना हक जमा रहे थे तो उत्तर की ओर से गोरखे और राजपूत दहाड़ रहे थे। यदि दक्षिण दिशा से मराठे कब्जा करने के मनसूबे बना रहे थे तो पूर्व की ओर से अंग्रेज इसे अपने में विलीन कर लेने के सपने देख रहे थे। इसकी ऐसी विकट स्थिति को दृष्टिगोचर रख कर उनकी रोब दाब से व्यक्तिगत रूप में परिचित सुप्रसिद्ध इतिहासकार, कैप्टन कन्निघम ने बाद में यह ठीक ही लिखा था कि पंजाब रणजीत सिंह को एक क्षीण हो रही मिसलदारी के रूप में मिला, जो अपने सरदारों की गुटबंदी का शिकार बना पड़ा था, जिसे अफ़गान और मराठे धमका रहे थे और जो अंग्रेज़ी शासन के अधीन हो जाने के लिए तैयार खड़ा था।"[21]

परन्तु जैसे फोर्स्टर ने रणजीत सिंह के जन्म के तीन वर्ष बाद ही, उपर्युक्त भविष्यवाणी लेखनीबद्ध कर दी थी, उसी प्रकार उसके सतलुज के पार विचरण कर रहे अंग्रेज़ साथियों ने अठारहवें वर्ष में प्रवेश कर चुके रणजीत सिंह की चालढ़ाल देख कर ही, यह अनुभव कर लिया था कि अफगानी बाढ़ को रोकने, इस्लामीं आधार को तोड़ने तथा बर्तानवी हितों को भी उस संकट से बचाने की शक्ति केवल पंजाब के सिखों में ही है तथा रणजीत सिंह ही एक ऐसा सिख है जो उन्हें एकत्रित करके पंजाब को संगठित कर सकता है। रणजीत सिंह ने, आगामी दो वर्षों में ही अपने पौरूष की ऐसी धाक जमा दी कि और तो और, मुगल दरबार दिल्ली में स्थित बर्तानवी रेज़ीडेंट, मि. कोलिन्ज़ ने, गवर्नर जनरल को कलकत्ते भेजी अपनी रिपोर्ट दिनांक 16 अक्तूबर 1800 द्वारा बताया था कि :

"यह सरदार, इस समय, संपूर्ण भारत में सिख सम्प्रदाय का रक्षक समझा जाता है। यह सामान्य धारणा है कि रणजीत सिंह के ही साहस तथा सुयोग्य पथ-प्रदर्शन के कारण संपूर्ण पंजाब मरूभुमि बनने से बच गया है, क्योंकि इन उत्तरी वहशियों भाव अफगानों' की यह प्रायः डींग है कि जिस स्थान को उनके घोड़े एक बार रौंद आते हैं वहां घास फिर कभी नहीं उगती।"[22] इन्हीं अफगानों के हाकिम, उसी ज़मान शाह, ने फिर रणजीत

---

21. Cunningham, Capt. J.D., A History of the Sikhs from the Origin of the nation to the Battles of the Sutlej, London-1849; Ind. ed., Delhi-1960. P. 200.

22. National Archives of India, New Delhi, Secret Correspondence, 4 of 24 June 1800.

सिंह की ही प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बाद में कई कई सौगातें भेज कर, उस के साथ मित्रता गाठनी चाही थी।[23] इस बात की भनक मिलते ही अंग्रेज़ शासकों को चिन्ता लग गई थी तथा उनके गवर्नर जनरल ने भी, उसी वर्ष, रणजीत सिंह को स्वयं अपनी ओर करने के लिए, अपने एजेंट, मीर यूसफ अली के हाथ कई बहुमूल्य उपहार भेज कर मित्रता के लिए आहवान किया था।[24]

नवयुवक सरदार रणजीत सिंह की ऐसी सेवा तथा निष्ठा, बल एवं बुद्धि, तेज और प्रताप को ही मुख्य रखते हुए[28] बाबा साहिब सिंह बेदी[29] ने सन् 1801 ई० के बैसाखी वाले दिन, भरे दरबार में, उनके मस्तक पर केसरिया तिलक लगा कर उन्हें महाराजा घोषित कर दिया। इस प्रकार पंजाब को पूरे आठ सौ साल बाद, पहली बार अपनी कोख से पैदा हुए एक सुयोग्य तथा शूरवीर पुत्र की स्वतंत्र राज्यसत्ता प्राप्त होनी आरम्भ हुई।

महाराजा साहिब ने वैसे अपने देशवासियों के साथ पंजाबीयत तथा भ्रातृत्व का संपर्क रखने के लिए "महाराजा", "सुलतान" अथवा "बादशाह" कहलवाने के स्थान पर जन साधारण से "सरदार" अथवा "सिंह" साहिब" तथा विशेष व्यक्तियों से "भैया" अथवा "भाई" कहलवाना बेहतर समझा। इसी प्रकार, शाही ठाठ और दरबारी मर्यादाओं

---

23 यही शाह जमान काबल से भाग कर पंजाब में आश्रय लेने के लिए, परिवार सहित, 1811 को नवम्बर में एक भिखारी के समान लाहौर में आया। शेरे पंजाब ने लाहौर के इस भूतपूर्व विजेता का स्वयं स्वागत किया, सादर रखा तथा पेन्शन लगा कर कृपा की। (देखिए उम्दा–तु–त्वारीख़, वहीं दफतर 2, पृष्ठ 143)

24. National Archives of India, Political Correspondence, 74 of 24 April 1800.

28 बीस वर्षों के इस युवक ने ऐसे गुणों तथा चतुरता और पूर्वनिर्यात की ओर संकेत करते हुए पंजाब के प्रसिद्ध इतिहासकार प्रिं सीता राम कोहली ने लिखा था

It may seem astonishing that an unlettered peasant lad should have the foresight and sagacity to perceive that the political condition of his country was fraught with dangerous consequerare such however was, his vision. He was, in addition, that rare phenomenon, a true leader of men, whose by no means moderate ambition was tempered by political wisdom. (see Kohli, Prin. Sita Ram, Sunset of the Sikh Empire, New Delhi-1967, p. 6).

के बिल्कुल विपरीत, न सिर पर मुकुट पहना और न ही सिंहासन पर बैठने का विचार किया। सिक्का भी अपने नाम पर जारी करने के स्थान पर "पंजाब के गौरव" गुरु नानक साहिब, के नाम पर चालू किया।[30] इस राज-विभूति को अपनी बुद्धि तथा सामर्थ्य आदि की देन समझने के स्थान पर वाहिगुरु का वरदान सतगुर की कृपा तथा उनके द्वारा सृजित खालसा-पंथ के परिश्रम द्वारा प्राप्त हुई समझी। अतः इसे अपनी सरकार कहने के स्थान पर "सरकार खालसा" तथा इसके दरबार को अपना दरबार कहने के स्थान पर "दरबार खालसा" होने की घोषणा की।[31]

बेदी वंश के महान् रत्न, बाबा साहिब सिंह जी (1759 1834 ई०) ने बालक रणजीत सिंह की योग्यता तथा प्रताप को अपनी दूरदृष्टि से जैसे पहले ही अनुभव कर लिया था, उसका उल्लेख करते हुए लिखा है : एक बार माई राजकौर रणजीत सिंह को साथ लेकर बाबा जी के दर्शन के लिए गई। वहां वार्तालाप इस प्रकार हुआ :

मेरे पति सरदार जी (स. महा सिंह) गुज़र चुके हैं। मेरे इस काने पुत्र, रणजीत सिंह को कौन जीने देगा?

बाबा जी "जीना या मरना तो परमात्मा के हाथ है (परन्तु) तेरे बच्चे के स्वभाव तथा गुणों से प्रतीत होता है कि शायद यह सभी पर भारी पड़ेगा। क्या पता वाहिगुरु इसे क्या कुछ बना दें।"

(देखिए : प्रताप सिंह, ज्ञा. "सिख ऐतिहासिक लेक्चर," लाहौर 1945, दूसरा संस्करण, अमृतसर - 1949 पृष्ठ 267)

युवक रणजीत सिंह ने जब कुछ और वर्षों के पश्चात् सन् 1800 में बाबा जी की ही प्रेरणा से, गुजरात का घेरा उठा दिया था और उनके सम्मान में अपनी तलवार कमर से खोल कर इनके सामने रख दी थी, तो उन्होंने इसे स्वयं उठाकर, उसी कमर से सजाते हुए कहा था : इस के सभी

---

30 इनके विवरण तथा विस्तार के लिए देखिए

Chopra, Dr. Gulshan Lall, The Panjab as a Sovereign State, Lahore-1928; 2nd ed., Hoshiarpur-1960, p. 152-55.

31 कोहली : प्रि: सीता राम, फुतहनामा गुरु खालसा जी का पटियाला 1952 पृ०. 5।

Hasrat, Life and Timesof Ranjit Singh, on Cit. P. 42

विरोधी थोड़ी देर में ही उखड़ जायेंगे और इसका राज्य सारे देश में स्थापित हो जायेगा। "(देखिए उम्दा-तु-त्वारीख, वहीं, दफतर-2 पृ०. 49

उन्होंने इसी लिए, इस राज की मोहर और झण्डे को "अकाल सहाय"[33] और सिक्के को निम्नलिखित लिजेंड (मुद्रा लेखन) का सूचक बनाया :

देग, तेग, फतह नसरत बेदरंग
याफत अज़ नानक गुरु गोबिन्द सिंह। [44]

"उन्होंने खालसा के उस सिद्धान्त को बरकरार रखा था, जिस अनुसार वह अपनी प्रत्येक सफलता को वाहिगुरु की कृपा से सतगुर का प्रसाद समझते थे।" श्री अकाल सहाय-रणजीत सिंह के हस्ताक्षर थे।

सरदार रणजीत सिंह ने इस पंथ के उपर्युक्त प्रवर्तक तथा स्वामी के उपदेशों और सिद्धान्तों को मुख्य रखते हुए इस राज्य की रूप रेखा, आरम्भ से ही धार्मिक अथवा कट्टरपने पंथ के स्थान पर "सांझे तथा स्वतंत्र" बिजय राज्य के आधार पर चित्रित की। [35] अपनी नीतियों तथा कर्तव्यों द्वारा प्रत्येक देशवासी को इस बात का बिश्वास दिलाना आरम्भ कर दिया

---

33 गुरु गोबिन्द सिंह जी के मंगलाचरणात्मक वाक्य, "श्री अकाल जी सहाय" (अर्थात् अविनाशी वाहिगुरु ही सहायता करने वाले हैं) का संक्षेप। इसके नीचे केवल उनका नाम "रणजीत सिंह" ही खुदा होता था जो इस बात का संकेत था कि रणजीत सिंह की सहायता अकालपुरुष करने वाले हैं।

34 यह लिजेंड बाबा बन्दा सिंह बहादुर जी की मोहर तथा स. जस्सा सिंह आहलूवालिया जी के सिक्के से अपना ली गई थी। इसके प्रथम दो शब्दों, देग तेग का अर्थ भाई कान्ह सिंह के अनुसार "लंगर और कृपाण" और भावार्थ" अनाथों का पालन और दुष्टों का संहार है। (देखिए : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोष, पृष्ठ 486 ई०) फतह का अर्थ जीत और नुसरत का अर्थ सहायता है। बेदरंग का अर्थ है बिना देरी, अविलम्ब। दूसरे वाक्य का भाव "गुरु नानक गुरु गोबिन्द सिंह से प्राप्त हुई।"

35 ऐसे राज्य की स्थापना के लिए जनता पर हो रहे अत्याचार और आय की रोकथाम समय की प्रथम मांग थी इसलिए मूल पुस्तक के पृष्ठ 20 पर देखिए।

Under express orders from him, the city and the citizens were to be treated with the greatest consideration by the conquerors, and any acts of plunders and ill-usage on the part of his troops were to be severaly delt with (Maharaja Ranjit Singh's Death Centenary Memorial, op. cit., p. 18)

कि वे, यथा संभव, सतगुर के निम्नलिखित बचनों में निहित सिद्धान्त पर पहरा देते हुए, सारी प्रजा को एक आंख से देखेंगे और हरेक के साथ एक जैसा व्यवहार करने में अपने कर्त्तव्य का पालन समझेंगे।

1 एक पिता एकस के हम बारिक
तू मेरा गुरहाई। [36]

2 सभु को मीत हम अपना कीना
हम सभना के साजन। [37]

3 हिंदू कोऊ, तुरक कोउ, राफजी इमाम साफी
मानस की जात सभै एकै पहिचानबो। इत्यादि। [38]

इसी लिए, इस राज्य के सभी हिन्दु, मुसलमान और सिख निवासियों के अधिकार और कर्त्तव्य एक समान होंगे। प्रत्येक निवासी पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकारी होगा और प्रत्येक को बराबर का नागरिक समझकर संभाला और सम्मानित किया जायेगा। किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय के अनुयायी के विरुद्ध घृणा की कोई कार्यवाही अथवा पक्षपात् का कोई व्यवहार कभी नहीं किया जायेगा। गुरु नानक, गुरु गोबिन्द सिंह का प्रदान किया हुआ यह राज्य, उनके उद्देश्य के अनुसार, सर्वहित के लिए चले, बढ़े और फूलेगा।

उनकी यह नीयत और नीति तथा इसका व्यवहारिक उपयोग उन नियुक्तियों से ही विदित है जो उन्होंने किसी तरफदारी अथवा पक्षपात् के बिना राजधानी के स्थानीय प्रशासन के लिए, खड़े पैर कर दी थी। यह तो उन आदेशों से भी प्रकट है जो सारी प्रजा के सुख, शान्ति, सुरक्षा और समृद्धि के लिए समय-समय जारी करते रहे। गृह मंत्री फ़कीर नूरदीन के नाम जारी हुए एक आदेश में लिखा है : "कोई भी आदमी लोगों पर किसी

---

36 गुरु अर्जुन साहिब द्वारा संपादित, श्री गुरु ग्रंथ साहिब, अमृतसर 1604 ई० की लिखित रागु सोरिठ महला 5, पृष्ठ 611 12

37 उपर्युक्त, रागु धनासरी महला 5 पृष्ठ 671

38 मनी सिंह भा. द्वारा सम्पादित, श्री दशम साहिब दिनांक 1734 ई० अकाल उस्तत, कवित्त नं० 16/89

प्रकार का अत्याचार या अन्याय न करे। बेशक, यदि खुद महाराजा द्वारा कोई अनुचित आदेश जारी हो जाये, तो उनका ध्यान उस ओर स्पष्ट रूप में दिला दिया जाए, जिससे उसका संशोधन फौरन किया जा सके ... न्यास सर्वदा अधिकार-न्याय के आधाकर पर पंचों और काज़ियों की सलाह से और संबधित पक्षों के धार्मिक विश्वास को मुख्य रखते हुए "शास्त्र" और कुरान के अनुदेश के अनुसार करने हैं।"[39] तभी तो फकीर घराने का विद्वान वारिस सययद वहीदु द्दीन, बड़े अधिकार के साथ बताता है।

"रणजीत सिंह की नीति के अनुसार उनके राज्य क्षेत्र में बस रहे सभी मतों मतांतरों के लोगों को अपनी अपनी धार्मिक रीतियों का पालन करने की पूर्णतः खुल थी। उनके राज्यकाल में पूर्ण धार्मिक एक-सुरता स्थापित तथा व्यापक थी।"[40]

महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर का प्रबन्ध संभालते ही, पंचनद प्रदेश के शेष विकीर्ण हिस्सों को भी संजोने तथा संगठित करने के कार्यक्रम को व्यावहारिक आकार देना आरम्भ कर दिया।

उन्होंने सर्वप्रथम, सिख मिसलों तथा मुखियों को एक सूत्र में पिरोने तथा उनके इलाकों को एक केसरिया झण्डे के नीचे लाने का उद्यम किया। अपनी सेना सहित, तीन बार[41] सतलुज पार करके, उस पार रहने वाले पंजाबियों के साथ सम्पर्क स्थापित किया, उनके शासकों से कर उगाहा, उपहार लिए, जागीरें दी[42] और उनका राजा होने की घोषणा की।[43] डा० विक्रमजीत के अनुसार :

"सतलुज के इस पार के सिख, सरकार महाराजा साहिब की कृपा से बड़े खुशहाल थे। उनमें इनको सभी सिखों का अधिकार मानने में कोई

---

39 दरबार खालसा, लाहौर से 31 भाद्रपद, 1882 बि. को जारी हुए फारसी फरमान में से

40. Waheed-ud-din, The Real Ranjit Singh, op. cit., p. 22 & 28.

41 प्रथम बार 26 जुलाई 1806 को, दूसरी बार 1807 में तीसरी बार 1 अक्तूबर 1808 में

42 देखिए उम्दा-तु-त्वारीख, वही दफतर 2 पृष्ठ 656
Griffin, L. The Rajas of the Punjab, Labore 1870

43. :Cunningham, A History of the Sikhs, op. cit., p. 124; Khushwant Singh, A History of the Sikhs, op. cit., Vol. I, p. 216.

संकोच नहीं था। ... महाराजा साहिब ने संपूर्ण सिख क्षेत्र पर लाहौर सरकार का वास्तविक प्रभुत्व, वास्तव में कायम भी कर लिया था।[44] लेखक ने कुछ आगे चलकर यह भी बताया कि :

''यह स्पष्ट है कि रणजीत सिंह ने सन् 1808 की पतझड़ तक सतलुज के इस पार के संपूर्ण क्षेत्र को अपने वश में कर लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था और मालवा के सरदारों ने उनको सभी सिखों का सिरताज मानते हुए अपनी वफादारी का इकरार भी किया था। यदि, दुर्भाग्यवश, मेटकाफ का मिशन तब आ न गया होता और उस क्षेत्र में बर्तानवी हित हावी न हो गये होते तो उनका सभी सिखों को अपनी सत्ता अधीन संगठित कर लेने का सपना साकार हो गया होता।''[45]

अत: बाद में अंग्रेज़ों की लालसापूर्ण एवं कुटिल नीति[46] और मलवई राजाओं की कायरता एवं स्वार्थ के क़ारण, वह पंजाबी-भाषी क्षेत्र इस सांझे तथा स्वतंत्र पंजाबी राज्य का अंग बनने से रह गया। मि. ट्रेविलीयन की एक गुप्त टिप्पणी का निम्नलिखित वाक्य, जो उसने 25 नवम्बर,1831 को अपने गवर्नर जनरल को कलकत्ता भेजा था, उपर्युक्त नीति और स्थिति का स्पष्ट साक्षी है।

''सन् 1809 में सिखी की दिन-प्रतिदिन बढ़ रही शक्ति इतनी भयानक समझी गई थी कि इस ओर वृद्धि पर रोक लगा देना ज़रूरी समझा गया था।''[47] इसी लिए उन्होंने 1809 में ही बर्तानवी, हिन्द तथा खालसा पंजाब के मध्य सीमांकन की संधि करके इस स्वतंत्र तथा प्रगतिशील राज्य की पूर्वी सीमा पंजाब का दरिया सतलुज निर्धारित करवा ली। उन्होंने इस प्रकार इसकी वृद्धि तथा विस्तार पर, उस ओर से मानो रोक लगा दी थी।

---

44. Hasrat, Life and Times of Ranjit Singh, op. cit., p. 74.

45 Ibid, P.P. 75-76

46 उन्होंने बर्तानवी भारत की सीमा पहले स्वयं दरिया यमुना तक निर्धारित तथा मानी हुई थी।

47. Auber, P., Rise and Progress of the British Empire in India, London-1837, Vol. II, p. 461; Cunningham, A History of the Sikhs, op. cit. pp. 123-24, ; and : Bengal Secret and Political Consultations (I), 8 & 18, dated 18 April & 2 May 1808, respectively.

इसी संधि तथा स्थिति के संबंध में, महाराजा साहिब तथा अंग्रेज़ शासकों की परस्पर नीयत तथा नीति का उल्लेख करते हुए प्रो.रालन्सन ने लिखा है :

"महाराजा साहिब का मुख्य तथा महान् उद्देश्य सभी गुरु-सिखों को अपने राज्याधिकार अधीन लाकर संगठित कर देना था। उन्होंने तो सन् 1806 के आस पास सतलुज पार करने तथा फूल-वंशी राजाओं को जीतने का पक्का निश्चय भी कर लिया था, जिनकी बेसबरी और बदइन्तज़ामी ने उस इलाके को एक घृणित दुर्दशा में झोंका हुआ था। परन्तु यहां उनकी टक्कर अंग्रेज़ों की नीति सतलुज तक फैले हुए सारे देश को अपने अधीन रखने की थी। सतलुज से खैब्बर तक के इलाके पर रणजीत सिंह की राज्य शक्ति की संपूर्ण स्थापना के लिए वे केवल रज़ामंद ही नहीं, चाहवान भी थे। यह इसलिए कि वे, उस स्थिति में, उनके एक बहुमूल्य राज्य मित्र भी होंगे, और उनके अधिकार में आ चुके हिन्द पर अफगानों और रूसियों अथवा फ्रांसीसियों के संभव आक्रमण रोकने के लिए एक अनुकूल मध्यवर्ती राज्य भी बना देंगे। ... महाराजा साहिब, आरम्भ में बहुत कठोरता से भड़क उठे थे। उन्होंने तो अंग्रेज़ों के साथ युद्ध करने का भी निश्चय कर लिया था किन्तु, सौभाग्य से, उन के महान् और विद्वान, मंत्री अज़ीज़ुदीन की सूझ भरी मंत्रणा के कारण यह स्थिति तब टल गई थी। [48] (मूरक्राफ्ट नाम के एक अंग्रेज़ डॉ० जो 1819 में लाहौर विचरण करता रहा था) ने इस पिछली बात का सत्यापन करते हुए शेरे पंजाब के जीवन-काल में अपने सफरनामे में लिखा था कि अंग्रेज़ी हस्तक्षेप इतना अरुचिकर था कि रणजीत सिंह ने तलवार की टेक लेने के लिए बड़ी गंभीरता से सोच लिया था। प्रसिद्ध फकीर   उन दो व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने अंग्रेज़ों के साथ युद्ध न करने के लिए प्रेरित कर लिया था।[49]

शेरे पंजाब ने, फिर, इसी मजबूरी और पाबन्दी को मुख्य रखते हुए अपनी विजयों और सैनाओं की दिशा पश्चिम की ओर कर ली, और पंजाब

---

48. Rawlinson, Prof. H. G. Buddha, Ashoka, Akbar, Shivaji and Ranjit Singh, A study in Indian History, London-1913, pp. 181-82.

49. Moorcroft, Dr. W. & Trebech, G., Travels in the Himalayan Provinces of Hindostan and the Punjab, in Ladak and Kashmir, etc. from 1819 to 1825, London-1837, Vol. 1, p. 94.; and see: Cunningham, A History of the Sikhs, op. cit., p. 124.

के संगठन तथा उसके इर्द गिर्द पर अधिकार पाने का सिलसिला तीव्रता से आरम्भ कर दिया। उन्होंने सन् 1813 से जहां अटक की विजय से, उत्तरी भारत को अफ़गानों की धमकी से सर्वदा के लिए आज़ाद करवा लिया, वहां 1818 में, मुलतान की जीत द्वारा पंजाब से अफ़गानी प्रभाव का सर्वदा के लिए सफाया भी कर दिया। ऐसे ही, उसी वर्ष जहां पठानों के गढ़, पेशावर पर आक्रमण करके, उसे आठ शताब्दियों के पश्चात् पुनः पंजाब का अंग बनाया : वहीं 1819 में कश्मीर को भी इस राज्य में सम्मिलित करके, इस की सीमाएं चीन और तिब्बत की सीमाओं के साथ छुहा दी। इसी तरह आगामी वर्ष हुई, डेराजात की जीत ने सिंध सागर दुआब को भी सांझे और स्वतंत्र तथा विशाल साम्राज्य की परिधि कुछ वर्ष में प्रायः दो लाख वर्गमील तक फैला दी। इसकी सीमाएं उत्तर की ओर तिब्बत, दक्षिण की ओर सिन्दा, पूर्व की ओर सतलुज और पश्चिम की ओर खैब्बर को छूने लगीं।

सन् 1834 में इसके इतने विशाल क्षेत्र का मूल्यांकन करते हुए, हैनरी प्रिंसप ने लिखा था :

"महाराजा रणजीत सिंह के राज्याधिकार अधीन, अब पंजाब की दुसांग शामिल है जो छोर की दो नदियों, सिंधु तथा सतलुज से सीमाबद्ध हैं। काश्मीर के अतिरिक्त, बर्फीली श्रृंखला का संपूर्ण पार्वत्यांचल एव हिमालय के पार लद्दाख का क्षेत्र तक भी उनके अधीन है। इस अत्यन्त विस्तृत राज्य-क्षेत्र के अतिरिक्त, सतलुज के बर्तानवी दिशा के पैंतालीस ताल्लुके (तहसीलें) भी उनके अधिकार में हैं। दरिया सिंध के पश्चिम की ओर खैब्बराबाद, अकोड़ा, पेशावर, डेरा गाज़ीखान और ड़ेरा इस्माईलखान का क्षेत्र भी उनके राज्य में शामिल है। पूर्व की ओर, वे टांक और सागर तक बलोची सरदारों से भी कर उगाहते हैं।[50]

महाराजा साहिब ने इतने महत्वपूर्ण तथा लम्बे चौड़े, मैदानी और पर्वतीय क्षेत्र को जीत-जोड़ कर जिस साम्राज्य का निर्माण कर दिया था, वह अंग्रेज जरनैल, चार्लस गफ़ के अनुसार, "इतिहास का एक अद्वितीय चमत्कार था।[51] वे अपने समय के उत्तरी हिन्द में घूमते रहे तथा

---

50. Prinsep, H. T., Origin of the Sikh Power in the Punjab and Political Life of Maharaja Ranjit Singh with an account of the Religion Laws and Customs of the Sikhs, London-1834, reprint, Patiala-1970 pp. 145-46.
51. Gough, Sir Charles Innes, A. D., The Sikhs and the Sikh Wars, the Rise, Conquest, and Annexation of the Punjab State, London-1897; reprint, Patiala-1970, p. 41.

1835 के दौरान पंजाब में विचरण करते रहे यूरोपियन पर्यटक बैरन, हयूगल ने तो इसे   The most wonderful object of the world

"दुनिया की सर्वाधिक विचित्र वस्तु" कहा था।[52] उसका तो आस्ट्रिया से भारत आने का उद्देश्य ही पंजाब, इसके विश्वविख्यात सम्राट, उनका विलक्षण राज्येश्वर्य, प्रसिद्ध सेनानायक नलवे, बेजोड़ घोड़े लेली तथा अलौकिक हीरे कोहेनूर को आंखों से देखना और आनन्द उठाना ही था। शेरे पंजाब द्वारा स्थापित किये गये इस राज्येश्वर्य की शोभा और संभावना का उल्लेख करते हुए एक और पर्यटक बैलैक्स गार्डनव ने उसी शती के दौरान लिखा था :

"रणजीत सिंह ने सिखों की बिखरी हुई मिसलों में से एक महान् तथा शक्तिशाली कौम बना कर स्थापित कर ली थी। वे अपनी विजयों का क्रम दिल्ली अथवा उससे भी आगे फैला लेते, यदि बर्तानवी साम्राज्य हिन्दोस्तान में तब तक इतनी तीव्रता से उन्नत तथा संगठित न हो गया होता।"[53]

उसने ही इनको यदि एक ओर, 1809 के समझौते द्वारा दिल्ली की ओर बढ़ने से रोक लिया था, तो दूसरी ओर 1832 की संधि के अनुसार सिंध और सागर की ओर बढ़ने से रोक लिया था।[53ए]

पंजाब राज्य के विस्तार के लिए पूर्व एव दक्षिण की ओर लगाये गये ऐसे अवरोध और प्रतिबन्ध, शेरे पंजाब को अन्त तक बहुत अखरते रहे। तभी तो, उन्होंने सुदूर उत्तर की ओर हिमालय की चोटियों और वादियों की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया था तथा 1836 में "लद्दाख को जीत कर इस्कर्दू और तिब्बत तक पहुंचने के लिए उद्यम आरम्भ कर दिये थे।

52. Huqel, Von Baron Charles Travels in Cashmere and the Punjab, Containing a particular Account of the Government and Character of the Sikhs, Stuttgart-1840-44; translated from German by Maj. T. B. Jervis, London-1845, p. 374.

53. Pearse, H., Soldier and Traveller : The Memoirs of Alexander Gardner, London-1898.

53-A. Burnes, A., Travels into Bukhara : being the narrative of a journey from India to Cabool. . . also narrative of a voyage on the Indus from sea to Lahore with presents from the King of Great Britain, performed under the orders of the Government of India in 1831-33, London-1834, Vol. II, p. 28.

परन्तु जो कुछ और जितना कुछ उन्होंने पंजाब, अफ़गानिस्तान तथा पहाड़ी शासकों से जीत कर, संपूर्ण रूप में, अपने अधिकार में रख रखा था, वह अपने आप में ही एक इतना विशाल क्षेत्र था कि मेकेग्रेगर के अनुसार, उससे पहले कभी भी किसी एकमात्र प्रशासक के अधीन नहीं रहा।[54]

शेरे पंजाब ने इस इतने विशाल देश को एक ऐसी शानदार, सुप्रशिक्षित, शक्तिशाली सेना का स्वामी भी बना दिया था जो तब सारे एशिया की सर्वाधिक बलशाली, अनुशासित तथा भयानक सेना मानी गई। इसके तेज-प्रताप के एक विदेशी गवाह और लुधियाना बर्तानवी एजेंसी के एक सैनिक अधिकारी, मेजर स्मिथ ने सन् 1847 में तो यहां तक लिखा था कि

''इस स्तर की सेना किसी भी पूर्वी हकूमत को पहले कभी भी प्राप्त नहीं हुई थी।[55] इतिहासकार मार्शमैन ने लिखा है :

''महाराजा रणजीत सिंह अथक यत्नों, प्रत्येक प्रकार के सुधारों और निरन्तर एवं सफल अभियानों द्वारा, अस्सी हज़ार जवानों और तीन सौ तोपों वाली एक ऐसी सेना तैयार करने में सफल हो गये थे जो संयम, आकर्षण एवं उच्चस्तर की दृष्टि से, भारत में बनी किसी भी देशी सेना की अपेक्षा बेहतर और अधिक महत्वपूर्ण थी।[56] यहां तक कि उस समय के अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड के मिल्टरी सेक्रेटरी कैप्टन ओज़बर्न के रोज़नामचे में केवल उनके तोपखाने का ही उल्लेख करते हुए लिखा है :

''उन्हें अपने तोपखाने की निपुणता और श्लाघ्य स्थिति पर बड़ा गर्व है, स्वाभिमान पूर्ण तथा योग्य भी है, क्योंकि किसी भी भारतीय शासक को

---

54 मैकग्रेगर का उपर्युक्त विचार उसके अपने शब्दों में इस प्रकार चित्रित है।
his numerous Victories over & the Sirdars of the Punjab, as well as the Afghans across the Indus, whereby he obtained complete possession of a country which had never previously been subjected to one ruler.
M' Gregror, History of the Sikhs, op. cit., Vol. II, p. 1.

55. Smyth, Major G. C., A History of the Reigning Family of Lahore, the Jammoo Rajahs, the Seik Soldiers and their Sirdars, London-1847, p. XXV.

56. Marshman, J. C., History of India from the earliest period to the close of Lord Dalhousies Adminstration London-1867, Vol. III, pp. 32-33.

इतनी बड़ी तथा सुप्रशिक्षित सेना दल के स्वामित्व का सौभाग्य अभी तक प्राप्त नहीं हो सका था।''[57] जहां तक उसकी अश्वसेना का संबंध है, बेरन हूगल ने अपने सफरनामे के 21 जनवरी, 1836 वाले बृतान्त में लिखा था :

''मैंने उनके अश्वारोहियों को देखने की आज्ञा मांगी। उनसे बढ़ कर बांका और अधिक अनोखा और चित्ताकर्षक सैनिक दल मैंने कभी नहीं देखा।[58] शेरे पंजाब के निधन के उपरान्त, अंग्रेज़ों और पंजाबियों की लड़ाईयों का वर्णन करने वाला जनरल गफ़ तो स्पष्ट तथा यहां तक मान गया है कि ''सिख सेना उन सभी सेनाओं की अपेक्षा अधिक प्रवीण और पराजित करने में बहुत कठोर थी – जिनके साथ हमें, भारत में, मुकाबला करना पड़ा था'[59]

फिर लम्बे चौड़े देश में उपर्युक्त निष्पक्ष विचारधारा और सुचारू नीति, सुन्दर प्रशासन तथा प्रवीण सेना की सहायता से, उन्होंने एक ऐसा शान्ति तथा समृद्धिपूर्ण राज्य कायम किया जो अभी तक अपनी उपमा स्वयं है। डॉ० गुलशनलाल चोपड़ा के अनुसार :

पंजाब के लोगों ने, उनके राज्य की समृद्धि के कारण, सुख शान्ति को एक विशेष सीमा तक विकसित कर लिया था। वे आन्तरिक शान्ति तथा प्रफुल्लता के ऐसे दौर में प्रवेश कर गये थे जिसका सुख उठाने का सौभाग्य उन को अनके पीढ़ियों से प्राप्त ही नहीं हो सकता था।''[60] इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनके 40 वर्षों के राज्यकाल दौरान पंजाब में न कोई साम्प्रदायिक दंगा हुआ, न कोई राजनैतिक विद्रोह हुआ और न ही किसी को बाहर से आक्रमण करने का ही साहस हुआ। उनका राज्य-क्षेत्र बर्तानवी हिन्दुस्तान की अपेक्षा भी अधिक शान्त एवं सुरक्षित था। जनरल सर गार्डन के अनुसार उसमें ऐसी शान्ति तथा निश्चितंता व्याप्त थी जैसी पहले वहां कभी देखने सुनने में नहीं आई थी।[62] महाराजा साहिब का एक समकालीन तथा गैर सिख पंजाबी, मियां जाफर बेग तो उनके राज्य-कार्य

---

57. Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh, op. cit., under 22 June 1838, p. 60.
58. Hugel, Travels in Cashmere and the Punjab, op. cit., pp. 330-331.
59. Gough & Innes, The Sikhs and the Sikh Wars, op. cit., p. 43.
60. Chopra, Panjab as a Sovereign State, op. cit., p. 93.
61. Gardon, The Sikhs, op. cit., p. 118.

की सर्वाधिक बड़ाई यहा बताते हुए लिख गया है कि उनके बल-पौरुषता के कारण, उसमें किसी भी व्यक्ति का सम्मान और धन दौलत यहां तक सुरक्षित है कि :

अलफ आखि तूं सिफत सरकार वाली,
सिंह पंथ विच्चों होइ धजाधारी।
जिहदे राज कुआरीआ राह तुरियां,
डरदे छेड़दा नाहि को खोफ मारी।[62]

उनके निधन के कई वर्ष बाद भी, उसी शान्त, सुखी तथा सुरक्षित पंजाब के राष्ट्रीय कवि, सय्यद शाह मुहम्मद ने उनको श्रृद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए, स्पष्ट किया है कि :

महाबली रणजीत सिंह होया पैदा,
नाल ज़ोर दे मुलक हिलाए गिआ।
मुलतान, कश्मीर, पशौर, चम्बा,
जम्मू, कांगड़ा, कोट निवाए गिया।
होर देस लद्दाख ते चीन तोड़ी,
सिक्का आपणे नाम चलाए गिआ,
शाह मुहम्मदा जाण पचास बरसां,
अच्छा रज के राज कमाए गिआ।[63]

इस सांझे स्वतंत्र तथा विशाल राज्य पर जब कतिपय वर्ष बाद ही बर्तानवी कूटनीति तथा बचन-भंगता के कारण, दिन दहाड़े छापा मारा गया तो उसमें स्थापित शान्ति व्यवस्था, सुख-समृद्धि तथा पारस्परिक सद्भावना का उल्लेख करते हुए उसी राष्ट्रीय कवि ने बड़े दुःख तथा शोक के साथ यह भी मानो पुकार कर कहा था

राजी बहुत रहंदे मुसलमान हिन्दू,
सिर दोहां दे उते आफत आई,
शाह मुहम्मद विच पंजाब दे जी,
कदे नहीं सी तीसरी जात आई।[64]

---

62 जाफर बेग, सीहरफी सरकार की, वही पद संख्या।
63 शाह महम्मद सय्यद, जंग सिंघा ते फरंगियां, वडाला, 1896 पद नं० 5
64 उपर्युक्त बन्द सं:3

फिर कमाल यह कि इस सांझे तथा स्वतंत्र राज्य की अंग्रेज़ों के साथ हुई भारी टक्कर को दो एक जैसी महान शक्तियों अर्थात् महाराजा रणजीत सिंह द्वारा निर्मित एवं स्थापित पंजाब राज्य एक ओर और शेष संपूर्ण भारत में स्थापित हो चुका अंग्रेज़ी साम्राज्य दूसरी ओर का युद्ध मानते हुए तथा इसी सत्यता को बयान करते हुए उसने यह भी घोषणा की थी :

जंग हिन्द पंजाब दा होण लग्गा,
दोवें पातशाही फौजां भारियां नी
अज होवे सरकार ता मुल्ल पावे,
जेहड़ीआं खालसे ने तेगां मारीआं नी।
सणे आदमी गोलियां नाल उड्डण,
हाथी डिगदे सणे अंबारियां नी।
शाह मुहम्मदा एक सरकार बाझों,
फोजां जित के अंत नू हारियां नी।[65]

सरकार रणजीत सिंह के ऐसे संघर्षों, नीतियों और कार्यकौशल ने उस सांझे तथा स्वतंत्र पंजाब को, सभी लोगों ने दिल में पंजाबीयत और खालसईयत को मानो एक स्वर करके, गुरु-पंथ की शक्ति तथा प्रभुता के लिए जो गर्व तथा विश्वास पैदा कर दिया था, इसका उल्लेख भी बड़े गर्व तथा अधिकार के साथ करते हुए यह भी शाह मुहम्मद ने लिखा था

शाह मुहम्मदा "तुसी, पंजाबीओ जी
कीरती "सिंह सिपाही" दी रखणी जी।[66]

शाह मुहम्मदा गल तां सोई होणी,
जेड़ी करेगा, खालसा पंथ मीआं।[67]

पंजाब राज्य के विकास एवं ह्रास को मुख्य रखकर शाह मुहम्मद की ये दुःखपूर्ण एवं पीड़ाजनक अभिव्यक्तियां अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

महाराजा रणजीत सिंह को पंजाब तथा पंजाबियों में उत्साह भरने और उनके लिए इस प्रकार का सांझा स्वतंत्र तथा विशाल एवं विलक्षण राज्य स्थापित करने में जो सफलता एवं भार युक्त प्राप्त हुई, उसकी तह में भी, अधिकांशतः यह भावना ही सिद्धान्त तथा यही विश्वास काम कर रहा था। उनके अपने व्यक्तित्व तथा स्वभाव, श्रृद्धा तथा निष्ठा, नीति एवं

---

65 उपर्युक्त बन्द संख्या 62

66 उपर्युक्त बन्द

67 उपर्युक्त बन्द स० 66

शक्ति सूझबूझ तथा दूर दृष्टि, परिश्रम तथा योग्यता, साहस और निःस्वार्थ, चमत्कारिक बुद्धि एवं प्रशासन योग्यता ने सोने पर सुहागे का काम किया प्रतीत होता है।

उसी आदर्श राज्य और महान महाराज का एक विदेशी कर्मचारी, मेजर लारेंस (ब्लैसिज़) लिखता है कि 5 मई, 1830 को जब उसे एक रैंजिमेंट की कमान तथा कोट कांगड़े का प्रबन्ध सौंपा गया था, तो फकीर अज़ीज़ उद्दीन ने उसे सम्राट के संकेत पर, एक मोहरबन्द पैकेट पकड़ा दिया था। जब उसने गन्तव्य पर पहुंच कर, उस पुलिन्दे को बड़ी उत्सुकता पूर्वक खोला था, तो उसमें से जो पत्र प्राप्त हुए थे उनमें से एक का विषय निम्नांकित उपदेश तथा निर्देशन के साथ इस प्रकार आरम्भ हुआ था

''बुद्धिमान व्यक्ति आपको स्वामी द्वारा दिये गये उत्तरदायित्व के पालन में उपेक्षा प्रियता से ही प्रशंसा प्राप्त होती है। झूठ मनुष्य को लज्जित करवाता है और मिथ्या भाषण करते हुए होंठ उसके निरादर का हेतु बनते हैं। अपना अंत याद रखना और गरीबों को कभी दुःख नहीं देना। ऐसा करने से तुम्हारा नाम तब भी स्थिर रहेगा जब तुम्हारा और सभी कुछ नष्ट हो गया होगा।[70] उपर्युक्त पैरा पढ़ने के पश्चात् लारेंस ने लिखा है कि ''यह नसीहत अच्छी है तथा इससे प्रकट होता है कि महाराजा साहिब अपने राज्य-कार्य में बुद्धिमत्ता तथा सहृदयता से काम लेते हैं।'' इतिहास इस बात का साक्षी है कि शेरे पंजाब का अपना जीवन, उनका स्वभाव तथा कार्यकुशलता स्वयं भी, उपर्युक्त नसीहत तथा उसके पीछे काम कर रही शुभ नीयत तथा नीति की, अधिक सीमा तक धारक रही है।

पंजाब के साम्राज्य में उस अंग्रेज़ अधिकारी, लारेंस की उपर्युक्त निर्युक्ति के इस आदेश में अंकित यह कथन, उनके विचारानुसार ''यह तो रणजीत सिंह का अपने बारे में स्वयं दिया गया अन्तिम निर्णय है।[73] यह कथन निस्संदेह एक मूल्यवान, स्मरणीय तथा ऐतिहासिक ब्यान है। वह मानों बड़े ही संक्षिप्त शब्दों में शेरे पंजाब की आत्म कथा है। उनके स्वभाव तथा व्यक्तित्व का एक दर्पण होने के अतिरिक्त, पंजाब तथा पंजाबियों के लिए किये गये संघर्ष तथा उपलब्धियों की एक मुंह बोलती तस्वीर है। इस विषम समय की स्थिति का सर्वेक्षण करने, आंखों देखे

---

73. Lawrence, Adventures of an Officer in the Punjab, op. cit., p. 63

वृत्तान्तों का परीक्षण करने, मौके के गवाहों के ब्यानों का लेखा-जोखा करने तथा उन्हें इतिहास की कसौटी पर परखने से भी यह कथन, निम्नलिखित अंगों के अनुसार ठीक प्रतीत होता है:

प्रथमांग

"मेरी बादशाही एक महती बादशाही है। पहले यह छोटी रेशा रेशा, टूटी फूटी तथा बिखरी हुई थी। अब यह बड़ी और विशाल है, पहले से यह संगठित है। इसे और उन्नत एवं प्रफुल्लित होना चाहिए, और भावी पीढ़ियों को विपौती के रूप में यह संपूर्ण एवं संगठित रूप में ही मिलनी चाहिए।"

शेरे पंजाब द्वारा स्थापित किये गये साम्राज्य से व्यक्तिगत रूप से परिचित लेखकों, उनके राज्य-काल में विचरण करते रहे विदेशी यात्रियों, हिन्द पंजाब के युद्ध में शामिल रहे अफसरों तथा उसकी समाप्ति पर सिख कौम अथवा खालसा राज्य के वृतान्त लिखने वाले इतिहासकारों के पिछली शताब्दी में छपे, आगे दिये गये कुछ ब्यान[74] उनके उपर्युक्त दावे की ऐसी भरपूर पुष्टि करते हैं कि हमें खुद इस बारे में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं।

(1) बैरल ह्यूगल (1840 ई०)

जो साम्राज्य रणजीत सिंह ने एक निपुण वास्तु शिल्पी के समान बहुत तुच्छ तथा संभावनाहीन टुकड़ों को जोड़ कर एक राजकीय भवन के रूप में निर्माण करके, स्थापित कर दिया है, वह मुझे दुनिया की सर्वाधिक आश्चर्यजनक वस्तु प्रतीत होती है।[75]

(2) कैप्टन कन्निंघम (1849 ई०)

"पंजाब रणजीत सिंह को, एक क्षीण हो रही मिसलदारी के ऐसे अस्त व्यस्त रूप में मिला था जो अपने सरदारों की दलबन्दी का शिकार हो चुका

---

74 इन विवरणों की पुस्तक रूप में प्रकाशन तिथियां संबंधित लेखकों के नामों के बाद कोष्ठकों में दी हैं।

75. Hugel, Travels in Cashmere and the Punjab, op. cit., p. 374.

था : जिसे अफ़गान मराठे धमका रहे थे तथा जो अंग्रेज़ी प्रभुत्व के अधीन हो जाने के लिए मानो तैयार खड़ा था। रणजीत सिंह ने बहुत सी छोटी छोटी रियासतों को संगठित करके, एक साम्राज्य का रूप दे दिया, काबुल के साम्राज्य से उसके सबसे अच्छे राज्य छीन कर इसके साथ जोड़ दिये और शक्तिवान अंग्रेज़ों को अपने साम्राज्य में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर ही नहीं दिया।[76]

(3) जॉन मार्शमैन (1867 ई०)

रणजीत सिंह की केवल असाधारण योग्यता के कारण ही सिख महानता का भवन निर्मित हो सका। यदि उन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अदम्य शक्ति चारों तरफ से घेर न लेती, तो वे सारे भारत में एक नवीन तथा शानदार साम्राज्य स्थापित कर लेते। वे सतरह वर्ष की आरम्भिक आयु में, अपनी जाति के पथ-प्रदर्शन के वारिस तब बने थे जब पंजाब अपने कई स्वंतत्र सरबराहों की पारस्परिक रगड़ भगड़ और मुठभेड़ के कारण खड़ा सतंम्भित तथा व्याकुल था। उन्होंने इसे एक ऐसा गुम्फित, मांसल एवं शक्तिशाली साम्राज्य बना कर छोड़ा, जिसके साथ दर्रानी सलतनत के कुछ सर्वाधिक समृद्धिशाली प्रांत सम्मिलित करके इसे और सर्मृद्धिशाली तथा सुदृढ़ बना दिया था।[77]

(4) सय्यद मुहम्मद लतीफ (1891 ई.)

"रणजीत सिंह ने सिखों की राजनीतिक दशा को नये सिरे से बना सवार दिया था तथा अनेक काटी-छांटी नगण्य रियासतों को एकत्रित करके, एक साम्राज्य कायम कर लिया था।"[78]

(5) जनरल सर गफ (1899 ई.)

"उन्होंने अपना जीवन लाहौर के एक सरबराह के रूप में आरम्भ किया था, और इसे अन्तिम रूप देने के पूर्व के सतलुज के उत्तर तथा

---

76. Cunninghum, A History of The Sikhs, op. cit., p. 200.
77. Marshman, History of India, op. cit., Vol. I, p. 39.
78 Latif, History of the Panjab, op. cit., p. 496.

पश्चिम की ओर, मुलतान से पेशावर और पेशावर से जम्मू, सभी जागीरों के स्वामी बन चुके थे।[79]

द्वितीय अंग

"मैंने यह राज्य-प्रभुत्व परमात्मा की कृपा और उनके दिये हुए बल एवं बुद्धि द्वारा जीता है।"

शेरे पंजाब पर हुई ऐसी कृपा और उनके पीछे कार्य कर रही दैवी शक्ति का उल्लेख करते हुए, उनके एक समकालीन हिन्दी कवि, श्री गणेशदास पिंगल ने लिखा था

चढ़त सिंहा नाती भयो, महा सिंह को नंद।
छत्र दीओ करतार ने, सरब सुखन को कंद।

देस पंजाब लीओ जब ही तब, आव चढ़ी खुशी बढ़ाई।
अगे नरिंद्र सो जोऊ हुते, सभ जीत लीए कर ज़ोर लगाई।
पाए सभा मो दिआल भई, दयु कांगड़ा कोट दीओ सुखदाई।
आनन्द भयो दुःख दंद गहओ, सु पहाड़ पती कर है सिवकाई।[80]
गोबिंद सिंघ आप, दीनों बड़ो प्रताप,
रणजीत सिंघ बाप जोत आपणी सु पाइके।
प्रिथम पंजाब जीत, नीत में प्रबीन भए,
कांगड़े का कोट, दवो दीओ हरखाइके।
अटक पटक देस, लीनी देर कीनी नाहि।

मार मुलतान, कश्मीर लीआ धाइके।
पाछेकरी दौर सु पशौर मार लए हुए।
अब चढ़े सभ सिंध, मन मैं खुलसाहिके।[81]

महाराज साहिब के ब्यान की पुष्टि केवल पिंगल के उपर्युक्त कथन से ही नहीं, उनके परमात्मा की दया और गुरु की कृपा पर दृढ़ तथा निरन्तर विश्वास से भी भली प्रकार विदित है।

---

79. Gough, The Sikhs and the Sikh Wars, op. cit., p. 30.

80. पिंगल, गणेश दास, फतहनामा गुरु खालसा जी का लाहौर - 1831 ल. प. मुलतान युद्ध पद्यांश सं० 5-7

81. उपर्युक्त, पेशावर युद्ध पद्यांश सं० 4.

इसी लिए तो उन्होंने यह राज्य-सत्ता संभालते ही, राजकीय मुद्रा तथा झण्डे को "अकाल सहाई" का धारक बनाया था तथा राज्यों, देशों एवं पत्रों को "श्री अकाल पुरख जी सहाय" के संबोधन से सज्जित किया था।" इस साम्राज्य का संपूर्ण राज्य कार्य अपनी जात, खानदान अथवा मिसल के स्थान पर उनके द्वारा सृजित खालसा के नाम पर ही आरम्भ कर इसे "खालसा जी" अथवा "सरकार खालसा" और "दरबार खालसा" कहा।[82] इसी तरह स्वयं को सुलतान अथवा बादशाह कहलवाने के स्थान पर "सिंह साहिब" अथवा सरकार रणजीत सिंह कहलवाना उत्तम समझा। राजकीय अथवा राजदूतावासीय पत्राचार भी "खालसा जी" के नाम पर ही जारी किया तथा सेनाओं में भी अभिवादनादि की विधि "वाहिगुरु जी का खालसा वाहिगुरु जी की फतह" कायम रखी।[83] अपने सबसे बड़े किलों का नाम खालसा के प्रवर्तक गुरु गोबिन्द सिंह जी के नाम पर ही "गोबिन्दगढ़" रखा।

मारवाड़ के राजा मानसिंह को लिखा पत्र उनकी ऐसी ही भावना तथा उसकी अभिव्यक्ति का एक सुन्दर उद्धरण है। उस में उसके राजकुमार के निधन पर शोक प्रकट करते हुए लिखा है : "हमें ये बातें प्रभु की इच्छा पर छोड़नी पड़ती हैं तथा फिर उसी की करुणा के लिए निवेदन करना पड़ता है कि वह आपके शुभ घराने को एक और सुपुत्र के वरदान से शोभित करे"। ... मुलतान, काश्मीर, भक्खर तथा मानकेरे का क्षेत्र पहले ही खालसा जी के अधीन हो चुका है। इस वर्ष खालसा फौज ने काबुल का प्रान्त अपने राज्य में विलयित कर लेने का निश्चय किया था – परन्तु समद खान ... इस के पेशावर पहुंचने पर ही खालसा जी के दरबार में उपहार लेकर उपस्थित हो गया था।[84] ऐसी भावना तथा उनके निश्चय का ही उल्लेख करते हुए कैप्टन औजबर्न अपनी दैनिकी में लिखता है :

"वे अपने धर्म के सिद्धान्तों के एक निष्ठावान विश्वसनीय तथा इसकी मर्यादाओं के अनुपालन के पाबंद थे। सिखों की धार्मिक पुस्तक "ग्रन्थ

---

82. Cunningham, History of the Sikhs, op. cit., p. 152.
83. Latif, History of the Panjab, op. cit., p. 353.
84. The Maharaja Ranjit Singh Centenary Volume, op. cit., p. 127.

साहिब" का पाठ उन्हें सदा सुनाया जाता था।"[85] इस बात की साक्षी तो कर्नल वुड के मुंशी तथा महाराजा साहिब के एक अन्य समकालीन, शहामत अली, ने भी भरी है और लिखा है कि वे "गुरु साहिब का पाठ प्रायः डेढ़ घण्टे के लिए प्रतिदिन सुनते हैं।[86] राज्य महल में सब से ऊंची अटारी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के विराजमान तथा प्रकाश के लिए आरक्षित थी। उनकी प्रत्येक पलटन में "गुरु ग्रन्थ साहिब" सर्वदा विराजमान रहते, उनके प्रत्येक अभियान में गुरु ग्रंथ साहिब की सवारी शामिल होती थी।[87] तभी तो प्रिं सीताराम कोहली लिखते हैं –

"ऐसे प्रतीत होता है कि मानों ये शब्द-मुख ही उनके गाइड और पथ-प्रदर्शक थे, तथा वही उनको बताते रहते थे कि उन्हें क्या कुछ और कब आरम्भ करना है।[88]

जहां तक उन्हें प्रदान किये गये बल एवं बुद्धि का संबंध है, उसकी महानता एवं विलक्षणता लगभग प्रत्येक पर्यटक, मुलाकाती, लेखक तथा इतिहासकार को सहर्ष स्वीकार है। जैसे :

(1) सर अलेग्जेंडर बर्नस (1834 ई०)

"मैं महाराजा रणजीत सिंह के अतिरिक्त, भारत के किसी भी अन्य निवासी के साथ हुई मुलाकात ओर वार्तालाप से इतना प्रभावित होकर कभी विदा नहीं हुआ। औपचारिक विद्या तथा व्यावसायिक निर्देशन के बिना ही वह अपने साम्राज्य के सभी मामले आश्चर्य युक्त शक्ति तथा युक्ति से स्वयं निपटाते हैं।[89]

---

85. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., pp. 16-17.

86. Shahamat Ali, M. The Sikhs and Afghans in connection with India and Persia, immediately before and after the Death of Ranjit Singh, London-1847, p. 18.

87 ऐसी ही कुछ प्रतियां ब्रिटिश पुस्तकालय तथा इण्डिया आफिस पुस्तकालय लण्डन में, अभी तक, सुरक्षित हैं। उनके दर्शन मैंने अपनी विलायत यात्राओं के दौरान स्वयं किये हैं तथा इनमें से कुछ नोट भी लिये हैं।

88. Kohli, Sunset of the Sikh Empire, op. cit., p. 6.

89. Burnes, Travels into Bukhara, etc., op. cit., Vol. I, p. 33.

(2) मि. विक्टर जैकेमोंट (1834 ई.)

"महाराजा रणजीत सिंह की बातचीत एक डरावने सपने की तरह है। वे प्रायः प्रथम भारतीय हैं जो आत्म - विश्लेषक, संवेदक एवं उत्सुक देखे हैं। उनकी उत्सुकता उनकी समूची जाति की बेदिली तथा बेपरवाही का लेखा पूरा कर देती है।"[90]

(3) आनरेबल विलियम ओस्बोर्न (1840 ई.)

"महाराजा रणजीत सिंह ऐसे दिल-दिमाग के स्वामी व्यक्तियों में से थे जो विशेषता और बड़ाई की प्राप्ति के लिए कुदरत की ओर से मानो निश्चित प्रतीत होते हैं। ... बिल्कुल अनपढ़, पढ़ने अथवा लिखने में भी असमर्थ होने के बावजूद, उन्होंने स्वयं अपनी नैसर्गिक तथा निराश्रय बुद्धि द्वारा अपने आप को एक साधारण व्यक्ति की अवस्था से उठा कर एक अक्खड़ तथा ताकतवर जाति के निरंकुश सम्राट की उपाधि से विभूषित कर लिया है। उन्होंने अपने साम्राज्य को केवल अपने दिल-दिमाग की शक्ति, निजी ताकत तथा साहस के द्वारा ही, पूर्व के किसी भी अन्य शासक के मुकाबले में अधिक दृढ़ नींव पर कायम किया हुआ है। यदि वे बर्तानवी सरकार की चतुर ईर्ष्या का शिकार न हो गये होते तो उन्होंने वर्तमान साम्राज्य में अफगानिस्तान नहीं तो सिंध का क्षेत्र तो कभी का सम्मिलित कर लिया होता।"[91]

(4) डाक्टर मैक्रेगर (1846 ई०)

"यह प्रत्यक्ष है कि महाराजा रणजीत सिंह कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वे तो मन-हृदय की ऐसी शक्तियों के स्वामी हैं जो पूर्वी अथवा पश्चिमी दुनियां में कभी-कभी ही प्राप्त हो जाया करते हैं।[92]

(5) मिः ऐलेक्सगार्डनर (1898 ई.)

"महाराजा रणजीत सिंह निःस्संदेह उन निपुण बुद्धिमानों में से एक थे

---

90. Jacquemont, Letters from India, op. cit., Vol. II, p. 22.
91. Osborne, The Court and Camp of Ranjeet Singh op., cit., pp. 16 & 36.
92. M' Gregor, The History of the Sikhs, op. cit., Vol. I, p. 280.

जिन्हें दुनिया का नक्शा बदलने के लिए केवल कोई अवसर ही आवश्यक होता है।''[93]

तीसरा अंग

मैंने अपने प्रशासन को उदारता, संयम तथा नीति से बाकायदा तथा संगठित बनाया है।

उपर्युक्त ओजवर्न ने ही आप के चरित्र तथा सफलता का उल्लेख करते हुए लिखा था : महाराजा रणजीत सिंह ने अपने मन्तव्यों तथा यत्नों का संबंध परस्पर सर्वदा समतल तथा समुचित रखा था। उनकी सफलता तथा विशेष रूप से शक्ति का संगठन अधिक सीमा तक उनके ठोस विचारों तथा योजनाओं की संभाव्यता के कारण थी। उन्होंने अपनी शक्ति अविवेकपूर्ण तथा संकटपूर्ण मुहिमों में कभी नहीं खपाई थी। वे तो अपनी लालसा को एक उचित संभावना की सीमाओं में अपनी सफलता को सुनिश्चित बनाने के लिए इन्हें समयानुकूल रखते और इनकी समुचित व्यवस्था करते रहे थे। असफलता (जो कम ही हुई तथा जो हुई भी तो) ने उनकी दृढ़ता को कभी नहीं डोलने अथवा उनके साधनों को कभी घटने नहीं दिया था।[94]

इसी बात तथा गुण का साक्षी भरते हुए जनरल गफ भी लिखता है –

''महाराजा रणजीत सिंह आवश्यक गुणों के वास्तविक अर्थों में स्वामी थे। लड़ाई में उनकी वीरता निस्संदेह थी, उनके विवेक की तीक्षणता तथा चतुरता विलक्षण थी। काम में उनकी चुस्ती प्रत्यक्ष थी। उनमें एक विशेष राजकीय विशेषता बड़े ऊंचे दर्जे तक मौजूद थी जो पूर्वी बादशाहों में प्राय: प्रकट नहीं होती तथा वह यह थी कि उन्हें इस बात का वास्तविक ज्ञान होता था कि वे किसी काम अथवा विचार की पैरवी से कहां तक जा सकते थे। उनके मूल मनोरथ अथवा मन्तव्य यद्यपि कितने ही बड़े अथवा दूर दर्शी होते, उनकी त्वरित कार्यवाही सर्वदा व्यवहारिक एवं संभाव्य होती। वे अपने प्रत्येक पग को प्रथम सुरक्षित कर, अगला पग उठाते रहे हैं।[95]

---

93. Pearce, Solidier & Traveller, op. cit., p.
94. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., p. 16.
95 Gough, and Innes, The Sikhs and the Sikh Wars, p. 29.

उनकी नीति की आधारमूल विशेषता एक वंश की प्रभुता के स्थान पर, खालसा फौज की प्रभुता तथा एकता थी।''[96]

उनकी ऐसी विवेकपूर्ण तथा सहनशील नीति, सुयोग्य एवं धर्मनिर्पेक्ष राज्य प्रशासन ने, उनके साम्राज्य में जो शान्ति एवं संयम स्थापित किया, उसका ज़िक्र करते हुए जार्ज कीन ने लिखा है, कि और तो और, उनके सैनिक मार्च अथवा सैनिक कूच के समय संयता भीड़ सैकड़ों तथा हज़ारों की संख्या में अग्रसरित हो रही होती, किन्तु रास्ते पर लगे हुए किसी वृक्ष की शाखा भी न तोडी जाती। अपने घोड़े के लिए कठिनाई से रास्ता बनाते हुए किसी यात्री पर कोई अभद्र टीका-टिप्पणी न की जाती।[97] उनकी दस्तुरुल अमल में सर्व प्रथम निर्देशन यह लिखा हुआ था : प्रत्येक सरकारी कर्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य प्रजा की भलाई है। डा० गोकुल चन्द नारंग के अनुसार :

वे इस की उल्लंघना करने वाले बड़े अधिकारी, उच्चाधिकारी अथवा आत्मीय को भी उसके ओहदे अथवा नौकरी से छुट्टी देने में कभी हिचकिचाते नहीं थे।[97-A] कर्मचारियों और अधिकारियों की ओर भेजे गए निर्देशनों में निम्नांकित फारसी इबारत प्रायः अंकित होती थी।

''आबादीए रिआया वा खैरखाही
वा फज़ूनीए माल सरकार मदेनज़र दारंद।
चाहार तरफे बह हमराह आंहा
रासती वी दरुसती वा हुसन
सलूकी वा सुलह दारंद।''[98]

अर्थात् ''प्रजा के कल्याण तथा सरकारी आय में वृद्धि को मुख्य रखना है। लोगों के साथ सर्वदा तथा सर्वत्र सत्यता, सहृदयता तथा सद्भावना के साथ व्यवहार करना है।''

---

96 Ibid, p. 42.
97. Keene, H. G., History of India from the Earliest Times to the Twentieth Century, Edinburgh-1915, Vol. II, p. 151.

97-A Narang, Transformation of Sikhism, op. cit., p. 178.

98 देखिए : सोहन लाल, उम्दा-तु-तवारीख, वही पृष्ठ 439, 457, 466, 515, इत्यादि।

लुधियाने की बर्तानवी एजेंसी के पोलिटिकल असिस्टेंट, कैप्टन ब्रेड ने गवर्नर जनरल की ओर 25 मई, 1831 को कलकत्ता में भेजे गये पत्र में लिखा है।

"लोगों की फसलों को नष्ट होने से बचाने के लिए उनके द्वारा अपनाई गई सतर्कता विचित्र है। अपनी सेनाओं के व्यवहार पर उनकी अपेक्षा अधिक कठोर नियंत्रण कदाचित कोई शासक रख सकते हैं।"[99]

ऐसी शान्ति, संयम तथा तरीके का कारण दर्शाते हुए, ग्रिफन लिखता है :

"महाराजा रणजीत सिंह जन्म से ही एक शासक थे। प्रभुता तथा आदेश-निर्देशन उनकी प्रतिभा में स्वभावतः सम्मिलित थे। लोग उनकी सेवा, आज्ञा का पालन, अन्तप्रेरणा के साथ स्वाभाविक रूप में करते थे।[100] सैनिक प्रशासन तथा संगठन के संबंध में तो उन्होंने डा० गुलशन लाल के अनुसार, अलौकिक राजनैतिक सूझ तथा निपुणता प्रकट की थी।" इस सिलसिले में तो "उन्हें भारतीय सम्राटों के खेमे में अद्वितीय स्थान निस्संदेह दिया जा सकता है।"[101]

जहां तक नीति निपुणता का संबंध है, फ्रांस सरकार के भेजे हुए प्रतिनिधि विक्टर जैकमोट, ने अपनी सरकार को अक्तूबर 1829 में लिख भेजे पत्र में बताया था :

"महाराजा रणजीत सिंह एक बिल्कुल आज़ाद बादशाह है तथा एशिया में बर्तानिया के बाद सब से बड़ी राज्य-शक्ति के स्वामी हैं। ... हमारा सबसे बुद्धि निपुण राजदूत उनके सामने अथवा मुकाबले में, एक नितान्त अथवा सीधा है।"[102] उनकी ऐसी बुद्धिमत्ता तथा नीति निपुणता का ही उल्लेख करते हुए विन्सैंट स्मिथ लिखता है : "वे अपनी बुद्धि तथा कुशलता के कारण अपने समकालीन प्रशासकों पर छाये रहे थे।"[103]

---

99. : Bengal Political Consultations, Range 126, Vol. 30 Capt. Wade's letter to the Secretary of the Governor-General, Adinanagar, 25 May 1831.
100. Griffin, Ranjit Singh, op. cit., p. 91.
101. Chopra, Panjab as a Sovereign State, op. cit., p. 134.
102. Jacquemont, Letters From India, op. cit., Vol. I, pp. 251 & 399.
103. Smith, Vincent A. in the Oxford History of India, pt. II. Oxford-1923, p.

"मैंने साहसी लोगों को पुरस्कार दिये हैं, योग्यता को जहां कहीं भी वह दृष्टिगोचर हुई है, उत्साहित किया है तथा रण-क्षेत्र में शूरवीरों की प्रशंसा की है।"[104]

महाराजा रणजीत सिंह के इस कथन की पुष्टि उनके उदार दीन दयालु तथा व्यक्तित्व परीक्षक स्वभाव:, उनकी विलक्षणता एवं व्यापक भावना पर आधारित नीति तथा उसके अधीन की गई असीम दयालुताओं तथा नियुक्तियों से ही स्पष्ट है।

डा० गुलशन राय चौपड़ा लिखते हैं :

"महाराजा रणजीत सिंह समूचे रूप में, एक उदार महाराजा थे। वे अपने कर्मचारियों को सर्वदा अच्छी तरह, पुरस्कारों प्रशंसा पत्रों से आभूषित करते रहे हैं।" उदाहरणार्थ, उनके फ्रांसीसी जनरल, क्लाड कोर्ट ने लाहौर के ढलाईखाने में से बम का पहला गोला बना कर जब पेश किया था तो, कर्नल गार्डनर के अनुसार, आपने उसे तीस हज़ार रुपये उसी समय पुरस्कार के रूप में दिये थे।[105]"

जहां तक योग्यता की पहचान, उसके सम्मान तथा उत्साहबर्द्धन का प्रश्न है उसकी साक्षी मेरठ के एक ब्राहमण दुकानदार के लड़के, खुशहाल चन्द को दी गई बड़ाई ही भर रही हैं। वह सतरह वर्षों की आयु में रोज़गार की तलाश में लाहौर आया था तथा पांच रुपये मासिक की तनखाह पर भर्ती हुआ था। कुछ वर्षों में ही वह एक प्रतिष्ठित ओहदे का प्रभारी, जमादार खुशहाल सिंह तथा लाहौर का एक अगण्य व्यक्ति बन गया। कुछ और समय पश्चात् तो वह काश्मीर का गर्वनर भी बना दिया गया था। इसी प्रकार, मिश्र दीवान चन्द भी तो गुजरांवाले के एक साधारण ब्राहमण दुकानदार का पुत्र था जिसे उन्होंने उसकी योग्यता को मुख्य मानते हुए, दुकान से उठा कर अपने तोपखाने में मुंशी लगा दिया था। तदुपरांत उसकी योग्यता पर आप इतने प्रसन्न हुए कि जनरल गौस खान के निधन के पश्चात् उसे तोपखाने की जरनैली प्रदान कर दी। मुलतान की जीत के लिए किये गये संघर्ष को दृष्टिगोचर रखकर उसे ज़फरजंग की उपाधि

104. Chopra, Panjab as a Sovereign State, op. cit., p. 128.
105. Pearce, Memoirs of Alexander Gardner, op. cit., p. 311.

तथा जागीर देकर और सम्मानित कर दिया गया था। "इबरतनामे" में उसकी उपाधि इस प्रकार अंकित है : "खैरखाह, बावफा, ज़फरजंग, फतह-नसीब मिस्र दीवान चन्द।"[106] उनका प्रधान मंत्री, राजा ध्यान सिंह भी तो जम्मू के एक मामूली ज़िमीदार का पालित पोषित था।" इसी प्रकार, फकीर अज़ीज़ुद्दीन लाहौर के हाकम राय को दवाखाने से उठाते ही, शनैः शनैः विदेश मंत्री बना दिये गये थे। अपनी योग्यता तथा महाराजा की मेहरबानी के कारण, फिर वे ऐसे पूर्ण विश्वास तथा स्वाभिमान के भागी बने। लारेंस लिखता है :

"अज़ीज़ुद्दीन अपने स्वामी का मुनाल (प्रवक्ता) है, तथा इस फर्ज़ और उत्तरदायित्व को अत्यन्त योग्यता के साथ निभाता है।[108]

ऐसे कई तथ्यों को मुख्य रखते हुए लोकप्रियता का एक बड़ा रहस्य यह था कि इसने ओहदा और पैसा प्राप्त करने की संभावनाएं साधारण से साधारण निवासी के लिए भी खुली रखी हुई थीं। इस तथ्य की पुष्टि इस वास्तविकता से स्पष्ट हो जाती है कि लाहौर दरबार के श्रेष्ठ उच्चाधिकारियों में से बहुत से तो ऐसे थे, जिन्हें उससे प्राप्त हुआ धन तथा यश वंशगत सिफारिश के स्थान पर, उनके अपने निजी गुणों के कारण था।"[109]

जहां तक युद्ध भूमि में शूरवीरों को सम्मानित किये जाने का संबंध है, उसकी पुष्टि ओजबर्ग के आगे दिये गये वक्तव्य से सहज में ही हो जाती है :

"महाराजा रणजीत सिंह का चरित्र एक विशाल-हृदय तथा उदारचित्त स्वामी का सा था। वे युद्ध भूमि में, अपने दस्तूर के अनुसार, अपनी बाज सोने के कंगनों से पिरो कर ले जाते थे। जहां तथा जब भी किसी सिपाही की शूरता का कोई कारनामा उनको दिखाई देता वे उसी समय एक जोड़ी कंगन उसे वहीं प्रदान कर देते।"[110]

---

106 अली-अल-दीन, इबरतनामा, सन् 1854 की रचना, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लंदन की फारसी हस्तलिपि सः 505 व 380 देखिए सोहन लाल म: तवारीखे महाराजा रणजीत सिंह। सन् 1831 की रचना। रायल एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी लंदन की हस्तलिपि सः 87 व 347

107. Smyth, A History of the Reigning Family of Lahore, pp. 248-252.

108. Lawrence, Adventures of an officer in the Panjab op. cit., Vol, II, p. 235.

109. Chopra, Panjab as a Sovereign State, op. cit., pp. 92-93.

110. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., p. 32.

"मैं अपनी सेना के साथ सभी संकटों तथा कलान्तताओं में हिस्सा बटाता रहा हूं। मैंने अपने सुख-आराम की कभी परवाह नहीं की है।"

शेरे पंजाब के इस कथन की पुष्टि के लिए एक आश्चर्यजनक उद्धरण उनका वह जोशीला तथा फुर्तीला अभियान है, जो खटक कबायलियों द्वारा सन् 1818 में, एक पंजाबी टुकड़ी के हज़ारे पहुंचते ही धोखे से मारे जाने का संवाद सुनते ही आपने तेज़-तर्रार आरम्भ किया था। उफनते अटक के तीव्र वेग को मुख्य रखते हुए कई साथियों के रोकने के बावजूद वे अपने हाथी पर ही चढ़े हुए अर्दास करके यह कहते हुए उसमें निर्भय उत्तर पड़े थे।"[111] कि अटक उनके लिए अटंक है जिन के दिल में अटक है, जिसके दिल में अटक नहीं, अटक उनकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अटक अटकाव कभी नहीं डालता।

ऐसे ही, जब वे सन् 1823 में भी मुहम्मद अज़ीम खान बारबजई तथा पठानों को कुचलने के लिए, अपनी सेना सहित, अटक पहुंचे थे, तो वहां भीषण वर्षा के कारण नदी में भारी बाढ़ आई हुई थी। मलाहों तथा इंजीनियरों ने पानी की भयानक प्रबलता को देखते हुए उन्हें पार पहुंचाने के लिए तत्काल प्रबन्ध करने से अपनी विवशता प्रकट कर दी। तब भी धुन के पक्के तथा आत्मिक शक्ति की प्रतिमूर्ति रणजीत सिंह सतगुर का आधार लेकर, झट अपने घोड़े को एड़ी लगा कर, सेना सहित, अटक में उत्तर पड़े थे और सुरक्षित पार हो गये थे।"[112]

उनकी ऐसी साहसपूर्ण सैनिक चढ़ाइयों तथा जीवन को संकट में डालने वाले संघर्षों को ही दृष्टिगोचर रखकर एक अन्य समकालीन, कैप्टन ओलिर्च लिखता है :

लड़ाई के समय, वे अपनी सेनाओं के सर्वदा आगे तथा आक्रमण में सबसे आगे होते थे। उन्होंने शत्रु के आमने सामने सिंध दरिया को दो बार, अपने रिसाले सहित पार किया था और जीत भी प्राप्त की थी। जहां तक इच्छा शक्ति

---

111. : Khushwant Singh, A History of the Sikhs, Princeton-1963, Vol. I, p. 253.

112 देखिए ब प्रेम सिंह शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह।
लाहौर 1918 ग्यारहवां संस्करण, लुधियाना 1980 (तम) पृष्ठ 173-74

और सहन-शक्ति का संबंध है, अपने लोगों में वे अनुपम थे।"[113]

उनके साथ इनकी घनिष्ठता तथा व्यक्तिगत जानकारी की स्थिति यह थी कि सर लैपल ग्रिफ्न के अनुसार, वे अपनी सेना के प्रत्येक सिपाही तथा अधिकारी की योग्यता और कुशलता से परिचित थे तथा उनकी योग्यता के अनुसार ही काम सौंपते थे।"[115] मुंशी गणेशदास बडेरा तो यहां तक कहता है कि शेरे पंजाब को तो उनके नाम पते भी स्मरण होते थे।"[116] बर्तानवी सरकार द्वारा उनकी चिकित्सा के लिए भेजा गया डा० मर्रे बताता है कि वे बिमारी के दौरान भी, अपने नियम तथा धुन के पक्के रहे थे। वे एक ऐसे असाधारण दृढ़ मन तथा नियमित स्वभाव के मनुष्य थे जो अपने राज्य-कार्य के सभी पक्षों को उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण तक बड़ी लग्न एवं परिश्रम से स्वयं सम्पन्न करते थे।[117] वे इतने साहसी, हिम्मती और दिलावर थे कि ओजबरन के अनुसार,[118] देहान्त के कुछ वर्ष पहले तक लड़ाई के समय, अपनी सेनाओं का पथ-प्रदर्शन स्वयं करते रहे हैं।"

उन की सेनाएं भी, कैप्टन बिंगले के शब्दों में अनुशासन तथा स्थिर चित्त दलों का एक प्रबल तथा अदम्य समूह थी।[119]

यह बात भी सोलह आने सच है कि महाराजा रणजीत सिंह ने अपने सुख-आराम की परवाह कभी भी नहीं की थी। वे एक बड़े परिश्रमी तथा साहसी, तत्पर तथा अथक प्राणी थे। उनके समकालीन, कवि साहिब सिंह ने लिखा है :

---

113. Orlich, Capt. Leopold Von, Travels in India, including Sindh and the Punjab, London-1845. p. 172.

115. Griffin. Ranjit Singh, op. cit., p. 48.

116 बडेरा, गणेशदास, रिसाला-ए-साहिब नुमा, तारीखे पंजाब सन् 1847 की रचना ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन की हस्तलिपि न० अंक 1693 व 62.

117 देखिए : इस द्वारा लाहौर से लुधियाना का बर्तानवी एजेंसी की ओर लिख भेजे पत्र

Murray to Wade, dated 15 February 1827-BPC (I), 23 March-1827, No. 28.

118. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., under 29 May 1838, p. 32.

119. Bingley, Capt. A. H. Sikhs : A Handlook for Indian Army, Calcutta-1918, p. 104; Griffin, Ranjit Singh, op. cit., p. 134.

सद ही कमर कसी हम देखी
कबहूं न सुसती मुख पर पेखी।[120]

उनकी निर्भयता तथा तत्परता का ही उल्लेख करते हुए, डा० मेक्रेगर कहता है : "उनके कभी परेशान अथवा भयभीत होने या कोई डर भय प्रकट करने का कोई एक भी उदाहरण कहीं नहीं मिलता। ...."

सरकारी मामले निपटाने के लिए वे दिन रात प्रतिपल सर्वदा तत्पर रहते हैं।"[121] सन् 1838 में, उनकी लार्ड आकलेण्ड के साथ फिरोज़पुर हुई मुलाकात के समय उन्हें शारीरिक रूप में निर्बल हुए देखकर, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उपर्युक्त सर्जन ने ही यह लिखा था : "हमें इस अनूठे मानव के ज़ोरदार और बलवान शरीर (जबकि वे अधरंग से भी पीड़ित थे) को देखने के अवसर प्रायः मिलते रहे हैं। उनकी मांसपेशियों का गठन अभी भी दर्शाता था कि एक असाधारण शक्ति के स्वामी मन के साथ एक ऐसा तन जुड़ा रहा था जो बिमारी से क्षीण होने से पहले कोई भी मेहनत, कोई भी संघर्ष करने के लिए सक्षम था।"[122]

शेरे पंजाब ने ऐसे परिश्रमी तथा सबल शरीर को, सामान्य राजाओं की तरह सजाने का यत्न कभी नहीं किया था। उन्हें आंखों देखने, जानने तथा चित्रित करने वाले विदेशी यात्री तथा कर्मचारी बताते हैं --

1 (हयूगल 1835 ई०) मैंने उन्हें कभी कढ़ाई अथवा ज़रीवाला कपड़ा, अथवा किसी किस्म का कोई गहना पहने हुए नहीं देखा।"[123]

2 कैप्टन औज़बर्न (1838 ई०) "एक सुनहरी कुर्सी पर, लात पर लात रखकर सादी सफेद पोशाक पहने, किसी भी आभूषण के बिना, परन्तु

---

120. 763.

121. M' Gregor, Dr. W. L., The History of the Sikhs, Containing the Lives of the Gurus, the History of the Independent Sirdars or Misals and the life of the Great Founder of the Sikh Monarchy, Maharaja Ranjit Singh, London-1846, Vol. I, p. 215.

122. M' Gregor, Dr. W. L., The History of the Sikhs, containing an account of the War between the Sikhs and the British in 1845-46, London-1846, Vol. II, p. 3.

123. Hugel, Travels in Cashmere and the Punjab, op. cit., pp. 379-80.

कटि के इर्द गिर्द बड़े मोतियों की इकाहरी लड़ी बांधे तथा एक बांह पर प्रसिद्ध हीरा, "कोहिनूर" बांधे हुए लाहौर का शेर बैठा होता है।[124]

3 कैप्टन ओर्लिच (1841) उनके दरबार में 'सजधज तथा ठाठ-बाठ अत्यधिक होने के बावजूद, वे स्वयं अपने वस्त्राभूषण में सादे थे, और बहुत कम भूषण धारण करते, किन्तु वे अपने चतुर्दिक प्रत्येक वस्तु में चाकचिक्य एवं सौन्दर्यातिरेक दर्शन के अत्यन्त इच्छुक थे"[125]

षष्ठ अंग

"मैंने पक्षपाती रुचि को न कभी मंत्री-मण्डल तथा न ही रणभूमि में संचरण करते हुए अपने हृदय में प्रवेश करने दिया है।"

जहां तक राज्य-कार्य से संपर्कित उच्चाधिकारों के समर्पण तथा ओहदों पर नियुक्ति का संबंध है, प्रि: सीता राम कोहली लिखते हैं : "इस के राज्य में धर्म तथा जाति का प्रश्न कभी उत्पन्न नहीं हुआ। यदि रणजीत सिंह की प्रजा पथ की प्रजा थी, जिसमें प्रत्येक सिख को दर्जे और ओहदे के विचार के बिना पूरे तथा बराबर के अधिकार प्राप्त थे, तो गैर-सिखों के लिए भी उनकी योग्यता तथा विद्वता के अनुसार राज्य दरबार के द्वार खुले थे।[126] "जनरल गार्डन ने भी इसी दृष्टि से उपर्युक्त की ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए बताया है :

"पंजाब का सम्राट तथा राजनैतिक मुख्य, एवं खालसे का नेता होने से, उन्होंने अपनी प्रजा के सभी भिन्न-भिन्न नसली मतान्तर वाले भागों को सरकारी नौकरी में सम्मिलित करके, उन्हें परस्पर मिलाने तथा अनुकूल बनाने का यत्न किया था।"[127] तभी तो उनके महल दरबार तथा सेना के उच्चाधिकारी अनेक मतों, विविध जातियों, भिन्न-भिन्न देशों, प्रान्तों तथा विभिन्न प्रथाओं में पालित पोषित तथा धारक थे। उदाहरणार्थ उनके

---

124. Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh, op. cit., p. 73.
125. Orlich, Travels in India, op. cit. Vol I p 172.
126 कोहली सीता राम संपादक फतहनामा गुरु खालसा जी का पटियाला 1952 पन्ना 52
127. Gardon, The sikhs, op. cit., p. 114.

प्रधान मंत्री राजा ध्यान सिंह एक डोगरा थे, विदेश मंत्री फकीर अजीजुदीन एक मुसलमान थे तथा कोश मंत्री दीवान भवानी दास एक हिन्दू थे।

साम्राज्य के चारों सूबों में, मुलतान के गवर्नर लाला सावण मल, पेशावर के जनरल ऐवीतेबाईल तथा काश्मीर के दीवान मोती राम थे। सेना की कमान यदि एक ओर सरदार हरी सिंह नलूआ, अकाली फूला सिंह तथा शाम सिंह अटारी के हाथों थी तो दूसरी ओर दीवान मोहकम चन्द, मिश्र दीवान चन्द तथा श्री जोरावर सिंह जैसे हिन्दू जनरल भी इसकी बागडोरें संभाले हुए थे। ऐसे ही मीआं मुहम्मद गोश खां, जनरल इलाही बख्श तथा सय्यद नूरुद्दीन जैसे मुसलमान कमानधारी भी उनके कंधे के साथ कंधा जोड़ कर लड़ते तथा मैदान मारते रहे थे। इसी तरह, यदि प्रवेशद्वार के रक्षक मेरठ के जमांदार खुशहाल चन्द(सिंह)तथा ज्योतिष के परामर्शदाता मालावार के संकरन थे, तो तोपखाने के इंचार्ज बेलीराम थे।

"इस महत्वपूर्ण तथा विशाल क्षेत्र में केवल ऐसे गुणवान पंजाबी अथवा भारतीय ही नहीं, अन्य देशों तथा जातियों के बुद्धिमान तथा अनुभवी लोग भी उसी तरह के मान सम्मान तथा ठाठ-बाठ के पात्र बने रहे थे। फ्रांस के ऐलार्ड, इटली के वनतूरा, अमरीका के हारलन, स्पेन के हरबन हंगरी के होनिंगबर्सर, यूरेशिया के होमज़, नैपाल के बालभद्रा, रूस के वोचिस, यूनान के हैस्ट, बर्तानिया के डा० हार्वे, जर्मनी के डयोनिस तथा आस्ट्रिया के स्टेनार आदि इस राज्य के ऐसे योग्य निर्माता तथा कार्यकर्त्ताओं के कतिपय नाम थे। तभी तो फकीर सय्यद वहीदुदीन लिखते हैं :

इस साम्राज्य का शासक यद्यपि एक सिख था, परन्तु इस प्रकार के राज्य-प्रशासन सभी जातियों के अनुभवी व्यक्तियों के साथ सम्मिलित एक संगठन चला रहा था। इस प्रकार के राज्य-प्रशासन ने रणजीत सिंह के राज्य को एक धर्म निर्पेक्ष नीति वाली सरकार होने की हैसियत तथा विशेषता दी थी, वैसे चाहे वह धर्म-राज्य वाली बुनियाद पर निर्मित की गई थी।"[128]

पद एवं पदोन्नतियां सर्वदा योग्यता तथा संपर्कित कार्य संबंधी निपुणता के आधार पर ही दी जाती थी। इसी आधार-तत्व को मुख्य रखते

---

128. Whaeed-ud-din, The Real Ranjit Singh, op. cit., p. 37.

हुए, डा० चोपड़ा ने लिखा है कि महाराजा साहिब योग्य व्यक्तियों को ही योग्य स्थानों के लिए चुनते और नियुक्त करते रहे थे।[129]

वे तो धर्म-कर्म के मामले में भी, ऐसी ही समझ तथा सतर्कता, न्यायशीलता तथा निष्पक्षता के साथ ही विचरण करते रहे थे। व्यक्तिगत रूप में वे एक सत्यनिष्ठ एवं श्रद्धालु सिख थे। सिख-धर्म के साक्षात तथा युगयुगान्तर तक अटल इष्ट, गुरु ग्रंथ साहिब के वरदान एवं मिहर में उनका विश्वास असीम एवं अखण्ड था। सतलुज के पार स्थित बर्तानवी एजैंसी के एक समकालीन एजेंट हैनरी प्रिंसेप ने सन् 1834 में लिखा था :

"महाराजा रणजीत सिंह यद्यपि एक कट्टर पंथी नहीं, तथापि वे सिख-धर्म के सभी नियत रीति-रिवाजों के पालन में सतर्क थे। वे अपनी धार्मिक पुस्तक गुरु ग्रंथ साहिब कुछ घण्टों के लिए रोज़ सुनते हैं।"[130] एक और समकालीन, कैप्टन मरे, लिखता है :

"महाराजा रणजीत सिंह का एक सामान्य व्यवहार है कि वह जब कभी भी कोई महत्वपूर्ण कार्य की योजना बनाते हैं, तो "गुरु ग्रंथ साहिब" पर दो पंक्तियां रखवा देते हैं। एक पर उनकी "अपनी इच्छा" तथा दूसरी पर उसका उलटा लिखा होता है। फिर एक बच्चे को भीतर ले जाकर, कोई एक पर्ची उठा कर लाने के लिए कहा जाता है। जो भी पर्ची वह सहज भाव से उठा कर ले आता उसकी लिखाई महाराजा के लिए इतनी संतोषजनक होती है जितनी आकाश वाणी समझी जाती है।"[131]

उन्हें जीवन के अन्तिम वर्षों में मिलते रहे, कैप्टन ओजबर्न ने भी उन का वर्णन किया हुआ है। उसने तो उसके 5 जून, 1838 के इंदराज में एक व्यवहार तथा विचार को अपने रोजनामचे में व्याख्या करते हुए, तो यहां तक लिख दिया था :

---

129. Panjab as a Sovereign State, op. cit., p. 135.

130. Prinsep H. T. Origin of the Sikh Power in the Punjab and Political Life of Maharaja Ranjit Singh with an account of the present conduct, religion, laws and customs of the Sikhs, Calcutta-1834; reprint Patiala-1970, pp. 143-44, : History of the Panjab, op. cit., p. 490.

131. Murray, Capt. W. History of the Punjab, London-1846,

और देखिए, इबरातनामा, वहीं व 191 92 तवारीख रणजीत सिंह, 57।

"महाराजा रणजीत सिंह अपना कोई भी महत्वपूर्ण अभियान उस पावन पुस्तक के परामर्श (अर्थात् "हुक्म" या "वाक" लिए बिना) हाथ में नहीं लेते। — उपर्युक्त व्यवहार के अनुसार उन्हें प्रस्तुत की गई प्रथम पर्ची जो संकल्पित अभियान के लिए शुभ तथा अनुकूल प्रमाणित हो जाती है, तो वे उसका बीड़ा विजय के अधिकाधिक विश्वास के साथ उठा लेते हैं। यदि दूसरी अथवा विपरीत विचार की सूचक होती है, तो उस कार्य अथवा मुहिम का विचार तुरन्त त्याग दिया जाता है।"[132]

सिख सद्गुरुओं के ऐतिहासिक स्थानों की जो ठोस, रचनात्मक तथा स्मरणीय सेवा उन्होंने की है, उसका सौभाग्य तथा श्रेय किसी भी सिख राजा अथवा जन-साधारण को अभी तक प्राप्त नहीं हो सका। गुरु नानक साहिब के जन्म-स्थान, ननकाना साहिब, के स्थायी प्रबन्ध के लिए लगाई गई बेमिसाल जागीर[133] तथा हरिमंदिर साहिब अमृतसर की करवाई गई स्वर्ण सेवा[134] इसी श्रद्धा तथा निष्ठा के कुछ अपार तथा अद्वितीय स्मृति-चिन्ह हैं। सुदूर दक्षिण के शहर नदेड़ में, गुरु गोबिन्द सिंह जी के पावन संस्कार-स्थान का निर्माण तो एक तरफ, वे तो संपूर्ण शहर को खरीद लेने के लिए निज़ाम हैदराबाद को मुंह मांगा मूल्य देने के लिए प्रत्येक संभव यत्न करते रहे।

---

132. Osborne, The Court and Camp of Runjit Singh, op. cit., pp. 45-46.

133 जत्थेदार प्रताप सिंह के अनुसार, "इस समय श्री ननकाना साहिब के नाम साढ़े सात सौ मुरब्बा के लगभग भूमि है। यह जागीर महाराजा रणजीत सिंह ने लगाई है। पंजाब में इतनी भूमि किसी मस्जिद अथवा मन्दिर के नाम नहीं।"

सिख ऐतिहासिक व्याख्यान, वहीं पृष्ठ 356-57

134 हरिमन्दिर साहिब की आप द्वारा 1830 में समाप्त हुई सेवा अनूठा अद्वितीय स्मृति-चिन्ह है। सुदूर दक्षिण के शहर नदेड़ में, गुरु गोबिन्द सिंह जी के पावन संस्कार-स्थान का निर्माण तो एक तरफ, वे तो संपूर्ण शहर ही खरीद लेने के लिए निज़ाम हैदराबाद को मुंह मांगा मूल्य देने के लिए प्रत्येक संभव यत्न करते रहे। तथा महान सेवा के कारण ही, पश्चिमी लोगों ने इनका नाम (स्वर्ण मन्दिर) रख दिया था। उदाहरणार्थ, आठ वर्ष बाद, सन् 1838 में बर्तानवी हिन्दुस्तान के तब के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड की बहन, मिस ऐमिली ईडन ने जब, इसके दर्शन किये तो इस पर चढ़ाये गये नये नये स्वर्णिम आच्छादन की शोभा देख कर उसकी आंखें चकाचौंध हो गई। तभी तो, उसने अपनी विलायत रहती बहन को बड़े चाव तथा भरोसे के साथ लिखा था :

गुरु घर की ऐसी निष्काम सेवा तथा निष्ठा ही महाराजा साहिब को अन्य धर्मों का समान आदर करने तथा उनकी शोभा बढ़ाने के लिए सर्वदा प्रेरित करती रही थी। उन्होंने दशम गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह जी के निम्नांकित उपदेश को मानो अपने राज्य-कार्य का आदर्श बना लिया था :

1. हिन्दू कोऊ, तुरक कोऊ, राफजी इमाम साफी
 मानस की जात सभै, एकै पहिचानबो,
 करता करीम सोई राजक रहीम ओही,
 दूसरो न भेद कोई, भूलि भूम मानबो।[135]

"हरि मन्दिर, सचमुच, शुद्ध सोने का है तथा वास्तविक एवं पूर्णरूपेण स्वर्ण जड़ित है जिस पर अतीव सुन्दर मीनाकारी भी की हुई है।"

देखिए-इसी लिए अन्य प्रान्तों, प्रदेशों तथा विदेशियों में अब भी इसका यही नाम, अर्थात् गोल्डन टैम्पल ही प्रचलित है।

ऐसे आदर्श सिद्धान्त के विश्वासी महाराजा रणजीत सिंह ने ही "कुरान शरीफ" की एक अत्यन्त सुन्दर तथा सचित्र सुनहरी जिल्द एक मुसलमान कातिब को मुंह मांगा मूल्य अर्थात् दस हज़ार मोहरें नकद देकर प्राप्त की थी।[137] कहते हैं जब फकीर अजीजुद्दीन ने मन्द मुस्कान के साथ पूछा "महाराज यह तो मोमन के काम आने वाली पुस्तक है, आपका इसके साथ क्यों संबंध?आपको इससे क्या प्राप्ति?तो महाराजा ने बड़े गर्व के साथ मुस्कुरा कर कहा था, "फ़कीर जी। प्रभु की इच्छा थी कि मैं सभी धर्मों, उनके सभी अनुयायिओं तथा धार्मिक पुस्तकों को एक दृष्टि से देखता रहूं, इसी लिए उन्होंने मेरी दूसरी आंख की रोशनी मुझ से बचपन में ही, छीन ली थी तथा इसी लिए मैं कुरान एवं "पुराण" आदि को एक ही दृष्टि से देखता हूं तथा सम्मान करता हूं।

---

135. 1734 : 15/85।

137. This same large holy Queen is on display today at Lahore Museum, Pakistan, and is being preserved with great care, which I, myself, saw in March, 1977 on my visit to Lahore. (The Sikh Review, op. cit., Vol. xxviii no, 320., p. 63.

कई मस्जिदों, मन्दिरों तथा ठाकुरद्वारों के नाम लगाई गई कई जागीरों के अतिरिक्त, बनारस तथा ज्वालामुखी के मन्दिरों की, की गई स्वर्ण-सेवा भी उनकी ऐसी उदार रुचि, सेकुलर नीति तथा सामान्य हितकारी व्यवहार की ही साक्षी भरती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सन् 1838 में शाह सुजाअ को, उसके निवेदन पर काबुल की गद्दी पुन: दिलवाने के लिए आप द्वारा प्रस्तुत की गई शर्तों में, अपनी हिन्दु प्रजा की धार्मिक भावना तथा संपूर्ण भारत के सम्मान को दृष्टिगोचर रखते हुए चंदन के उन द्वारों की ससम्मान वापसी भी सम्मिलित थी, जो मूर्तिविध्वंसक महमूद आठ सौ वर्ष पहले सोमनाथ के मन्दिर से उखाड़ कर गज़नी ले गया था।[138]

आस्ट्रीयन वैज्ञानिक, बैरन, हयूगल, जो सन् 1835 में ज्वालामुखी के दर्शनों के लिए गया था, लिखता है :

''बड़ी तथा छोटी दोनों इमारतों के सुनहरी छत्र अत्यन्त आकर्षक एवं शानदार ढंग से बनाये-सजाये गये हैं। ये दोनों महाराजा रणजीत सिंह की देन हैं।[139] मुंशी सोहन लाल के रोज़नामचे में लिखा है कि महाराजा साहिब ने 1835 के अगस्त में वहां के लिए दो सुनहरी छत्र भी भेंट किये थे।[140] ऐसे ही, बनारस के विश्वनाथ मन्दिर के शिखरों की स्वर्ण-सेवा के लिए भी तैंतीस मन सोना आपने ही भेजा था।[141] लाहौर में स्थापित धर्मी हकीकत राय की समाधि के नाम जागीर इन्होंने ही लगवाई थी। आपने ही सन् 1825 में जालंधर के एक मन्दिर के समक्ष, कुटिया डालकर, रह रहे एक वृद्ध साधु के लिए उसकी इच्छानुसार ज्वालामुखी में एक ऊँचा सा डेरा बनवा दिया था। वे छज्जु भक्त के चौबारे प्राय: जाया करते थे तथा साधुओं के रहने बैठने के लिए उन्होंने कई भवन भी बनवा दिये थे।[142] ऐसे ही धोलबाहा में एक शिव मन्दिर भी बनवा दिया था तथा उसके महन्त के

---

138. : Macmunn, G. F. Afghanistan from Darius to Amanallah, London-1929, p. 99, The Lure of the Indus, being the final acquisition of India, London-1936, p. 22.

139. Hugel, Travels in Cashmere and the Panjab, op. cit., p. 45.

140. सोहन लाल, उम्दा-त्-तवारीख, वही, कार्यालय भाग 2, पृष्ठ 263

141. : Maharaja Ranjit Singh Centenary Memorial, op. cit., p. ix.

142 देखिए : उम्दा-त्-तवारीख, वही कार्यालय 3, भाग 5 पृष्ठ 15, 108

नाम जागीर भी लगवा दी थी।[143]

महाराजा साहिब ने अपनी मुसलमान प्रजा के भावों तथा आवश्यकताओंको दृष्टि में रखते हुए, धर्म संस्थाओं तथा समाधियों के नाम भी जागीरें लगवाई तथा अपेक्षित सुविधाएं भी उपलब्ध करवाई हुई थी। आपने सन् 1799 में, लाहौर पर कब्जा करते ही, उसकी स्वर्ण मस्जिद का अधिकार उनके मुख्यों को दिलवा दिया था।[144] दातागंज बख्श के मज़ार की मुरम्मत तथा सजावट सरकारी तौर पर आपने ही करवाई थी तथा उसके स्थायी प्रबन्ध के लिए उसके नाम बाकायदा जागीर भी लगा दी थी। इसके अतिरिक्त, वहां प्रतिवर्ष उर्स के अवसर पर एक हजार रुपए की भेंट भी प्रस्तुत करवा दिया करते थे।[145] उन्होंने शेख अब्दुल कादर जीलानी के उत्तराधिकारियों को भी जागीरें दी थीं। इसी प्रकार, सन् 1818 में उन्होंने मुलतान के पीर बहावल हक के लंगर को चालू रखने के लिए पैंतीस सौ रुपये वार्षिक की जागीर निश्चित कर दी थी।[146] सन् 1821 में रावी की बाढ़ ने जब शाह बिलावल के मज़ार को अपनी लपेट में लेना चाहा तो महाराजा साहिब ने उसे बचाने के लिए हज़ारों रुपये खर्च कर बांध बनवा दिया था। परन्तु जब उसके प्रकोप से, फिर भी, बचता नज़र नहीं आया, तो उन्होंने इसे अपनी पहली जगह से उठवा कर वर्तमान स्थान पर टिकवा कर, उसके भवन को नये सिरे से निर्मित करवा दिया।[147]

पण्डित देवी प्रसाद बताते हैं कि महाराजा साहिब ने ऐसे धर्म स्थानों के नाम पच्चास लाख रुपये वार्षिक की जागीरें लगवाई थी।[148]

यहा यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि धर्मार्थ तथा दानार्थ उपयुक्त की तथा करवाई जाती राशियां उस समय तथा स्थिति से संबंधित हैं जब रुपये का मूल्य इतना अधिक था कि उनके एक योग्य समकालीन उपर्युक्त वैज्ञानिक तथा पर्यटक बैरन हयगल के अनुसार पंजाब का प्रायः नौ आने (आज के छप्पन

---

143 : Proceedings of Panjab History Conference, 13th Session, Patiala-1980, p. 167.

144 Latif, K. B., Syed Mohammad, Lahore : Its History, Architedural Remains and Antiquities, etc., Lahore-1892, p. 138.

145. देखिए अली-ए-दीन, इब्रातमान, वही व 712-14
712-14; Latif, Lahore, op. cit., pp. 158-59.

146. Gazetter of District Moolian, Lahore, 1883-84, p. 52.

147. Latif, Lahore, op. cit., p. 203.

148. देवी प्रसाद, पृष्ठ, तारीखे गुलशने पंजाब, लखनऊ 1850 पृष्ठ

पैसे) मासिक व्यय से अपने परिवार का सम्यक प्रकारेण भरण पोषण कर सकता था।[149]

शेरे पंजाब के ऐसे कल्याणकारी स्वभाव, निर्पक्ष नीति तथा सुयोग्य राज्य प्रशासन द्वारा सभी पंजाबियों को प्राप्त न्याय एवं व्यवस्था तथा समृद्धि को ही मुख्य रख कर फकीर घराने के आधुनिक विद्वान् वारिस, वहीद-उ-द्दीन ने लिखा है :

"सभी मत तथा सम्प्रदाय उन्हें केवल अपना रक्षक ही नहीं, अपने में से ही एक अपना सहजातीय तथा हम-शहरी समझते थे।"[150] महाराजा रणजीत सिंह की उपर्युक्त उदार, सुहृदय तथा धर्म निर्पेक्ष नीति, इस वास्तविकता को मुख्य रखते हुए कितनी आश्चर्यजनक, अनोखी तथा सम्माननीय प्रतीत होती हैं कि वे जिन धर्मों के अनुयायियों को इस प्रकार उदार हृदय से स्वीकार कर रहे हैं उनके अपने हमधर्मी उनमें से कइयों के निर्दयी तथा कट्टर धार्मिक अत्याचारों से, हाल ही में, मुश्किल से ही बच निकले थे।

सातवां अंग

"मैंने राजकीय प्रभुत्व के साथ साथ सतर्कता तथा सावधानी का आच्छादन भी धारण किये रखा है।

यह इस प्रकार की चौक्सी तथा होशियारी है जिसका समुचित रूप में उपयोग करने का निर्देश उन्होंने मेजर लारेंस को, कांगड़े का प्रशासन सौंपते समय, उपर्युक्त गुप्तादेश में इस प्रकार किया था :

"तुम सदा कांगड़े के किले में ही रहोगे, अथवा आवश्यक अनुपस्थिति के दौरान इसे अपने सबसे विश्वसनीय अनुयायी को सौंप कर जाना है। वह चाहे तत्कालीन नायब हो अथवा कोई और, उसे तुम्हारा दूसरा रूप होना आवश्यक है। उसके और तुम्हारे आदेश के अनुसार किले को सभी भीतर के चाहवानों के लिए बन्द रखना है। वह चाहे कोई भी हो चाहे मेरा बेटा, मंत्री अथवा कोई निजी सेवक ही हो, उसके पास मेरी सनद हो अथवा नहीं, किसी को भी भीतर प्रवेश करने नहीं देना, मुझे तब तक प्रविष्ट नहीं होने देना जब तक मैं न खिड़की में से अपना सिर तीन बार घुसेड़ न दिया हो और तुमने भी दाढ़ी की तीन बार परीक्षा न कर ली हो। तुम तभी और केवल तभी द्वार खोलोगे। तुम काश्मीर से लेकर

---

149. Hugel, Travells in Cashmere and the Punjab, op. cit., p. 391
150. Waheedu-ud-din, The Real Ranjit Singh, op. cit., p. 25.

बिलासपुर तक के सभी पड़ौसियों पर दृष्टि रखोगे। जम्मू, नूरपुर अथवा मण्डी से जब भी कोई हिलजुल हो फकीर अज़ीजुद्दीन को तत्काल सूचित कर देना है। यदि किसी भी तरफ कोई गड़बड़ का चिन्ह दृष्टिगोचर हो अथवा हमारा प्रभाव बढ़ाने का कोई अवसर प्रस्तुत हो तो सावधान रहना है और विदित करते रहना है। परन्तु आत्म-रक्षा के अतिरिक्त, स्पष्टादेश प्राप्त किये बिना किसी प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं करनी है। उस स्थिति में भी, यह जानते हुए जल्दबाज़ी नहीं करनी कि सरकार का आशय बदल भी सकता है अथवा परिस्थितियां भी कोई और रूप धारण कर सकती हैं। यहां बहुत कुछ नहीं कहा गया, परन्तु तुम में अपेक्षित विवेक है और तुम वह सब कुछ समझ जाओगे। परन्तु कर्मचारी सयाने तथा आज्ञाकारी हैं। उन्हें लापरवाही से, उसके विरुद्ध होने के लिए भड़काना क्रूरता तथा निर्दयता होगी। अब, यह कभी नहीं सोचना कि मेरे हृदय में संशय, संदेह बस रहा है। यह बात ऐसे कदापि नहीं। कांगड़े के इर्द गिर्द तायनात सरकार मेरे विश्वसनीय हैं। अस्तु वे चिरकाल तक मेरी कृपा दृष्टि के पात्र इसी तरह बने रहे। तथापि, सतर्कता और दूरदर्शिता विपत्ति से बचाती हैं। आशीर्वाद, सतर्क रहना, तत्पर रहना, सावधान रहना।[150ए]

महाराजा रणजीत सिंह स्वयं भी, आजीवन, इसी प्रकार चौकस, होशियार तथा सावधान रहे। उनकी पूर्ण सफलता का एक मुख्य कारण उनके स्वभाव तथा नीति का यह एक विशेष गुण भी था। पंजाब के प्रत्येक सरदार की सरदारी और निष्प्रभ किए हुए मीरों को संतुष्ट रखने, शताब्दियों से पंजाब को रौंदते रहे पठानों तथा अफगानों को सबक सिखाने तथा उनकी नाक में नकेल डाले रखने, शेष भारत को अपने अधीन कर चुके अंग्रेज़ों की कूट-नीति समझने तथा जीते जी उन्हें अपने राज्य क्षेत्र से दूर रखने के लिए जो राजनैतिक सूझ एवं सतर्कता उन्होंने दर्शायी थी, वह केवल साफल्मंडित ही नहीं, अपना उदाहरण स्वयं थी। इसी लिए डा० गंडा सिंह की आगे दिये गये विचार में कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती।

"वे अपनी श्रेष्ठ राजनैतिक सूझ तथा सैनिक प्रतिभा द्वारा वर्तमान रियासतों को अपने अधीन करने तथा पंजाबियों को एक बलशाली कौम के रूप में संगठित करने में सफल हो गये थे"[151] थोड़ा सा आगे चल कर यह भी उन्होंने ही लिखा है कि :

150-A. Lawrence, Adventures of an Officer in the Punjab, op. cit., p. 65-66.

151. A Brief Account of the Sikh People, op. cit., p. 66.

"महाराजा रणजीत सिंह एक बहुत ही विवेकशील शासक थे। अंग्रेज़ों की साज़-बाज़ तथा कुटिल नीति तब के हिन्दुस्तान में, उनसे अधिक अच्छी तरह संभवत: अन्य कोई भी समझ नहीं सका।[152]

आठवां अंग

"मैं फकीरों और पावन पुरुषों की सेवा करता और उनके आशीर्वाद प्राप्त करता रहा हूं।

महाराजा रणजीत सिंह के उपर्युक्त कथन की पुष्टि भी कई समकालीन वक्तव्यों से सम्यक प्रकार हो जाती है। जैसे सन् 1834 में उनके जीते-जी प्रिंसप ने लिखा था :

"महाराजा रणजीत सिंह फकीरों तथा पवित्र पुरुषों के लिए दान पुण्य करने में बड़े उदार एवं विशाल-हृदय हैं।"[153]

हमारे वयोवृद्ध बाबा नौंध सिंह जी की आंखों देखी साक्षी के आधार पर भाई कान्ह सिंह नाभा ने बताया है : "जब दिल्ली के गुरुद्वारों के पुजारी इन्हें लाहौर मिलने आये, तब उनके चरण भरे-दरबार में अपनी दाड़ी से झाढ़े थे [154 ए] तथा दुसांझ नाम का गांव जागीर के रूप में दिया था।[154]

लाहौर-अमृतसर में रहने वाले साधुओं-संतों तथा भाइयों-ज्ञानियों को भी वे इसी तरह सम्मानित करते और जागीरों आदि से विभूषित करते रहे। भाई संत सिंह ज्ञानी, भाई गुरमुख सिह, भाई बस्तीराम तथा भाई रूपा आदि के लिए उनके दिल में बड़ा प्यार तथा सम्मान था। मुंशी शहामत अली के अनुसार :

"भाई वस्ती राम जी के निवास-स्थान पर वे स्वयं, कभी कभी जाते और उनके पावन आशीर्वाद प्राप्त करते रहे हैं।[155] इसी तरह वे, अपने समय के महान दरवेशों, फकीर मस्ताने शाह तथा फकीर अलफशाह आदि के डेरों में भी जाकर नज़राने भेंट करते तथा दुआएं हासल करते रहे हैं।

---

152. Ibid, p. 69. Cunningham, History of the Sikhs, op. cit., P. 198.
153. Prinsep, Origin of the Sikh Power in the Punjab, op. cit., p. 144.
154. ए देखिए कान्ह सिंह, महान कोश, वही, पृष्ठ 763

155. Shahamat Ali, The Sikhs and Afghans, op. cit., p. 29.

महाराजा साहिब के हृदय में सिख शहीदों के लिए तो बड़ी श्रद्धा, बड़ा सम्मान था। उन्होंने उनके स्मारकों के नाम जागीरें लगा दी थीं। लाहौर के शहीद गंज के दर्शनों के लिए तो वे स्वयं प्रायः उपस्थित होते थे। सय्यद मुहम्मद लतीफ लिखता है :

''महाराजा रणजीत सिंह के दिल में शहीदों के इस स्थान के लिए बड़ा भारी सम्मान था। वे इसके दर्शनों के लिए प्रायः जाया करते थे। उन्होंने इसके निर्वाह तथा देखभाल के लिए लाहौर और अमृतसर के ज़िलों में काफी जागीर भी लगा दी थी।[156]

शेरे पंजाब ने उपर्युक्त धर्म स्थानों के नाम लगाई जागीरों तथा साधु फकीरों को दिये गये सम्मानों के अतिरिक्त, गरीबों और निराश्रितों की प्रसन्नता और आशीर्वाद लेने के लिए भी कई प्रबन्ध किये हुए थे। सय्यद मुहम्मद लतीफ के अनुसार :

''महाराजा रणजीत सिंह के सिरहाने के नीचे प्रत्येक रात्रि एक सौ रुपया रखा जाता था जो प्रातः काल ही, भाई राम सिंह द्वारा गरीबों में बांट दिया जाता था।[157] उन्होंने लाहौर और अमृतसर में सदाव्रत अथवा लंगर भी जारी किया हुआ था जो प्रत्येक प्राणी के लिए हर समय खुला रहता था। लाहौर और अमृतसर के मध्य पुल तवैफ पर भी एक ऐसा लंगर चालू था जहां से प्रत्येक निर्धन तथा यात्री को भोजन निःशुल्क प्राप्त हो जाता था।

उम्दा-तु-तवारीख में लिखा है कि वे प्रत्येक संक्रान्ति को अमृतसर जाते, दरबार साहिब में हाज़री भरते और प्रार्थना करते थे। उपरान्त ''तुलादान'' द्वारा सोना, चांदी, हाथी, घोड़े, गऊएं और भैंसें आदि दान पुण्य के रूप में दिया करते थे। प्रत्येक अमावस्या को भी तुलादान होता जिसके द्वारा ब्राह्मणों को अन्न-धन से मालामाल किया जाता। वैसाखी, दुसहरे तथा दीवाली के अवसरों पर भी विशेष तुलादान द्वारा हज़ारों रुपयों के माल धन धर्मार्थ दिये जाते थे। दीवाली वाले दिन तो उन्हें सोने से तोला जाता था।[158] उनकी उदारता और दानवीरता उनकी शूरवीरता के सदृश ही विश्व विख्यात थी।

---

156. Latif, Lahore, op. cit., p. 162.

158. देखिए सोहन लाल, उम्दा-तु-तवारीख, वही, कार्यालय 2 पृष्ठ 195, 204 इत्यादि।

सरकार तथा दरबार खालसा के वृत्ताकार, मुंशी सोहन लाल के अनुसार दान पुण्य विभाग का व्यय लगभग बीस लाख रुपए वार्षिक था जो कि कुल सरकारी व्यय का दसवां हिस्सा अर्थात् दशांश होता था।[159] अंग्रेजों के पर्यवेक्षण अधीन तैयार हुए सरकारी रिकार्ड में लिखा है : "कर्नल लारेंस की अपने परामर्शदाताओं द्वारा एकत्रित की गई सूचना से ज्ञात होता है कि महाराजा रणजीत सिंह प्रतिवर्ष बारह लाख रुपए दान के रूप में व्यय करते हैं।[160] महामारी के समय तो वे राजकोष के मुंह खोल देते थे। ग्रिफन के अनुसार सन् 1833 में काश्मीर में फैले अकाल के समय पच्चास हज़ार मन अनाज मुफ्त वितरित किया गया था।[161]

तभी तो, उनके राज्यकाल में पंजाब से अफगानिस्तान तक पैदल आने जाने वाले अंग्रेज़ यात्री, चार्लस मैसन ने लिखा था, "कोई एक दिन भी नहीं गुज़रता जब कि हज़ारों लोग माहराजा के जीते रहने के लिए तीक्ष्ण अभिलाषा प्रकट नहीं कर रहे होते। वे अपनी प्रजा के जनसाधारण में भी समान लोकप्रिय हैं और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करते हैं।"[162]

नवम अंग

"मैं दोषियों को निर्दोषों के समान ही क्षमा कर दिया करता रहा हूं तथा जिनके हाथ मेरे अपने व्यक्तित्व के विरुद्ध उठे थे, उन पर भी मैंने दया ही की है।"

यह कथन भी एक ऐतिहासिक सच्चाई का ही लिखित वक्तव्य है, तथा दूसरा कारण बिल्कुल स्पष्ट है। शेरे पंजाब का एक लक्ष्य एक ऐसे

---

159. देखिए उम्दा-तु-तवारीख, वही कार्यालय 3, भाग 4, पृष्ठ 10 तथा 72 भाग 4, पृष्ठ 421 और 446 इत्यादि।

160. : Panjab Government Records, 1847-48, p. 372.

161. अन्य विवरण हेतु देखिए : उम्दा-तु-तवारीख वही, कार्यालय 3, भाग 2 पृष्ठ 179 आदि।

162. Masson, Charles, Narrative of Various Journeys in Beluchistan, Afghanistan and the Punjab, including residence in those countries from 1826 to 1836, London-1842, Vol. I, p. 439.

राज्य की स्थापना थी जो उनके पंचम शहंशाह, गुरु अर्जुन देव जी के निम्नलिखित पावन वचन को व्यावहारिक रूप देकर ठीक अर्थों में "विनम्र राज्य" लेने तथा कहलवाने का सम्मान प्राप्त कर सके :

हुणि हुकमु होआ मिहरवाण दा,
पै कोइ न किसै रंञाण दा
सभ सुखाली वुठीआ
एहु होआ हलेमी राज जीओ।[163]

तब के अंग्रेज प्रधान सेनापति, सर हैनरी फेन का ऐडीकांग कैप्टन फेन, जो सन् 1837 में पंजाब में विचरण करता रहा था, अपने रोज़नामचे द्वारा बताता है :

"महाराजा रणजीत सिंह का स्वभाव तथा कृतित्व अपनी प्रजा में प्रायः दयालु एवं परोपकारी स्वामी का सा है। वे भारत पर राज्य कर चुके सर्वोत्तम बादशाहों में से एक हैं। उनके मूलतः एक अच्छा एवं मिलनसार मनुष्य होने की साक्षी, उनकी बच्चों के लिए स्नेह-भावना[164] ए (जिन में दो तीन तो दरबार में ही रेंगते रहते हैं) तथा किसी घोर अपराध के दोषी को भी कभी मृत्यु दण्ड न देने वाली सच्चाई बताती है। चाहे जो कुछ भी हो यह बात तो निश्चित है कि वे मृत्यु-दण्ड दिये बिना ही अपने निरंकुश लोगों पर भी पूरा अंकुश रखते हैं।"[164]

फेन से भी दो वर्ष पूर्व अर्थात् 1835 के पंजाब में भ्रमण करता हुआ वैज्ञानिक बैरन हयूगल भी इस तथ्य की साक्षी भरता हुआ लिखता है : महाराजा रणजीत सिंह किसी को भी मृत्यु अथवा अंग कटाई की सज़ा देने के लिए कभी भी सहमत नहीं होते। [165]।

---

163. गुरु ग्रंथ साहिब, रागु सिरी, महला 5 पृष्ठ 74

164. ए बच्चों तथा स्त्रियों के लिए उनकी कृपालुता तथा स्नेह भावना के बारे में देखिए Punjab Government Record 1847-48, p. 238.

164. Fane, Capt. H. E., Five Years in India, 1835-1839, London-1842; reprint, Patiala-1970, Vol. 1, pp. 95-96.

165. Hugel, Travels in Cashmere and the Punjab, op. cit., p. 317.

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का डा. मैक्रेसर भी उन्हें अत्याधिक दयालु एव कृपालु मानते हुए तथा उपर्युक्त विचार की पुष्टि करते हुए बताता है ''महाराजा साहिब भूतपूर्व बादशाहों से विलक्षण थे। उन्होंने मृत्यु अथवा अंग कटाई का दण्ड, असावधानी अथवा प्रमाद के मद में कभी भी किसी को नहीं दिया।''[166] लुधियाना की बर्तानवी एजेंसी के एक अंग्रेज़ अधिकारी हैनरी प्रिंसप ने उनके स्वभाव तथा राज्य प्रशासन की यह विशेषता उनकी जीवितवस्था लिख छाप कर, सन् 1834 में प्रकाशित कर दी थी कि उनके स्वभाव में क्रूरता अथवा निर्दयता का नाम-निशान भी नहीं था। उन्होंने गंभीर तथा घोर अपराध की स्थिति में भी किसी भी अपराधी की जान कभी नहीं गंवाई।''[167] उसी एजेंसी के एक अन्य अधिकारी कैप्टन मर्रे ने उनके इसी निरीक्षण को दोहराते हुए यह भी बताया था कि ''उदारता अपितु मानव-जीवन के लिए हार्दिक स्नेह, रणजीत सिंह के आचरण का निस्संदेह, एक विशेष लक्षण था। इस बात का कोई एक उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता कि उन्होंने कभी लापरवाही अथवा खरमस्ती में किसी के कत्ल से अपने हाथ कभी भी रंगे हों।''[168]

स. खुशवंत सिंह के अनुसार तो ''समूचे संसार के इतिहास में किसी अन्य तानाशाह का उल्लेख मिलना कठिन होगा जिसने किसी को भी कभी निर्दयता पूर्वक न मारा हो, तथा जिसने कदापि इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया हो जितना कि रणजीत सिंह ने किया था।''[169]

''और तो और, उनके कट्टर शत्रु भी जब उनके सामने पेश किये जाते तो वे अधिक तरस और क्षमा से ही काम लेते थे। पेशावर के यार मुहम्मद तथा दोस्त मुहम्मद और भिंबर के सुलतान खाने के साथ किया गया सलूक ऐसे व्यवहार के अविस्मरणीय उदाहरण है।[170] वास्तव में, वे

---

166. M' Gregor, History of the Sikhs, op. cit., Vol, I, p. 281.
167. Princep, origin of the Sikh Power in the Punjab, etc., op. cit., p. 143.
168. Murray, Capt. H., History of British India, with continuation, comprising. . . . War in the Punjab, London-1856, p. 615.
169-A. Lord Lawrence's observation on Ranjit Singh on the Calcutta Review, Calcutta – August, 1844.
Punjab Government Record 1847-48, p. 238.
170. Latif, History of the Punjab, op. cit., p. 473; Hasrat, Life and Times of Ranjit Singh, op. cit., p. 345 etc.

अपराधियों को कठोरता की अपेक्षा दयालुता के भार तले इतना दबा देते थे कि वे उसके प्रभाव अधीन भविष्य में स्वयंमेव सुधर जाते थे।

जहां तक जीत कर अधीन कर लिए गये विरोधियों का संबंध है, महाराजा साहिब की नीति तथा उस पर व्यावहारिक प्रयोग उपर्युक्त स्वभाव का ही एक अन्य चमत्कारी पक्ष था। उसकी भरपूर सफलता का उल्लेख करते हुए, प्रिं. सीता राम कोहली ने लिखा है, महाराजा रणजीत सिंह की अन्य रजवाड़ों को अधीन कर लेने की नीति सफल हुई थी, क्योंकि उन्होंने उनके पूर्व स्वामियों तथा उनके उत्तराधिकारियों को बड़ी उदारता के साथ सुख सुविधाएं देने की ओर विशेष ध्यान दिया था। कुछ राजे नवाब तो जागीरें स्वीकार करने तथा सुखी और सुरक्षित जीवन व्यतीत करने पर ही प्रसन्न हो गये थे। उनमें से जो अधिक सक्रिय थे, वे महाराजा के अधीन सेवा करने और अपनी सेनाएं शाही सेना में शामिल हो जाने पर ही प्रसन्न हो गये थे।"[171]

तभी तो सर हैनरी लारेंस लिख गया है : "सिंहासन च्युत राज घरानों के प्राणी दिल्ली एवं काबुल में अत्यन्त ग़रीबी और बेबसी द्वारा ग्रसित दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु पंजाब में कोई भी ऐसा घराना नज़र नहीं आता जिसके राज्य क्षेत्र को महराराजा रणजीत सिंह ने जीत लेने के पश्चात् काफी जागीर एवं पैंशन प्रदान करके ऐसी बेबसी और दुर्दशा से बचा न लिया है।[172] उन्होंने तो केवल सिख राज-घरानों को ही नहीं, अन्य मतों के भी ऐसे सभी खानदानों को भी उसी तरह से राजकीय सम्मान से सुशोभित कर दिया था। लाहौर के सरदार चेत सिंह, कसूर के नवाब कुतुबद्दीन कांगड़े के राजा संसार चन्द तथा मुलतान के नवाब मुज़फ़्फ़रद्दीन आदि के प्रति दर्शायी ऐसी मिहरबानी और सहानुभूति इस सच्चाई की पुष्टि करती है।[173]

---

171. Kohli, Sunset of the Sikh Empire, op. cit., p. 7.
172. Lawrence, Sir H., as quoted in Maharaja Ranjit Singh First Death Centenary Memorial op. cit., p. 208.

173 उदाहरणार्थ देखिए : सोहन लाल उम्दा-तु-तवारीख कार्यालय 3 पृष्ठ 93

173. Gough, The Sikhs and the Sikh Wars, op. cit., pp. 35-36, Latif, History of the Panjab, op. cit., pp. 350-51; Maharaja Ranjit Singh Centenary Memorial, op. cit., p. 25.

जहां तक महाराजा के अपने व्यक्तित्व पर हुए घातक आक्रमणों का संबंध है, उन्हें बहुत निकट से देखने तथा वर्णन करने वाला औजबर्न लिखता है :

"वे एक शासक के रूप में नरम दिल और रहमदिल हैं। ... उन्होंने खुले मैदान हुई लड़ाई को छोड़ कभी किसी को जान से नहीं मारा, चाहे उनकी अपनी जान लेने के लिए एकाधिक यत्न हो चुके हों"[174]

फकीर घराने के उपर्युक्त विद्वान वारिस सय्यद वहीदुद्दीन ने मानों इसी सच्चाई की पुष्टि करते हुए, सहज में ही लिखा है :

"उनके राज्य में मृत्यु दण्ड जो नवीन सरकारें भी अभी हटा नहीं सकीं असली तौर पर बिल्कुल नहीं था। यह तो जब उनकी अपनी जान पर आक्रमण हुआ था, तब भी अपराधी को सज़ा नहीं दी गई थी।"[175]

दशम अंग

श्री अकाल पुरुख जी अपने इस सेवक पर, इसी लिए दयाल रहे हैं, तथा उसकी राज्य शक्ति में बृद्धि करते रहे हैं, यहां तक कि उसका राज्य क्षेत्र अब चीन तथा अफगानिस्तान की सीमाओं तक फैला हुआ है और जिसमें सतलुज के पास की उपजाऊ बस्तियां भी सम्मिलित हैं।

महाराजा साहिब के उपर्युक्त कथन का यह अन्तिम वाक्य भी शत-प्रतिशत सत्य है। वे मूलतः एक धार्मिक तथा ईश्वर भक्त प्राणी थे। उन्हें ईश्वर की कृपा तथा सद्गुरु के प्रसाद पर पूर्ण भरोसा था और अपना बल, बुद्धि और राज्यैश्वर्य उनकी दयालुता ही मानते थे।

सर लैपल ग्रिफिन के अनुसार : उनका निश्चय था कि अकाल पुरुष की कृपा से ही राज्य चला रहे थे। उनके सिक्कों पर गुरु साहिब का नाम अंकित था।वे अपने लोगों (जिन में वे सर्वदा लोकप्रिय रहे हैं) के एक चुने हुए नेता से बढ़ कर और कुछ नहीं थे। [176]

उनके ऐसे विश्वास तथा भावना का एक सुन्दर दृष्टान्त अकालपुरुष के नाम स्थापित तथा समर्पित "हरि मन्दिर साहिब" "अमृतसर की, की

---

174. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., p. 36.
175 Waheed-ud-din, The Real Ranjit Singh, op. cit., p. 38.
176 Griffin, Sir L., The Punjab Chiefs etc., Lahore-1890, Vol. I, p. 85.

गई तथा करवाई गई अनुपम सेवा तथा उसका किया हुआ अतुलनीय वर्णन है। उसके पावन प्रसाद को सजाने तथा उसे "स्वर्ण मन्दिर" बनाने के लिए उन्होंने लाखों रुपयों का सोना तथा मूल्यवान पत्थर का उपयोग करके, वर्षों सेवा और संभाल की। परन्तु उसके सामने के द्वार पर जो सूचना-पत्र लगाने की आज्ञा दी वह अकाल पुरुष के गुणों का वर्णन करने वाले मूल मंत्र का निम्नलिखित विवरण का सूचक है। "श्री महाराज गुरु साहिब जी ने अपना परम सेवक शिष्य जानकर, श्री दरबार साहिब जी की सेवा भी महाराजा सिंह साहिब रणजीत सिंह जी पर दया करके करवाई संगत 1887 वि."[177]

जहां तक उपर्युक्त शक्ति निश्चय और कृपा से, उनकी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही शक्ति का संबंध है उसकी ओर संकेत करते हुए कैप्टन, क्रोथर ने लिखा है : "कई मिसलदारियों को एक ही राज्य शक्ति में पिरोये जाने का सौभाग्य एक उस्ताद हाथ द्वारा ही प्राप्त होना था और ऐसा उस्ताद हाथ रणजीत सिंह का निजत्व ही था। उन्होंने एक विचारधारा की सैनिक सक्रियता को अपनी वैयक्तिक कार्यकुशलता के बल से उसके धार्मिक जोश के साथ जोड़ दिया था और उसी के कारण एक साम्राज्य की स्थानपा कर ली थी।[178]

जहां तक उनके राज्य के प्रसार का संबंध है उस बारे में कोई दो मत नहीं हो सकते। इसकी सीमाएं निस्संदेह, तिब्बत से सिंध और खैब्बर से सतलुज तक फैली हुई थीं।[179] यदि अंग्रेज़ों ने तब तक शेष संपूर्ण भारत पर अधिकार न कर लिया होता, यदि हिन्दुस्तानी रजवाड़े कायर तथा स्वार्थी न होते, यदि बर्तानवी साम्राज्यवादी अपने किये वादों पर कायम रहते और यदि सतलुज के इस पार के सिख उनकी कुटिलनीति भांप कर समय को यथासमय समझ और संभाल लेते तो उनके द्वारा स्थापित इस सांझे और स्वतंत्र पंजाब की सीमाएं कम से कम यमुना तक तो अवश्य फैल जातीं। उनकी शताब्दी का अंग्रेज़ इतिहासकार जार्ज माशमैन तो यहां तक लिख गया है कि यदि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की निर्बाध शक्ति उन्हें चारों ओर से

---

177 यह लिखाई वहां एक स्वर्णिम पृष्ठ पर अभी तक इसी प्रकार अंकित है।

178. Crowther, Capt. R. T., Memorandum on the Sikhs, Government of India Army Department, Calcutta-1894.

179. Prinsep, Origin of the Sikh Power in Panjab, op. cit., pp. 145-46.

घेर न लेती तो वे सारे भारत में एक नया और शानदार साम्राज्य निस्संदेह कायम कर लेते।"[180] इस सच्चाई को तो उससे भी पच्चीस वर्ष पूर्व अंग्रेज़ भूगोलविद जी. टी. वाईन ने भी निःसंकोच स्वीकार करते हुए अपने सन् 1844 में प्रकाशित सफरनामे में लिखा था :

"यदि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की विराट शक्ति उनकी गति पर रोक न लगा देती तो रणजीत सिंह दिल्ली के तख्त पर कभी के बैठ गये होते।[181] केवल दिल्ली का राज्य सिंहासन और भारत का साम्राज्य ही नहीं वे तो अफगानिस्तान का राज्य क्षेत्र भी अपने राज्य क्षेत्र में विलयित कर लेने के लक्ष्य थे। तभी तो फ्रांस सरकार के भेजे हुए विक्टर जैकेमोट ने 1830 के लगभग लिख भेजे अपने पत्र द्वारा अपने देशवासियों को बताया था :

"महाराजा रणजीत सिंह यदि कभी यह सोच लें कि पंजाब में कुछ समय के लिए सावधानी से अनुपस्थित रह सकते हैं तो उनके लिए संपूर्ण अफगानिस्तान को जीत लेने से अधिक सहज बात कोई और नहीं होगी।"[182]

इसके बावजूद, इस राज्य का प्रसार, साज़-सौन्दर्य, समृद्धि तथा सुख शान्ति की चर्चा केवल एशिया में ही नहीं, सारे यूरोप में हो रहा था।

सन् 1835 में क़ाश्मीर तथा पंजाब की यात्रा समाप्त करने के पश्चात् पश्चिमी लोगों की जानकारी के लिए भी उसने लिखा था :

"उन सभी समाचारों की (जो मैं अपनी यात्रा के दौरान सुनता रहा था) भारत पहुंचने पर, केवल पुष्टि ही नहीं हो गई, अपितु वे उस स्तर से भी अधिक ठोस सिद्ध हुए जिसे मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। महाराजा साहिब ने मुझे केवल (एक महान् सम्राट के लिए शोभादायक) रक्षा तथा राजकीय सम्मान ही प्रदान नहीं किया, बल्कि उनकी कृपालुता ने मेरे मन

---

180. Marshman, History of India, op. cit., Vol. I, p. 39.

181. Vigne, G. T., Travels in Kashmir, Ladak, Iskardo, the Countries adjoining the mountain course of the Indus and the Himalayas, North of the Punjab, London-1844, Vol. II, p. 421.

182. Jacquemont, Letters from India, op. cit., Vol. II, p. 139.
Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op. cit., p. 36.

पर एक चिरस्थायी छाप भी लगा दी है।"[183] उनके शहरों और किलों पर खैब्बर पर्यन्त, पंजाब राज्य के सिक्के चल रहे थे और झण्डे झूल रहे थे। ऐसे ही प्रभाव और स्वाभिमान का उल्लेख करते हुए, समकालीन कवि जाफरबेग तथा निहाल सिंह तैश लिखते हैं :

1. जाफ़रबेग सिंघा खैब्बर बस कीता
   पईआँ भाजड़ां विच कंधार सारी।[184]

2. कलानौर फिलौर पिशौर ताईं
   टक्के देंवदे नी मारे हूरिआं दे। ...
   पैण भाजड़ां चीन मचीन ताईं
   काबुल कंबदा ज़रा खंघूरिआं दे।[185]

3. जाफ़र बेग सरदार दी धमक डाढ़ी
   टक्के आउंदे चीन मचीन ताईं।[186]

यह शानदार स्थिति एक ऐसी महान् प्राप्ति की सूचक है जिसे इस सारे उप महाद्वीप तथा दुनिया के अनेक महाद्वीपों के स्वामी बन चुके अंग्रेज़ 1947 तक भी कई चालों एवं आक्रमणों के बावजूद प्राप्त नहीं कर सके थे और जो संसार की प्रमुख शक्तियों की दृष्टियों को अभी भी इसी तरह ललचा रही है।

यह एक ऐसे महान तथा बलशाली शासक की प्राप्ति थी जिसने यदि एक ओर, अपनी पश्चिमी सीमा की तरफ से एक सहस्र वर्ष से ही पठानी तथा अफगानी आक्रमणों का मुंह मोड़ दिया था, तो दूसरी ओर पूर्वी दिशा की ओर से निरन्तर बढ़ रहे और संपूर्ण भारत पर अधिकार कर चुके अंग्रेज़ों को सतलुज पार कर सकने का साहस ही नहीं बटोरने दिया था। यह पंजाब के एक बुद्धिमान तथा शूरवीर सपूत की प्राप्ति थी जिसने अपनी मातृभूमि को न केवल विदेशियों के पंजों से छुड़ा लिया था बल्कि इस का

---

183 जाफरबेग, सीहरफी सरकार की वही काव्यांश सं० 2

185 निहाल सिंह वार, काव्यांश सं० 4

186 जाफरबेग, सीहरफी, वही काव्यांश सं० 3

मान-सम्मान भी इतना बढ़ा दिया था कि यह कुछ दशकों के अन्तराल में ही, एक स्वतंत्र तथा अन्र्राष्ट्रीय प्रसिद्धि और सामर्थ्य की अधिकारी भी बन गई थी।

यह तो एक ऐसे स्वतंत्र तथा शक्तिवान् सम्राट की देन थी जो तत्कालीन भारत का सर्वोच्च तथा बलशाली देशी शासक माना गया था : जिसकी मिश्र के मुहम्मद अली और फ्रांस के नेपोलियन के साथ तुलना करते हुए फ्रांसिस जैकेमौंट ने अपने देश की सरकार तथा जनता को 1829 में बताया था :

"रणजीत सिंह एक बिल्कुल आज़ाद सम्राट हैं तथा एशिया में, बर्तानिया के बाद सर्वाधिक गहन राज्यशक्ति के स्वामी हैं।"[187] यह तो एक ऐसे प्रवीण तथा प्रतापशाली महाराजा की देन थी जिसके दरबार की शानशौकत प्रत्येक देशी विदेशी की आंखें चौंधिया रही थी और जिसका उल्लेख करते हुए उसके एक समकालीन दर्शक एशिया के कर्नल स्टेनबेच ने लिखा था :

"इस में वह सब कुछ मौजूद था जो कल्पना मानवीय महानता के संबंध में अनुमान लगा सकती है, जो तीव्र कल्पना, शाही शानशौकत के शिखर को व्यक्त करने के लिए चितांकन कर सकती है। यूरोप के शायद ही किसी अन्य राज्य दरबार के पास ऐसे मूल्यवान हीरे और रत्न मौजूद हों, जैसे लाहौर दरबार के राज्य कोष में संचित हैं।"[188] जहां तक उस दरबार से संबंधित व्यक्तियों की शानशौकत का संबंध है के.के. खुल्लर ने हाल ही में लिखा है :

"सभी अंग्रेज़ी वृतान्तों के अनुसार महाराजा रणजीत सिंह का दरबार उसमें शामिल पुरुषों की अत्यन्त सुन्दर सूरतों और परिधान के कारण दुनिया के सभी राज्य दरबारों में बाज़ी ले गया था।"[189]

---

187. Jacquemont, Letter from India, op. cit., letter dated October 1829, Vol. I, p. 251.

188. Steinbach, Lt. Col, The Panjaub – being a brief Account of the Country of the Sikhs, London, 2nd ed.-1846, p. 148.

189. Khullar, K. K., Maharaja Ranjit Singh, New Delhi-1980, p. 196.

पंजाब और पंजाबियों को प्राप्त हुई ऐसी स्वतंत्रता एवं समृद्धि ऐसी न्याय एवं व्यवस्था, ऐसा सम्मान एवं धन, ऐसी शान और शौकत और ऐसा ही और बहुत कुछ, एक ऐसे महान तथा आलीशान पंजाबी की प्राप्ति और देन थी जिसे बहुत से समकालीन वृतान्तकारों, इतिहासकारों और पर्यटन साहित्यकारों[190] आदि ने अपनी-अपनी पुस्तकों में एक विचित्र और विलक्षण, अनूठी अथवा अनोखी, असाधारण अथवा असामान्य व्यक्तित्व माना है जैसे

1. इंग्लैण्ड के बादशाह विलियम के राज्यदूत, सर अलैग्जैण्डर बर्नज़ (1831)

''रणजीत सिंह, प्रत्येक दृष्टि से एक असाधारण व्यक्ति हैं। मैंने उनके फ्रांसीसी अधिकारियों (जो सभी निकटवर्ती राज्य शक्तियों से परिचित है) कहते हुए सुना है कि कुस्तुनतुनिया से लेकर भारत तक उनका कोई सानी अथवा समरूप कहीं भी नहीं।[191]

2. बर्तानवी हिन्दु के तब के गवर्नर जनरल के मिल्टरी सैक्रेटरी, आनरेबल विलियम ओज़बर्न (1838)

''कोई भी व्यक्ति रणजीत सिंह के एक बहुत ही असाधारण मनुष्य होने का अहसास ग्रहण किये बिना रह नहीं सकता। मैं तो उन्हें जितना अधिक देखता और विचार करता हूं, वे मुझे उतने ही अधिक असाधारण व्यक्ति प्रतीत होते हैं।''[192]

3. इतिहासकार जार्ज मार्शमैन (1867)

''वह अपने समय में, कुस्तुनतुनिया तथा पीकिंग के मध्य क्षेत्र के सर्वाधिक विलक्षण मनुष्य था।''[193]

---

190 इन में से पहले दो विदेशियों के नामों के उपरान्त कोष्ठकों में अंकित ईसवी सन् उनके पंजाब में भ्रमण तथा शेरे पंजाब के साथ साक्षात्कार के समय से संबंधित हैं।परवर्ती तीनों के संबंध में दिये हुए सन्, उनकी पुस्तकों की मुद्रण तिथियों के साथ संबंधित है।

191. Burnes, Travels into Bokhara, op. cit., Vol. I, p. 140.

192. Osborne, The Court and Camp of Runjeet Singh, op., cit., pp. 32 & 35.

193. Marshman, History of India, op. cit., Vol. I. p. 39.

4. अंग्रेज़ जरनैल सर चार्लस गफ (1897)

"सिंह एक अनोखे और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे।"[194]

5. अंग्रेज़ जरनैल सर जान गार्डन (1904).

"रणजीत सिंह एक अतुलनीय व्यक्तित्व थे।"[195]

तभी तो पंजाब और इसके इस अनूठे सम्राट के ऐसे महान गुणों एवं बड़प्पन का उल्लेख केवल देश में ही नहीं, विदेशों से भी साधारणतया हो, रहा था।

तभी तो, उसके साथ मैत्री संबंध स्थापित करने के लिए, केवल इंग्लैण्ड का सम्राट ही नहीं, रूस और फ्रांस के बादशाह भी प्रयत्न कर रहे थे। तभी तो भारत के केवल हिन्दू सिख राजे ही नहीं, मुसलमान शासक भी उसकी शरण तथा सहायता लेते और मित्रता का दम भरते नज़र आ रहे थे। सन् 1831 की परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हुए जार्ज कन्निघम लिखता है

"महाराजा रणजीत सिंह की लोकप्रियता अब अपने शीर्ष पर थी, और दूर-दराज के देशों के राजा उनकी दोस्ती प्राप्त करने के लिए यत्न कर रहे थे। सन् 1829 में बिलोचिस्तान के राजदूत उनके लिए घोड़े लेकर आये थे और उन्होंने इस बात की आशा प्रकट की थी कि हरंद और दजल की सीमावर्ती चौकियां जो इनके बहावलपुरी जागीरदार ने हड़प कर ली थी उनके खान को लौटा दी जाएं। महाराजा साहिब हरात के शाह महिमूद के साथ थे इसी प्रकार का पत्राचार कर रहे थे। सन् 1830 में उन्हें ग्वालियर की बेजा बाई ने जवान सिंधिया के विवाहोत्सव को अपनी उपस्थिति से शोभित करने के लिए निमंत्रण भेजा था। अंग्रेज़ों को इस बात का संदेह था कि उन्होंने रूस के साथ भी पत्राचार आरम्भ किया हुआ है, और वे स्वयं भी उनकी चापलूसी आरम्भ करने वाले थे।"[196]

कन्निघम का यह कथन भी एक हकीकत का ही वक्तव्य है। उसके वतन के बादशाह, विलियम चतुर्थ ने शेरे पंजाब को सन् 1830-31 में एक

194. Gough, The Sikhs and the Sikh Wars, op. cit., p. 39.
195. Gordon, The Sikhs, op. cit., p. 110.
196. Cunningham, A History of the Sikhs, op. cit., pp. 172-73.

ख़ास राजदूत, सर अलैग्ज़ैण्डर बर्नज़ द्वारा मित्रता का एक शानदार पत्र और कई मूल्यवान उपहार भी भेज कर दोस्ती का हाथ बढ़ाया था।[198]

बर्तानवी हिन्द के दो गवर्नर जनरल, लार्ड बैंटिंक तथा लार्ड आकलैण्ड और कमाण्डर-इन-चीफ, सर हैनरी फेन उनके साथ मेल-मिलाप तथा विचार-विमर्श करने के लिए क्रमशः 1831, 1838 और 1837 में पंजाब के शहर लाहौर, फिरोज़पुर तथा रोपड़ में स्वयं आये थे। 26 अक्तूबर 1831 को रोपड़ में हुई मुलाकात की आन-शान तो विश्व चर्चा का विषय बन गई थी और मौके के विदेशी गवाहों ने इसे Punjab field of cloth of gold. पंजाब का स्वर्णिम क्षेत्र बताया और लिखा था।[199] जहां तक इन्हें इस प्रकार व्यवस्थित करने वाले महाराजे का संबंध है, परवर्ती गवर्नर जनरल, लार्ड आकलैण्ड ने 1838 में इन्हें The most powerful and valuable of our friends.[200] हमारा (अर्थात् अंग्रेज़ों का) स्वाधिक बलशाली और आदरणीय मित्र माना और बताया था। उसने तो महाराजा को यह भी लिखा था :

''बुद्धि के प्रताप से, अंग्रेज़ और सिख, एक दूसरे से सर्वदा जुड़े रहेंगे। उसके साथ आई उसकी चित्रकार और साहित्यकार बहन, ऐमिली इडन, ने उनके व्यक्तित्व और प्राप्ति का उल्लेख करते हुए लिखा था:

''उन्होंने अपने आपको, स्वयं ही, एक अजीभ बादशाह बना लिया है और बहुत से बलशाली शत्रुओं को जीत लिया है। वे अपने राज्य-कार्य में विचित्र ढंग से, निष्पक्ष एवं न्यायकारी हैं। उन्होंने संयम और कवायद सिखा-सिखवा कर, एक बहुत बड़ी सेना तैयार की हुई है, वे कदाचित ही, कभी किसी को जान से मारते हैं, जो किसी तानाशाह के संबंध में एक

---

198. Burnes, Travels into Bokhara, op. cit., Vol. I, p. 132.
Latif, History of the Panjab, op. cit., p. 447.

199 सावस्तार समाचार के लिए देखिए Fraser, B., Military Memoirs of Lieut-Col James Skinner, Vol. I, London-1851, entries pertaining to 25-31 Oct., 1831 etc., Fane H. E. Five Years in India, Vol. I, London-1842, Chapter VII to IX; Osborne, W. G., The Court and Camp of Ranjeet Singh, London-1840, pp. 21-82.

सूरी सोहन लाल, उम्दा-तु-तवारीख, लाहौर 1809 कार्यालय 2-4, इत्यादि।

200. Aukland's Minute, dated 12 May 1838.

आश्चर्यजनक बात है। उनकी प्रजा उन्हें बेहद प्यार करती है : लोगों में उनके लिए स्नेह बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। हम सभी इससे बहुत प्रभावित हुए हैं।[201]

फ्रांस के बादशाह, लूई फिलिप, ने जो चिट्ठी 27 अक्तूबर, 1835 को, उन्हे भेजी थी, उसमें उसने उन्हें Padichah Punjab करके संबोधित किया है और लिखा था

"यद्यपि लम्बे फासले और गहन समुद्र पंजाब के साम्राज्य को फ्रांस के साम्राज्य से अलग किये हुए हैं, तथापि यह अलगाव उस प्यार के बीच में कोई अवरोध पैदा नहीं करता, जिसने हम दोनों के दिलों को जोड़ा हुआ है।[202] नेशनल आर्काइवज आफ इण्डिया में उसकी 9 अक्तूर, 1837 को भेजी हुई चिट्ठी भी मौजूद है।[203]

रूस के शहनशाह, अलैग्ज़ैण्डर ज़ार ने भी शेरे पंजाब के साथ दोस्ती और व्यापार का ऐसा संबंध स्थापित करने के लिए अपेक्षित कार्यवाही तथा पत्राचार किया था।[204] रूस की ओर से 1821 में आई एक चिट्ठी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक कर्मचारी मूरक्राफ्ट ने उलाख में ही काबू कर ली थी। इस में महाराजा साहिब को विश्वास दिलाते हुए लिखा था :

पंजाब के व्यापारियों का रूसी राज्य-क्षेत्र में हार्दिक स्वागत किया जाएगा — रूस का सम्राट उस देश का विशेषतया शुभचिन्तक है [205] जिस

---

201. Eden, Up the Country, op. cit., Vol. I, pp. 298-99.

202 इस चिट्ठी (दिनांक 27.10.1835) की मूल प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी एण्ड रिकार्डज लंदन में सुरक्षित है।

203. : Index to Proceedings of the Government of India in the Foreign Department for the Years 1830-1839, Vol. II, Calcutta-1885, 42-44, P. C.

204. : Moorcraft, W. and Frebeck, C., Travels in the Himalayan Provinces of Hindostan and the Punjab in Ladak and Kashmir, in the Peshawar, Kabul and Kunduz and Pirkhura from 1819 to 1825, London-1837, Vol I, pp. 383 & 387;

204 देखिए लुधियाना स्थित पुलिटीकल असिस्टैंट, कैप्टन वैड, की दिल्ली स्थित अंग्रेज़ रैजीडैंट को लिखी चिट्ठी दिनांक 24 अगस्त 1830

Marshman, History of India, op. cit., Vol. II, p. 129.

205. Moorraft Travels, op. cit., Vol. I, p. 99 & 103.

पर सिखों का राजा रणजीत सिंह राज्य कर रहा है। इस पत्र से यह भी विदित था कि जिस आदमी के हाथ वह पत्र पंजाब की ओर भेजा गया था, वह उससे छः वर्ष पहले भी महाराजा साहिब को रूसी सरकार के कई ऐसे पत्र पहुंचा चुका था।[206]

जहां तक हिन्दुस्तानी राजाओं और नवाबों को दी गई शरण तथा सहायता का संबंध है, उसके उदाहरण भी कई मिलते हैं।

अंग्रेज़ों का खदेड़ा हुआ मराठा प्रमुख, जसवंत राय हुलकर और रोहेलों का मुखी अमीर खान तो उनका आश्रय एवं सहायता लेने के लिए 1805 में सीधे अमृतसर पहुंच गये थे। पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर में सुरक्षित एक पुरानी पाण्डुलिपि में बताया है : संवत 1862 मघर की बाईवीं, मंगलबार, मरहट्टा जसवंत राय अमृतसर में आया। पाछे पाछे फिरंगी मरहट्टे के लगा आया। सो भी अमृतसर जी आन पहुंचा। फेर मरहटे नालल पग् बटाई रणजीत सिंह ने, मित्र बणो रतु के चले लीते।"[207]

सन् 1832–34 में जोधपुर के महाराजे के साथ शेरे पंजाब का गुप्त पत्राचार चलता रहा है जो नैशनल आर्काइवज़, दिल्ली में अभी तक सुरक्षित है।[208]

सन् 1826 में हैदराबाद के निजाम, दरवेश मुहम्मद ने आपको अपने वकील द्वारा चार बहुमूल्य घोड़े, एक हीरक जड़ित तलवार, एक बढ़िया तोप और एक अद्वितीय छत्र पेश करके पंजाब राज्य के साथ अपने मैत्री संबंध स्थापित किये थे। उसका प्रेषित अनुपम छत्र अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक होने के कारण तत्क्षण दरबार साहिब में सुशोभित होने के लिए अमृतसर भेज दिया गया था और वह वहां अभी तक वैसे ही मौजूद है।

अंग्रेज़ों ने मराठों के पेशवा बाजी राओ द्वितीय को सन् 1818 में पदच्युत कर दिया था। तत्पश्चात् वे भरतपुर के राजा रणधीर सिंह को

---

206. Cunningham, History of the Sikhs, op. cit., p. 150.

207. देखिए यूनिवर्सिटी आफ पंजाब, लाहौर की पाण्डुलिपि सं० 408
Mohan Singh, Dr., A History of Panjabi Literature, Lahore-1932; 3rd. ed., Jullundur-1971, p. 129.

208. : Index to Proceedings, op. cit., P. C. No. 40-41, 14-14A, 149-50, etc.

भी सिंहासन च्युत कर देने का भय दिखा रहे थे। दोनों ने, अंततः हार कर, महाराजा रणजीत सिंह की शरण एवं सहायता के लिए निवेदन किया था। महाराजा साहिब ने इसे स्वीकार करने से पूर्व, मारवाड़ के राजा मानसिंह का परामर्श ले लेना आवश्यक समझा क्योंकि वे उसे राजपूताने का सर्वोच्च एवं धर्मपारायण शासक मानते थे। महाराजा साहिब ने इसे इस संबंध में 25 दिसम्बर 1822 को जो पत्र लिख भेजा था उसके कतिपयांश निम्नानुसार है :

"हमारे दरबार का समाचार इस प्रकार है:

मुलतान और काश्मीर के सूबे भक्खर और मनकोरे का क्षेत्र इत्यादि, पहले ही खालसा जी के अधीन हो चुके हैं। खालसा फौज ने काबुल के सूबे को अपने राज्य से मिला लेने का इरादा किया था, और उसके अनुसार वह पेशावर के निकट पहुच भी गई थी। परन्तु सम्मद खान (नवाब आज़िम खान का अनुज जो कि वज़ीर फतह खान का भाई है), वही "खालसा दरबार" में हाज़र हो गया और कई बहुमूल्य उपहार पेश करके, उसने घोषणा की :

नवाब आज़म खान (काबुल का तत्कालीन शासक) खालसा दरबार की सेवा करने के लिए तैयार है और हमारे तीस हज़ार बहादुर घोड़ सवारों की सेवा आप जब चाहे ले सकते हैं। हमारा कामरान (काबुल के बादशाह महमूद शाह का पुत्र) के साथ, फतहखान के कत्ल के कारण, पैतृक बैर है। शुजाअ-उल-मुल्क और शाह हमें दण्ड दिलवाने के लिए अंग्रेज़ों के पास ठहरे हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में, हमने स्वयं को खालसा जी की रक्षा अधीन छोड़ दिया है और उसकी सेवार्थ मरने को भी तैयार हैं। अतः हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त रिसाले को कायम रखने के लिए काबुल, कृपया हमारे पास ही रहने दिया जाए।"

"इस दौरान पेशवा (बाजी राओ द्वितीय) के राजपूत और भरतपुर का राजा (रणधीर सिंह) हाज़िर हुए हैं। उन्होंने निवेदन किया है कि यदि खालसा जी की फौज दिल्ली की ओर भेज दी जाए, तो वे उसके खर्चे आदि के लिए एक एक लाख रुपया हाज़िर करेंगे।

आप स्वय यह अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दुस्तान की स्थिति, इन शासकों के परस्पर बैर विरोध के कारण और बिगड़ चुकी है। उनमें

पारस्परिक सौहार्द एवं स्नेही भावना बिल्कुल नहीं।"

"हम हिन्दुस्तान में आपके अतिरिक्त किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानते जो अपने धर्म तथा वचन पर पहरा दे सकता हो। अतः यह पत्र एक विशेष हरकारे द्वारा आपको भेज रहे हैं।

हमें आशा है कि आप भारत की रक्षा के लिए हमें उत्तम परामर्श देंगे, जिसकी कि पुनः आवश्यक पैरवी की जाएगी। बराय मेहरबानी, अपना कोई विश्वसनीय सयाना व्यक्ति यहां भेज दीजिए क्योंकि कुछ बातें ऐसी भी हैं जो कागज़ पर लिखी नहीं जा सकती। अतः उस व्यक्ति को यहीं रह जाना चाहिए। कृपापूर्वक हरकारे के मौखिक निवेदन भी स्वीकार कर लें।" दिनांक द्वादश शुक्लपक्ष अग्रहायण का विक्रम संवत् 1897"[209]

उपर्युक्त पत्र का प्रत्यांग तत्कालीन पंजाब के गौरव राज्य-शक्ति एवं प्रभाव और शेरे पंजाब की अपूर्व शक्ति,प्रभावशालीनता और स्वाभिमान की सजीव प्रतिमा है। इसके प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द से वह हार्दिक स्नेह भी उद्वेलित हो रहा है जो उनके हृदय में पंथ के लिए, "पंजाब के लिए और संपूर्ण भारतवर्ष के लिए सर्वदा तरंगित हो रहा था, और जो उनकी अद्वितीय प्राप्ति एवं अनुपम योगदान का मौलिक स्रोत एवं प्रेरक शक्ति भी था।"

गुरु गोबिन्द सिंह फाऊंडेशन से
साभार

---

209 12 अग्रहायण 1879 (तदनुसार 22 दिसम्बर 1822 ई०) उपर्युक्त की उपर्युक्त चिट्ठी की मारवाड़ी प्रतिलिपि रियासत जोधपुर के अभिलेख कार्यालय में सुरक्षित है, देखिए।

Tripathi, Prof. L. K. & Har Dayal Singh (ed.), The Maharaja Ranjit Singh Centenary Volume, Cawnpore-1940, pp. 121-128.
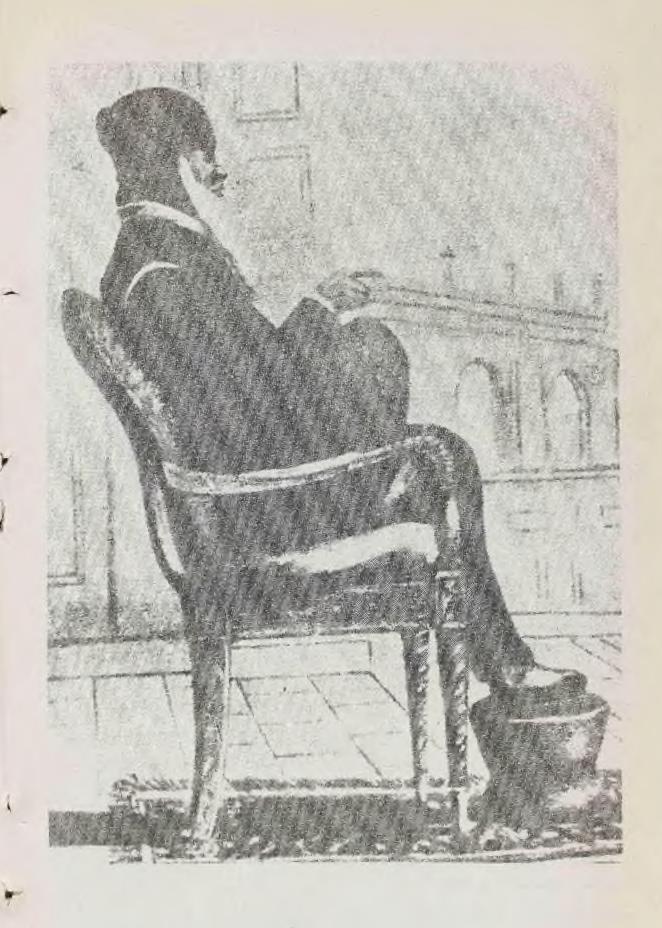
रणजीत सिंह - पंजाबियत का प्रतीक

— शा० लाल सिंह

महाराजा रणजीत सिंह प्रायः 59 वर्ष पंजाब की भूमि पर विचरण करता रहा, पंजाब के स्वाभिमान के लिए दृढ़तापूर्वक सजग रहा, शान्ति एवं न्याय की स्थापना से लोक-प्रिय बना और पंजाब के वैभवैश्वर्य को विश्वव्यापी बनाने में सफल हुआ। हमारे इतिहास में राजा पोरस तथा हर्षवर्द्धन जैसे बलशाली राजा-महाराजा हुए हैं, परन्तु पंजाब की सामूहिक जनता जिस श्रद्धाभाव से महाराजा रणजीत सिंह की स्मृति दिलों में संजोये बैठा है ऐसा गौरव किसी अन्य राजे, महाराजे अथवा नबाव को प्राप्त नहीं हुआ। जागृत पंजाबी जनता किसी को दिल का सिंहासन प्रस्तुत नहीं करती। देश के स्वाभिमान के लिए शीश हथेली पर रख कर चलने वाला शूरवीर, दिन-रात लोक कल्याण के लिए संघर्ष करते हुए क्लान्त-श्रान्त हुए बगैर ओजपूर्ण रहने वाला सतर्क सेवक, किसी प्रकार के भेदभाव से निर्लिप्त रह कर मनुष्यमात्र के प्यार से छलकते दिलवाला सुखी दिलावर और जीवन संग्राम के कठोर से कठोर संकट के समय मन-हृदय को अत्यन्त शीतल रख सकने वाला आत्मविश्वासी मनुष्य, इस कठोर धरा के कठोर वासियों के हृदयों में स्थान बना सकता है। रणजीत सिंह ऐसा सौभाग्यशाली मनुष्य हुआ है। यह पंजाबियत का प्रतीक बन कर पंजाब को विश्व मानचित्र पर चमकाने में सफल हुआ है।

पंजाबियत

स्वाधीनता : पंजाबी आचरण का मुख्य चिन्ह स्वतंत्र भावना से जीना है। यदि स्वाधीनता की भावना मरती हो तो गर्वीला पंजाबी मृत्यु को श्रेयस्कर समझता है। आत्मा की मृत्यु से शरीर की मृत्यु पंजाबियों को सर्वदा पसन्द रही है। पंजाब के आदि कवि बाबा फरीद जी और आधुनिकता के प्रवर्तक शायर भाई वीर सिंह के शब्द पंजाबी आचरण को

इस प्रकार प्रकट करते हैं :

फरीदा बारि पराये बैसणा साई मुझे न देह।
जे तूं एवैं रखसी जीउ सरीरहु लेहि।

(बाबा फरीद)

मरजी हेठ किसे दी मरजी, धक्के नाल न लगे कदी।

(भाई वीर सिंह)

पंजाबी आचरण का यह अभिन्न अंग है, जहां गुलामी-भरी हीनता चुभन दे, पंजाबी वहां डट जाते हैं। तलवारों-तीरों वाले शूरवीर तो ऐसा करते ही हैं, जोगी बना रांझा भी नाथ की धूनी के उपले ढोने से विरक्त हो गया था। रणजीत सिंह चूंकि तप्त युद्ध में जूझने वालों का पुत्र-पौत्र था, इस लिए उसका स्वाधीनता की भावना से सराबोर होना स्वाभाविक था। इतिहास बताता है कि इसके परदादा सरदार बुद्ध सिंह जी जिन्होंने श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी से अमृतपान किया था, के शरीर पर 30 घाव तलवार के और भाले के और 9 गोलियों के थे। रणजीत सिंह का दादा चढ़त सिंह बड़े घल्लूघारे के समय जब लगभग पच्चास हज़ार सिखों में से तीस हज़ार सिंह सूर्य चढ़ने और अस्त होने के मध्य शहीद हो गए, शवों का दाह संस्कार करने के समय यह अर्दास करने वाला था, ''कलगियां वाले! तेरा खालसा कुंदन-कुंदन रह गया है, अब शक्ति दो, ये अफगान के पंजाब के सम्मान को रौंदना चाहते हैं। पंजाब में से सुरक्षित न जायें।'' इसी तरह रणजीत सिंह का पिता सरदार महां सिंह गुजरांवाले के क्षेत्र में बब्बर शेर की भान्ति भभकता रहा। रणजीत सिंह अभी प्रायः तेरह वर्ष का था जब सरदार महा सिंह पूर्ण यौवनावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गया तो माता राज कौर और दीवान लखपत राय उभरते रणजीत सिंह को संभल-संभल कर पांव रखने की सलाह देने लगे। परन्तु रणजीत सिंह निर्भय होकर चट्ठों के भयानक क्षेत्र में घूमना चाहता था। एक बार हशमत खां चट्ठे ने मन्दभावना से जंगल के वृक्षों का आश्रय लेकर शिकार खेल रहे रणजीत सिंह पर अचानक आक्रमण कर दिया। निपुण घुड़सवार, कुशल लक्ष्य भेदी और तलवार के धनी रणजीत सिंह ने फुर्ती के साथ न केवल अपने आप को ही बचाया बल्कि शेर के समान लपक कर हशमत खां चट्ठे के सिर को धड़ से अलग

कर के और नेज़े पर टांग कर लोगों की जय-जय कार प्राप्त की। रणजीत सिंह को सबसे बड़ी चिढ़ यह थी कि जब अफगान काबुल से लाहौर की तरफ आते थे तो लाहौर के भंगी सरदार, शहर को खाली कर जाते थे। वह ललकारना चाहता था, अफगान आक्रमणकारियों को, चाहे वह अब्दाली का पुत्र हो अथवा पौत्र हो।शाह ज़मान के चौथे आक्रमण के समय, 17 वर्षीय गभरु रणजीत सिंह ने प्रण किया कि वह लाहौर के किले पर शाह ज़मान को टिकने नहीं देगा। 1797 ईसवी में जब शाह ज़मान ने बिना रोक टोक के लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया और भंगी सरदार शहर छोड़ कर चले गये तो रणजीत सिंह और उसके स्वाभिमानी घुड़सवार, लाहौर के किले के इर्द गिर्द भूखे बाजों की तरह मंडराने लगे। जब शाह मान की सेनाएं अमृतसर की तरफ बढ़ीं तो रणजीत सहि के शूरवीरों ने पठानों के छक्के छुड़ा दिए और किले में बन्द होकर बैठने के लिए विवश हुए तो रणजीत सिंह ने तीन बार अपने घुड़सवारों सहित सुम्मन बुर्ज के नीचे खड़े होकर बन्दूकों के निशाने बांध कर फायर करते हुए शाह ज़मान को किले से बाहर निकलने के लिए ललकारा। "उम्दातुल-तवारीख" का रचयिता सोहन लाल, रणजीत सिंह की इस ललकार और चुनौती को इस प्रकार वर्णन करता है : "ओ अहमदशाह अब्दाली के पोते। देख चढ़त सिंह का पोता आया है। बाहर आकर इसके साथ दो दो हाथ कर ले।"

शाह ज़मान इन आक्रमणों से घबरा कर लाहौर का किला छोड़ कर सन् 1798 में वापस काबुल को चला गया। इस एक ही घटना ने स्पष्ट कर दिया कि पंजाब की धरती पर अब कोई आक्रमणकारी पैर नहीं जमा सकेगा और यह स्वाधीन मनुष्यों की स्वाधीन धरती बन कर गौरव प्राप्त करेगी। रणजीत सिंह के इस चमत्कारिक कार्यकुशलता ने न केवल शुकरचकिया मिसल को बारह मिसलों में से अग्रगण्य बना दिया बल्कि सभी पहाड़ी राजे एक तरफ और सभी पठान नवाब दूसरी ओर रणजीत सिंहके नाम से भय खाने लगे। इससे लाहौर निवासियों ने प्रथम बार अनुभव किया कि लाहौर में धन-माल, सम्मान, रूप, जवानी तभी सुरक्षित रह सकते हैं यदि रणजीत सिंह जैसा स्वाभिमानी शूरवीर, लाहौर की रक्षा की ज़िम्मेवारी संभाल लें।

लाहौर शहर के इतिहास में यह प्रथम तथा एक मात्र वार्ता है जब हिन्दू, मुसलमान तथा सिखों के सांझे प्रतिनिधियों ने सांझा मेजरनामा लिखकर रणजीत सिंह के लाहौर आने के लिए निवेदन किया। इन प्रतिनिधि चौधरियों के नाम हकीम हाकम राय, भाई गुरमुख सिंह, मीयां

आशक मुहम्मद, मीयां मुहकमदीन और मुहम्मद माहिर थे। लाहौरियों की यह पंचायत अनुभव करती थी कि रणजीत सिंह के अतिरिक्त लाहौर का कल्याण और किसी तरह संभव नहीं है। विवेकशील रणजीत सिंह ने मेजरनामा मिलने के पश्चात अपने विश्वसनीय क़ाज़ी अब्दुल रहमान को लाहौर भेजकर शहर की आवाज़ को सुनने का प्रयास किया। जब क़ाज़ी अब्दुल रहमान ने लिखा कि सारी लाहौर की जनताव उसके लिए शहर के द्वार खोलने के लिए तैयार है तो वह सफल जरनैल की तरह मुकम्मल सैनिक तैयारी के साथ गुजरांवाला से बटाला की ओर अपनी सास सदाकौर की सेना प्राप्त कर चालीस हज़ार घुड़सवारों के साथ लाहौर की ओर बढ़ा। सामरिक युक्ति में कुशल रणजीत सिंह ने राणी सदाकौर को दिल्ली दरवाज़े की ओर भेजा और स्वयं लाहौरी दरवाज़े से शहर के अन्दर दाखिल हुआ। पहले धमाके के साथ ही शहर की फसील उड़ा दी गई और दो भंगी सरदार धमाके के साथ ही लाहौर खाली करके नौ दो ग्यारह हो गये और सरदार चेत सिंह किले में छुपकर बैठ गया। नागरिकों ने वचनानुसार द्वार खोल दिये और रानी सदाकौर जयघोष के साथ किले की ओर बढ़ी। बस एक ही दिन में सरदार चेत सिंह ने हार मान ली और किला खाली करने के लिए रज़ामंदी प्रकट कर दी और इस प्रकार 1799 ई० को लाहौर रणजीत सिंह की कमान के अधीन पंजाब की भावी राजधानी बन कर चमक उठा।

सुदृढ़ता :

स्वाधीनता की भावना अधिकाशतः अग्नि की चिंगारी के सदृश भड़कती है और क्षणभर में ही शांत हो जाती है। परन्तु जिस आचरण में निष्ठा एवं दृढ़ता हो, वह न आग की लपट के समान भड़कता है और न ही क्षण भर में राख बन सकता है। रणजीत सिंह दृढ़ता का भण्डार था। उसने अफगानों के अभिमान को कैसे दो वर्षों में (1797-99) ही चूर कर दिया था। वैसे ही वह दृढ़ भाव से छलक रहा था। एक लाहौर ही नहीं अपितु सारी पंचभूमि जो एक ओर दरिया जमुना से काबुल तक फैली हुई थी और दूसरी ओर हिमालय की बर्फीली चोटियों से लेकर सिंध के मरुस्थलों को छूती थी, को सुव्यवस्थि एवं शान्त बनाना चाहता था। सरदार खुशवंत सिंह ने पंजाब की 1799 ईसवी की स्थिति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है कि पंजाब का यह क्षेत्र टुकड़ों में बंटा पड़ा है और पांच दिशाओं से पांच

तीर इसके वृक्ष को विदीर्ण कर रहे हैं। लाहौर के पड़ोसी कसूरी पठान, उत्तर-पश्चिम के अफगान, उत्तर के पहाड़ी राजपूत, उत्तर-पूर्व के गोरखे, पूर्व में पैर जमाये बैठे अंग्रेज़ और दक्षिण-पूर्व के मराठे सभी पंजाब के आकाश पर गिद्धों के समान ललचाई आंखों से एकटक निहार रहे थे। ऐसी हास्यास्पद और विकराल छवि के सुन्दर चित्रांकन के लिए रणजीत सिंह ने प्रायः 30 वर्ष संघर्ष किया। उसकी निष्ठा और दृढ़ता ने एक एक करके पंजाब के ईर्ष्यालुओं को परास्त कर दिया और सुदृढ़ व शक्तिशाली संगठित पंजाब को जन्म दिया। 1799 ई० में लाहौर पर अधिकार होते ही सभी विरोधी एकबद्ध हो गये। भंगी सरदार पहाड़ी राजपूत और कसूरी पठान क्रोध भरी आंखें दिखाने के लिए कसूर से अमृतसर की सीमाओं पर एकत्रित होकर लाहौर की ओर घूरने लगे। जब रणजीत सिंह गांव भसीण की ओर आमने सामने होने के लिए आगे बढ़े तो सर्वाधिक विरोध करने वाला गुलाब सिंह शराब के नशे में रात को ही पार बोल गया और उसके कथित साथी एक एक करके खिसक गये। इस तरह रणजीत सिंह की सेनाओं को बिना युद्ध किये, भसीण के मैदान में भारी सफलता उपलब्ध हुई। इस दृढ़ता का परिणाम यह निकला कि न केवल रणजीत सिंह का लाहौर पर पूर्ण अधिकार हो गया बल्कि उसकी दृढ़ता में फौलादी मज़बूती भी आ गई।

रणजीत सिंह जानता था कि लाहौर की सरकार यदि किसी मनुष्य के साथ जोड़ी गई तो यह पंजाबी जन-समुदाय को आनन्द नहीं दे सकेगी। अतः जब लाहौर के हिन्दू, सिख और मुसलमानों ने मिलकर बैशाखी वाले दिन 1801 ईसवी को रणजीत सिंह को लाहौर का महाराजा बनाने का संकल्प किया तो रणजीत सिंह ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि राज्य का नाम रणजीत सिंह की सरकार नहीं, बल्कि "सरकारे खालसा" होगा। वह सिर पर कोई मुकुट नहीं पहनेगा और किसी राजगद्दी पर नहीं बैठेगा। सरकार खालसा की टकसाल अकाल के नाम से, सिक्के ढालेगी और सिक्के पर "अकाल सहाए" अंकित होगा। इस तरह रणजीत सिंह द्वारा प्राप्त राज्य-शक्ति पंजाब में सर्वोच्च सत्ता की स्थापना की ओर बढ़ी और आगामी 39 वर्षों में सभी मिसलें, सभी राजपूत राजे महाराजे, सभी अफगान-पठान, नवाब एक एक करके झड़ गये और लाहौर की सरकार-ए-खालसा सर्वोच्च सत्ता बन गई। इस प्रकार रणजीत सिंह ने जीर्ण-शीर्ण पंजाब को एक सर्वसम्पन्न परिधान बना कर दिखा दिया और

सरदार खुशवंत सिंह के लिखे पांचों तीर जो पंजाब की छाती को विदीर्ण कर रहे थे, मक्खन में से बाल की तरह निकाल फेंके।

विश्व विजयी कठोर-चित्त, निरंकुश एवं अत्याचारी, आततायी माने जाते हैं। विश्व इतिहास में विजयी सम्राटों पर यह विशेषण प्रायः सार्थक होता है, परन्तु रणजीत सिंह इस श्रेणी मे कदापि नहीं आते। इससे उनका गौरव और भी बढ़ जाता है। पंजाब का इतिहास दर्शाता है कि 1799 ई० से लेकर 1839 ई० तक रणजीत सिंह की विजयों की सीढ़ी बन जाती है। कमाल यह है कि उसने सिख मिसलदारों राजपूत राजाओं, पठान शासकों और अफगान सम्राटों को एक एक कर के जीता, परन्तु किसी के खून से हाथ नहीं रंगे। बल्कि पंजाब निवासियों के विशाल हृदय की ऊष्मा से अपनी सहृदयता को प्रगट किया। काबुल और दिल्ली के सम्राट, यदि राजसिंहासन एव राजमुकुट के स्वामी बने रहे, वे अन्य निकट आत्मीय दावेदारों के खून से खेलते रहे, बल्कि उनके उत्तराधिकारियों को गली बाज़ारों में भीखमंगों की हरकत में दर-दर की ठोकरें खाने को छोड़ते हैं, परन्तु लाहौर के इस आदर्शवादी पंजाबी शासक ने जिन्हें युद्ध-स्थल में पराजित किया, उनके साथ कदाचित दुर्व्यवहार नहीं किया, बल्कि उन्हें और उनके बच्चों आदि को जागीरों और सम्मान से सुशोभित किया। यह उदारता पंजाबी शूरवीरता का एक अभिन्न अंग है और रणजीत सिंह इस सहृदयता की मूर्ति था।

सिख मिसलों में से आहलूवालिए,रामगढ़िए, भंगी, घनन्ये आदि बड़ी यशस्वी मिसलें थीं। इनके सरदारों के नाम इतिहास के अलंकार हैं। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया, सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया, सरदार हरी सिंह भंगी आदि सरदारों का नाम लेकर लोग दिन का कार्यारम्भ करने को शुभ शगुन मानते थे। रणजीत सिंह ने आहलूवालिया मिसल के अपने समय के सरदार फतह सिंह के साथ ऐसी स्नेहमयी गहनता पैदा की कि दोनों पगड़ी-बदल बाई बन गये। सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के उत्तराधिकारी सरदार जोध सिंह के साथ ऐसी मैत्री स्थापित की कि वह रणजीत की विजयों में अग्रणी बन गया। घनय्या मिसल तो रिश्तेदारी में गूंथी गई थी और रानी सदा कौर, रणजीत सिंह की चढ़ाई की अद्वितीय गाथा का स्वार्णिम अध्याय प्रस्तुत करती है।

भंगी सरदारों को रणजीत सिंह ने श्री अमृतसर की छोटी सी लड़ाई के

उपरान्त आत्मीयता के बहुपाश में ले लिया। अमृतसर की प्राप्ति से उसे गुरुधाम के खुले दर्शन और अनोखे वीर अकाली फूला सिंह और उसके तीन हज़ार निहंगों के साथ का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार अधिकांश मिसलों के सरदार लाहौर दरबार के नामवर दरबारियों में आदर और सम्मानवाला स्थान प्राप्त कर गये थे। इसी तरह जम्मू के डोगरे, कांगड़े के राजपूत, बसौली, चम्बे, सुकेत, कुल्लू आदि के छोटे बड़े सभी पहाड़ी राजे, रणजीत सिंह की शरण में आकर न केवल सुरक्षित महसूस करने लगे बल्कि सरकार खालसा पर गर्व भी करने लग पड़े थे। इसी अनुसार 1708 ई० को जब कसूर के नवाब कुतुबुद्दीन की युद्ध-भूमि में पराजय हुई तो रणजीत सिंह ने ममदोट की विशाल जागीर देकर कुतुबुद्दीन को जागीरदार के रूप में स्थापित करने में खुल दिली दर्शाई। झंग का नवाब अहमद खां, खुशान का नवाब जाफर खां, साहीवाल का नवाब फतह खां मुकाबले में हारने के बाद रणजीत सिंह के सच्चे विश्वासपात्र बने और सुखमय जीवन व्यतीत करने में सफल हुए। और तो और मुलतान के विशाल साम्राज्य का मालिक नवाब मुज़फ्फर खां जो सिखों के खून की होली खेलने में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था, जब 1818 में रणजीत सिंह के सेनापतियों के समक्ष हुआ तो मारा गया। उसकी विधवा को खालसा दरबार में भारी जागीर देकर मित्रता की माला का मनका बना लिया, जिस से बहावलपुर, डेराजात और सिंध के अमीर एक-एक करके लाहौर कीशानमानने लगे। काश्मीर और पेशावर के अफगान और पठान जो सर्वदा ही घमण्ड से वशीभूत पंजाब की लूट-खसूट को बाप दादे द्वारा विरासत में मिला अधिकार समझते थे जब खालसा सेनाओं के सामने निहत्थे हो गए तो लाहौर दरबार ने इन्हें गले लगाया और पंजाब की सीमाएं पहली बार जमरोद और तिब्बत को छूने लगीं।

इतिहास साक्षी है कि 1799 ईसवी में रणजीत सिंह जब 18वीं शताब्दी के चौथे दशक में महाराजा रणजीत सिंह बना तो सारा पंजाब उसकी सहृदयता का लोहा मान चुका था और हिन्दू-सिख, मुसलमान, ईसाई—सभी उसको सरकार के नाम से संबोधन करने में गर्व का अनुभव करते थे। उसकी सहृदयता की कहानियां जनसाधारण की ज़ुबान पर चढ़ गई थीं। किसी विधवा मां का लोहे का तवा रणजीत सिंह के स्पर्श से सोने का हो गया, किसी अनजान बच्चे का बेर पर फेंका हुआ ढेला रणजीत सिंह के सिर को छूकर सोने की मोहर बन गया और बागबानपुर के ग़रीब बूढ़े

मुसलमान भांड की अनाज की गठरी सिर पर उठा कर घर पहुंचाने वाला रणजीत सिंह मुटिया बादशाह के नाम से पुकारा गया।

समानता :

पजाबी चरित्र का चतुर्थांग संपूर्ण विश्व में समानता का अनुभव करना है। सतरहवीं शताब्दी में गुरुवाणी की क्रान्ति ने पंजाबियों में रंग, मूल, धर्म, क्षेत्र, जाति, जिन्स आदि के सभी भेदभाव मिटा दिये थे। श्री आनन्दपुर के क्रान्तिकारी बोल मानवता को पंक्ति-संगति में बैठाते हैं –

कोऊ भयो मुंडीआ सनियासी कोई जोगी भइओ,
कोऊ ब्रहमचारी कोई जतीअन मानबो।
हिन्दू ओ तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सभै एकै पहिचानबो।

(गुरू गोबिन्द सिंह जी)

रणजीत सिंह पंजाब की इस महान क्रान्ति का चिन्ह था। जब उसे पंजाब की राजधानी लाहौर की प्राप्ति हुई तो उसने अपने को जनता का सेवादार बताया और राज्य-भाग्य को ईश्वरीय देन कहा। रणजीत सिंह द्वारा शासन को खालसा दरबार कहते थे, परन्तु और भी धर्मों के लोगों के हितों का उतना ही सम्मान किया जाता था जितना सिखों के। उच्च ओहदों पर नियुक्तियों के समय रणजीत सिंह धर्म, रंग, भेद आदि के पक्षपात से सर्वदा मुक्त रहता था। उसके सभी पदाधिकारी योग्यता के आधार पर लगाये जाते थे। रणजीत सिंह की सूक्ष्म दृष्टि मनुष्य के आन्तरिक आचरण को पढ़ लेती थी। महाराजा का बिदेश मंत्री फकीर अज़ीजुद्दीन मुसलमान था। खालसा दरबार का प्रधान मंत्री हिन्दू राजपूत डोगरा था। वित्त तथा कोष की सूक्ष्मताओं को समझने वाला दीवान भवानी प्रसाद वित्त मंत्री के पद पर सुशोभित था। जनरल बैनतुरा, ऐलार्ड, कर्ट, गार्डनर यूरोपियन ईसाई थे। किसी हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई अधिकारी ने रणजीत सिंह के विश्वास को कदाचित्त ठेस नहीं पहुंचाई थी।

उसके राज्यकाल में हिन्दू इच्छानुसार मन्दिरों में पूजा करते और अपनी धार्मिक मर्यादाओं का पालन करते। मुसलमान अपनी शरह के मुताबिक मस्जिदों में इबादत करते और ताजीए निकालते थे। रणजीत सिंह

न केवल अपने महलों के साथ स्थित शाही मस्जिद का ही सम्मान करता था बल्कि सुनहरी मस्जिद पर जब सिखों ने कब्ज़ा कर लिया था तो उसने सुलझे हुए ढंग से खालसा जी को समझाकर मस्जिद का प्रबन्ध मुसलमान भाईयों को दिलवा दिया था। ईसाई पादरियों को भी रणजीत सिंह लोधियाना में अंग्रेज़ी शिक्षा देने के लिए बुलाना चाहता था, परन्तु जब पादरियों ने प्रत्येक बच्चे के लिए अंजील पढ़ायी अनिवार्य कही तो रणजीत सिंह ने उस समय सिर फेर दिया। उसकी कदाचित यह भावना नहीं थी कि किसी विशेष धर्म के प्रचारक दूसरे धर्म के अनुयायियों को उनके अपने विश्वासों से डुलाने का कारण बनें।

जहां तक रणजीत सिंह के अपने धर्म का संबंध था, वह इसमें दृढ़ विश्वासनीय था। फकीर वहीदउद्दीन ने उसके देनन्दिन कार्यकलाप को लिखते बताया है कि "महाराजा रणजीत सिंह नित्य कर्मानुसार सुबह की प्रार्थना के साथ कार्यारम्भ करता था। वह स्नान करता, वस्त्र पहनता, शस्त्र सजाता और अपने पूजा-पाठ वाले कक्ष में चला जाता था, जहां वह भी गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ श्रवण करता। तत्पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह की शानदार कलगी को अपनी आंखों और माथे पर लगाता फिर वहशेष सारे दिन के कामकाज करता।" कितनी धर्म-सिक्त छवि है जो फकीर जी ने फकीराने के रिकार्ड में से चित्रित की है।

मनुष्यों के संबंध में उसके गहन परिचय को अनुभव करते हुए विलियम ओजबर्न लिखता है कि "यद्यपि रणजीत सिंहकी आंख एक थी, परन्तु उसमें से निकलने वाली किरणें, इतनी चमकदार एवं तेजस्वी थीं जितनी इसके हाथ पर बंधे हुए कोहेनूर की चमक।वह प्रधान मंत्री से लेकर घरेलू नौकर तक सभी के साथ खुलमखुला और बेझिझक होकर बातचीत करने में आनन्द लेता था। स्मृति इतनी तीक्ष्ण थी कि प्रत्येक को नाम लेकर बुलाता था। उसे अपने राज्य के सभी शहरों और गांवों के नाम याद थे। यहां तक बतादेता था कि अमुक शहर अथवा नगर से जितना कर वसूल होता है। लोगों के प्रति इतनी श्रद्धा थी कि उसने अपने शासन काल में किसी को भी कत्ल अथवा फांसी का दण्ड नहीं दिया था। महाराजा के दो आदेश जो 10 पौष 1880 और 31भद्रपद 1882 संवत को फकीर नूरुद्दीन के प्रति जारी हुए थे, वो महाराजा के प्रजासेवक होने के प्रतीक हैं। पहले आदेश में फकीर नूरुद्दीन को यह कहा गया कि "अकाल पुरख तुम्हें सच्ची बुद्धि दें। तुम्हें लाहौर के अमन-चैन का रक्षक बनाया गया है। कर्त्तव्य

पारायणता तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। सतगुर ऐसा न करे परन्तु यदि मेरा प्यारा पुत्र खड़क सिंह, कंबर शेर सिंह, राजा चेत सिंह, जमादार जी अथवा मेरा कोई निकटतम कोई ऐसी हरकत करे जिससे न्याय की हानि होती हो तो उसकी सूचना तत्काल मुझे मिलनी चाहिए। तुम्हें विशेष निर्देश दिया जाता है कि कोई आदमी किसी की ज़मीन पर नाजायज कब्जा न करे और किसी लकड़हारे,घसियारे, तेली, नानबंद और मज़दूर पर कभी कोई अत्याचार न हो। सवे कोतवाल प्रतिदिन शहर के गली कूचे में फिर कर ऐसी घटनाओं का पता लगायें ताकि लाहौर शान्ति-न्याय का स्थान बने।''

इसी तरह दूसरे आदेश में भी इस से भी अधिक स्पष्ट शब्दों में नम्रता एवं मानवीय समानता की तस्वीर स्पष्ट होती है। वह कहता है ''यदि मेरे द्वारा कोई गलत निर्देश किसी लाहौर निवासी के विरुद्ध जारी हो जाए तो वह तुरन्त मेरे दृष्टिगोचर किया जाये जिससे उसका संशोधन तुरन्त हो सके। उसने यह भी कहा कि पंचों, मुक्तियों, काज़ियों, जजों, शास्त्र ज्ञाताओं तथा शरीयत के जानने वालों के परामर्श उपरान्त सभी निर्देश जारी हों जिससे प्रत्येक व्यक्ति का ईमान स्थिर रहे और न्याय का राज्य स्थापित हो।''

रणजीत सिंह अपने आप को कभी भी गुनाहों से ऊंचा अथवा मुक्त नहीं समझता था। वह खालसे को सर्वोच्च स्थान देता था। जब एक बार अकाल तख्त की ओर से उसे नैतिक दृष्टि से अपराधी करार देकर तख्त साहिब के सम्मुख तलब किया गया तो महाराजा नंगे पैर अपने अपराध को स्वीकार करने के लिए अकाल तख्त के समक्ष उपस्थित हुआ। जत्थेदार ने फैसला दिया कि अपराध के लिए महाराजा को कोडे मारे जायें। महाराजा ने कोड़े खाने के लिए अपनी पीठ नंगी कर दी परन्तु गुरु रूप खालसे ने गुनाह को मान लेने के कारण उसे क्षमा कर दिया। क्या यह आनन्दपुर के उस महान क्रान्ति के आहवान का साकार रूप नहीं है जिस के लिए गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा था –

> ''सेव करी इनही की मन भावत अउर की सेव सुहात न जी को''
> दान दयो इनही को भलो, अर आन को दान न लागत नीको''
> आगै फलै इनही को दयो, जग में जस अउर दियो सभ फीको।''
> मो ग्रहि मैं तन ते मन ते, सिर लओ धन है सभ इनही को।

मानवीय समानता की यह तस्वीर विश्व के इतिहास में पंजाब ने

19वीं शताब्दी में रणजीत सिंह के स्वरूप में प्रस्तुत की है जिस पर पंजाब के निवासी उचित रूप में गर्व कर सकते हैं।

समर्पित :

रणजीत सिंह की सर्वाधिक विशेषता जो पंजाबी आचरण का शोभनीय अंग है, वह मन को उदार बना अपने आदर्श के प्रति सब कुछ समर्पण करना है। स्वाभिमानी पंजाबी अपने आदर्श के लिए कुर्बान होने में मंज़िल की प्राप्ति समझते हैं। रणजीत सिंह ने अपने परिवार की मर्यादाओं के अनुसार अपने आपको सतगुरु को समर्पित किया हुआ था। उस संबंध में यह बात सर्वविदित है कि जब उसे द्विधा घेरती थी तो वह आंखें बन्द करके हाथ जोड़ कर अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनने के लिए प्रार्थना का रूप बन जाता था। कई इतिहासकारों ने उसके इस अनन्य विश्वास में चमत्कार की कल्पना की है। दरिया अटक पार करने का समय निश्चित था। परन्तु लाहौर से सेना अभी नहीं आई थी। निहंग दल का जत्थेदार अर्दास कर चुका था। अटक दरिया गड़गड़ाहट की भयानक गर्जन करता सेनाओं को रोक रहा था। रणजीत सिंह ने आंखें बन्द कीं, हाथ जोड़े और घोड़े दरिया में ठेल दिये। जो दरिया अटकाव डालने के लिए प्रसिद्ध था, समर्पित रणजीत सिंह तथा उसके घुड़सवारों के लिये रास्ता देने के लिए मजबूर हो गया। कर्नल गार्डनर कितना सही लिखता है कि महाराजा रणजीत सिंह अपनी सारी सफलताओं को सदगुरु तथा खालसे की बखशिश मानता था वह जब किसी युद्ध में विजय प्राप्त करता तो कहता था कि सतगुरु की विजय है। सर हैनरी लारेंस लिखता है कि रणजीत सिंह प्रजा के प्रति एक समर्पित बादशाह था और चौबीस घण्टे ही किसी प्रलेखा कार को प्रलेख के लिए तैयार रहना पड़ता था। जब लोगों की पुकार हुई तो रणजीत सिंह तुरन्त सवार होकर वहां पहुंच जाता था और जब भीतर से कोई अन्तरात्मा की ध्वनि पुकार आती तो रणजीत सिंह तत्काल बोल देता था जिसे प्रलेखकार लिखकर नूरुद्दीन से फारसी रूप में तैयार करवा कर प्रस्तुत करता था। उसकी यह छवि समय के शायर के शब्दों में इस प्रकार प्रकट होती है :

सद ही कमर कसी हम देखी, कबहूं न सुसती मुख पर देखी''

व्यक्तिगत निष्ठा का चमत्कार यह था कि यदि कोई अत्यन्त सुन्दर

वस्तु रणजीत सिंह को दृष्टिगोचर होती तो वह इसे अपने उपयोग में नहीं लाता था। नवाब हैदराबाद का अत्यन्त सुन्दर छत्र जब लाहौर दरबार को प्राप्त हुआ तो रणजीत सिंह ने उसकी छटा देख कर झट कह दिया कि यह गुरु रामदास के दरबार में जाने योग्य है। पंजाब के स्वर्णकारों ने जब उसके पौत्र के विवाह पर अत्यन्त सुन्दर सेहरा कलात्मकता के साथ पढ़ा तो रणजीत सिंह के मुख से निकला कि यह तो श्री दरबार साहिब में श्री गुरु ग्रंथ साहिब के द्वार पर शोभा देगा। जब चाव पैदा हुआ कि दरबार साहिब स्वर्ण रूप में दिखाई दे तो सेवा की भावना से निवेदन किया कि ऐसा न लिखना कि रणजीत सिंह ने सेवा करवाई, बल्कि इस प्रकार लिखना कि ''श्री सतगुर जी ने अपने सेवक पर दया करके यह सेवा ली''

यह समर्पण भावना केवल गुरुदवारों के प्रति नहीं, मन्दिरों, मस्जिदों के प्रति भी इतनी ही तीव्र थी। मज़ार दाता गंज-बख़्श, मज़ार मीयां मीर, कांगड़ा, ज्वाला मुखी तथा बनारस के मन्दिर प्रभु परायण स्थान होने के कारण रणजीत सिंह के लिए सद्भावना का केन्द्र बने रहे क्योंकि गुरुवाणी के बोल भाईचारे के प्रेरक थे:

देहुरा मसीत सोई पूजा निवाज़ ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाओ है।
देवता अदेब जछ गंधरब तुरक हिन्दू,
निआरे निआरे देसन के भेष को प्रभाओ है।
एकै नैन एकै कान, इकै देह एकै बान,
खाक बाद आतश औ आब को बलाउ है.
अलह अभेख सोई पुराण और कुरान ओही,
एक ही सरूप सबै एकै ही बनाओ है।

रणजीत सिंह इन क्रान्तिकारी आदर्शों को साकार देखना चाहता था। यह बात सर्वदा उसकी स्मृति में रहती थी कि अकाल खलकत में समाया हुआ है और इसी सीध में चलते हुए जब पंजाब पूरे यौवन पर आया, उस समय रणजीत सिंह को पता चला कि अकाल के पुत्र ने नांदेड़ साहिब के स्थान पर फरमाया था कि ''मेरा कोई निशान इस संसार में न बनाया जाए, क्योंकि मेरा अकाल सभी में समाया हुआ है। ''समर्पित रणजीत सिंह अधीर हो उठा कि यदि अकालपुरुष के पुत्र का निशान नहीं बनेगा तो मेरे जैसे का

निशान संसार में क्यों रहे। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का अन्तिम वार्तालाप सुनने वालों ने बताया कि उन्होंने फरमाया था कि जो उनका निशान बनायेगा उसका अपना नामो निशान मिट जायेगा। मनुष्य को सब से अच्छा अवसर कब मिल सकता था, तुरन्त फैसला किया कि नवाब हैदराबाद के नांदेड़ के स्थान पर श्री गुरु गोबिन्द सिंह साहिब के पद-चिन्हों के निशान ढूंढ कर पांचवें और अन्तिम तख्त का निर्माण हेतु सीमांकन किया जाए। रणजीत सिंह ने नांदेड़ साहिब में कलसियां वाले के स्थान को प्रकट किया। यह गौरव रणजीत सिंह को प्राप्त है कि श्री ननकाणा साहिब से नांदेड़ तक की धरती जो उसके इष्टदेव ने पावन बनाई आज रणजीत सिंह की समर्पित तस्वीर का प्रदर्शन करती है। यह बात तो सभी जानते हैं कि आज रणजीत सिंह का कोई निशान नहीं है। वह पंजाबियों के स्नेह का प्रतीक बन कर प्रकाशवान है और उसके आनन्दपुरी प्रेरक विश्व का नूर विश्व को मानवीय भ्रातृत्व की सामान्य भावना की प्रेरणा प्रदान कर रहा है।

(3) सार

पंजाबी संस्कृति में पांचों गुण स्वाधीनता, सुदृढ़ता, सहृदयता, समानता, समरूपता के रूप में रणजीत सिंह के जीवन में विद्यमान थे। इसी लिए पंजाब एक महान राष्ट्रीय कवि शाक मुहम्मद रणजीत सिंह के ज्योतिर्मय होने पर व्यथापूर्ण ध्वनि में बोल उठा था :

> शाह मुहम्मद लोक वैरान होए
> तोड़ मुटिया मुलक उजाड़ेआं ने।

और पंजाब का महान इतिहासकार ज्ञानी ज्ञान सिंह रणजीत सिंह के आंखें मूंद जाने पर रुदन के आंसू इस प्रकार छलकाता है :

> "हिंदण दी हिंद जरी, सिंघण की जिंद जरी
> गिआन हरी कबीअत को जरियो आफताब को।
> भूपन आबादी जरी, लवपुर की गादी जरी
> जर जइओ सुहाग भाग सगरी पंजाब को।।

रणजीत सिंह का पंजाब गौरवपूर्ण पंजाब था जिस में पंजाबी सभ्यता,

पंजाबी, आचार-व्यवहार, रफ्तार-गुफ्तार प्रत्येक व्यक्ति को मुग्ध करती थी। हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाइयों ने तो मुग्ध होना ही था बल्कि यूरोप के देशों के निवासी फ्रांसीसी, इतालियन, अंग्रेज़, रूसी .... सभी रणजीत सिंह से मिलने के पश्चात् इस प्रकार लिखते हैं कि रणजीत सिंह मुग्ध कर देने वाले व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उसने दरिया काबुल से लेकर दरिया सतलुज तक और बर्फीले पहाड़ों की चोटियों से लेकर सिंध के मरुस्थलों तक फैले हुए पंजाब की पृथक् पृथक् हुई उंगलियों को पंजे की तरह संगठित कर दिया था। कोई रंग, नसल, जाति-पाति, भाषा, क्षेत्र का भेदभाव इसके शासनकाल में सांस तक नहीं लेता था। इसी पंजाब को याद करके साम्प्रदायिक विभाजन से पूर्व का मुसलमान राष्ट्रीय कवि, पंजाब के प्रति इस प्रकार बोला था :

देशां विच्चों देश पंजाब नी सईओ,
जिवें फुल्लां विच्चों फूल गुलाब नी सईओ।।

(शरफ)

इसके विपरीत आज का पंजाबी कवि शायर पुराने पंजाब की शान को याद करके आह भरता है :

सतलुज बियास ते जिहलम चनाब दी गल्ल ?
रावी करे हुण किहड़े पंजाब दी गल्ल?
पत्ती पत्ती वलूंदरी गई उसदी,
शरफ करदा सी जिहड़े पंजाब दी गल्ल।

(मीशा)

रणजीत सिंह की स्मृति की यह द्वितीय जन्म-शती इस पंजाबियत को बेदार करती है जो विश्व सभ्यता के गुणात्मक चिन्हों की प्रतीक थी और जिसके आधार पर विश्व भाईचारा आनन्दपुरी स्वरूप में ढल सकने की संभावना छिपाये बैठा है। ईश्वर करे, पंजाब जैसे मानवीय सभ्यता के उद्भव तथा विकास का पालना माना जाता है, उसी तरह मानवीय सभ्यता

का केन्द्र बिन्दु बने और प्राणीमात्र को परस्पर गले मिलने के लिए प्रेरणा प्रदान करे।

आबहु भैण गले मिलह अंकि सहेलडीआह।
मिलि के करहु कहाणीआं संमुख कंत कीआह।

(श्री गुरु नानक देव)
(गुरु गोबिन्द सिंह फाऊंडेशन से धन्यवाद सहित)

स्वधर्मी, धर्म निरपेक्ष महाराजा रणजीत सिंह

– डॉ. विश्वनाथ तिवाड़ी

शेरे पंजाब रणजीत सिंह (1780-1839) धार्मिक होते हुए भी धर्म-निर्पेक्ष महाराजा थे। व्यक्तिगत जीवन में उनका श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अटूट विश्वास था, परन्तु महाराजा की भूमिका में वे धर्म निर्पेक्ष नीति के समर्थक थे। वे प्रत्येक प्रातः पवित्र ग्रंथ की वाणी को सुनते और प्रत्येक संध्या ध्यान में बैठते और स्मरण करते थे। 1802 से 1823 तक महाराजा रणजीत सिंह ने न केवलहरिमन्दिर साहिब को गोल्डन टैम्पल में परिवर्तित कर दिया बल्कि हीरों और मोतियों से सुशोभित भी किया। उनका गुरु घर में विश्वास इतना था कि उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह जी के जीवन से संबंधित शहर नादेड़ को खरीदने की भी चेष्टा की। इतिहासकारों का मत है कि महाराजा रणजीत सिंह ने कभी कोई विशेष कार्य तब तक आरम्भ नहीं किया जब तक उन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब में से वाक (आदेश) नहीं लिया। इन बातों से शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की सिख-धर्म में असीम श्रद्धा तथा विश्वास प्रत्यक्ष है। वे धार्मिक व्यक्ति थे। धर्म ही उनके लिए सच था, ईमान था और "गुरु ग्रंथ साहिब"ही उनका गुरु था। जिसने निर्देश लेकर वे न केवल दिन आरम्भ करते बल्कि प्रत्येक कार्य गुरु से दिशा-निर्देश लेकर करते थे।

ऐसे व्यक्ति का "गुरमते" की संस्था को बन्द करना कइयों को चिन्ता में डालता है। धार्मिक व्यक्ति ने धार्मिक संस्था को राजनैतिक मामलों के लिए क्यों बदला? भाई कान्ह सिंह के शब्दों में "गुरमते" की व्याख्या इस प्रकार की गई है "गुरमता" संज्ञा गुरुमत के अनुसार किया हुआ मंत्र, पुराने सिंह सांसारिक और धार्मिक कार्यों को आरम्भ करने से पूर्व दीवान में परामर्श करते थे, जो गुरु नियमों के अनुसार सारे दीवान की सहमति होती,

उसका नाम "गुरमता" कहा जाता, तो गुरमते के विरुद्ध कोई कर्म करे वह तनखाहिया होता था, खालसे के गुरमते अकाल बुंगे साहिब के दीवान में विशेषतया होले महल्ले के समय तख्त केशगढ़ हुआ करते थे। गुरमते के लिए व्यक्तिगत वैमनस्य दूर करके सिंह दीवान में बैठा करते थे।"[1]

पहला गुरमता हमारे पास 1733 का है, जब मुग़ल सरकार ने सिख जाति को जागीर की पेशकश की और सिखों ने इकट्ठे होकर इस बारे में विचार किया। इस सभा ने जो निर्णय लिया इसे गुरमता कहा गया। इसके अतिरिक्त 1747 (अमृतसर में किले की स्थापना) 1748 (दल खालसा की स्थापना), 1753 और 1758 ("रक्षा" की व्यवस्था की सरबत खालसा द्वारा मंजूरी) और 1765 (सरबत खालसा की संपूर्ण पंथ में उच्चता और अनुमोदन) और 1805 (लार्ड लेक तथा होल्कर के झण्डे से संबंधित निर्णय) मुख्य गुरमते हैं।

1805 में महाराजा रणजीत सिंह का पंजाब में राज्य था। क्या कारण थे कि महाराजा रणजीत सिंह स्वयं ही इस संस्था के भागीदार बने और खुद ही उन्होंने इसे राजनैतिक मामलों के लिए बन्द कर दिया? क्या वे धर्म और राज्य में पृथकता समझते थे? क्या धर्म उनके लिए व्यक्तिगत विश्वास था और राज्य एक सामाजिक उत्तरदायित्व? क्या ऐतिहासिक कारण थे जिन्होंने उन्हें गुरमते की संस्था बन्द करने के लिए विवश किया अथवा वे वस्तुतः राज्य के मामले में धर्म का हस्तक्षेप नहीं चाहते थे? इतिहासकार कन्निघम का कहना है कि सिखों के राज्य के बाद कुछ मिसलों के नेता और उनके अनुयायी अंग्रेज़ों और मराठों से मिलने की सोच रहे थे और महाराजा रणजीत सिंह द्वारा राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए ही इस संस्था को बन्द करना पड़ा, जिससे अकाल तख्त साहिब की हज़ूरी में छीना झपटी और लूटखसोट एवं चालाकी का कोई स्थान न रहे और यह स्थान पवित्र ही रहे?[2]. परन्तु इसके विपरीत प्रो० तेजा सिंह का विचार है कि पंजाब एक इलाके का नाम है जिसमें महाराजा रणजीत सिंह तख्त पर बैठे तो उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को विश्वास दिलवाने का यत्न किया कि वे भी इस धरती के उतने ही स्वामी हैं जितने सिख।[3] उन्हें वे अपने ही सहधर्मियों के समान समझते थे। अतः उन्होंने गुरमते को राजनैतिक मामलों के लिए बन्द कर दिया और इन समस्याओं में वे अपने राजनैतिक मंत्रियों जो भिन्न-भिन्न धर्मों के थे, परन्तु अपने-अपने क्षेत्र में विशेष प्रतिभा के स्वामी थे, से राय लेकर पंजाब को धर्म-निर्पेक्ष सिद्धान्त द्वारा राज्य करने

की चेष्टा में थे। यदि महाराजा रणजीत सिंह केवल गुरमते को ही अपने राज्य का आधार बताते तो उनकी हिन्दू एवं मुसलमान प्रजा के दिलों में वह सद्भावना न रहती जो उनकी इस नीति के कारण हुई है। इतिहासकार गोकुल चन्द नारंग के शब्दों में महाराजा रणजीत सिंह की असमय मृत्यु से पंजाब विधवा समान हो गया लगता है न कि केवल सिख जाति।[4]

सय्यद मुहम्मद लतीफ के शब्दों में महाराजा रणजीत सिंह ही हिन्दू और मुसलमान धर्मों के प्रति सम्मान भावना उसके अपने धर्म से भी कहीं कम नहीं थी। जब वे1795 में तख्त पर बैठे तो यह पता चला कि स्वर्णिम मस्जिद जो नवाब बिखारी खाने ने कश्मीर बाज़ार में बनवाई है, मिसलों के दिनों से सिखों के अधिकार में है। लाहौर के मुसलमान महाराज के पास फरियाद लेकर गये कि मस्जिद उन्हें वापस दी जाए। इस कठिन समस्या को महाराजा ने बड़े ही सुन्दर ढंग से सिखों को समझाकर मुसलमानों को मस्जिद वापस दिलवा दी जिससे मुसलमानों के दिल उसने सर्वदा के लिए जीत लिए।"[5]

जहां महाराजा रणजीत सिंह ने स्वयं अन्य धर्मों का सम्मान किया वहां उन्होंने सिखों को दूसरे धर्मों से संबंध रखने वाले लोगों का आदर करने के बारे में कहा। प्रसिद्ध कहानी है कि एक बार कुछ निहंग सिंहों का जत्था महाराजा के पास गया कि मुसलमान प्रातः काल "अजान" देकर हमारी नींद उचाट करते हैं, तब महाराजा ने मुसलमानों के धार्मिक महत्व का समादर करते हुए निहंग सिहों को आदेश किया कि आप लोग खुद सुबह क्षेत्र के मुसलमानों को जगाकर मस्जिद भेजा करो।

इसी प्रकार हिन्दुओं के जगन्नाथ मन्दिर को उन्होंने कोहेनूर हीरा प्रस्तुत करने का प्रस्ताव भी रखा था। विश्वनाथ मन्दिर बनारस को 22 मन सोना भेंट कर उन्होंने हिन्दू जनता को भी सदा के लिए जीत लिया था।[6]

बाबा प्रेम सिंह होती के शब्दों में :

"सन् 1838 में जब अंग्रेज़ी और खालसा सेना ने सम्मिलित होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण किया था तो उस समय जो शर्तें महाराजा साहिब, अंग्रेज़ी शासन तथा शाहशुजा में निर्धारित हुई,उनमें शेरे पंजाब ने अपनी हिन्दू प्रजा की धार्मिक भावनाओं को मुख्य रखकर अन्य शर्तों के

अतिरिक्त एक यह शर्त भी शाहसुजा से मनवाई कि सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर का चन्दन का दरवाज़ा जो कि सन् 1024 में महमूद गज़नवी भारत से लूट कर ले गया था, उस दरवाज़े को पुनः यहां वापस पहुंचा दिया जाये। इससे सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपने पड़ोसी भाइयों की धार्मिक भावनाओं का कितना स्नेह अपने मन में रखते थे।"

मस्जिद दिलवाना, सोमनाथ मन्दिर के दरवाज़े तक को लाने की कोशिश, उनके अन्य धर्मों के प्रति सम्मान और श्रद्धा को ही सिद्ध करती है। अन्य धर्मों का आदर उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शक नेता दशम गुरु "गुरु गोबिन्द सिंह जी" से लिया था :

देहुरा मसीत सोई पूजा और निवाज़ ओही
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाओ है।
देवता अदेव जच्छ गंधव तुरक हिन्दू,
निआरे निआरे देशन के भेस को भ्रमाओ है।
एकै नैन एकै कान एकै देहु एकै बान
खाक-बाद आतस औ आन की बलाओ है।
अलह अभेख सोई पुरान और कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाओ है। "[7]

"श्री गुरु ग्रंथ साहिब" का भी यही संदेश है जिसमें फरीद भी है और कबीर भी है, जिसमें धर्म, क्षेत्र, जाति और भाषा का कोई भेद नहीं। महाराजा रणजीत सिंह इसी राह पर चल रहा था जिसमें वाहिगुरु को मिलना आध्यात्मिक राह है तो संसार में नियंत्रण करना एक सामाजिक और राजनैतिक उत्तरदायित्व।

महाराजा केवल धार्मिक समस्याओं में ही धर्म-निर्पेक्षता को उत्साहित नहीं करता था, अपितु समूचे राजनैतिक प्रशासन में आपका कार्यकुशल मंत्रीमण्डल भी जाति-पाति, नसल के भेदभाव के बिना था। फकीर अज़ीज़ुद्दीन, फकीर नूरुउद्दीन, राजा दीना नाथ, दीवान मोहकम चन्द, दीवान सावन मल्ल, राजा ध्यान सिंह, महाराजा के दरबार में मंत्री थे। इतिहासकार फौजा सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह के राज्य के बारे में चार धारणाओं का उल्लेख किया है। "सिख धर्म का राज्य, धर्म-निर्पेक्ष

राज्य, पंजाबी राष्ट्रीयता का राज्य और सैनिक राज्य।"[४]

हमारी समस्या महाराजा रणजीत सिंह के राज्य-प्रशासन के बारे में बहस में पड़ना नहीं केवल उनका धर्म में अथाह विश्वास होते हुए धर्म निर्पेक्ष रहने के सिद्धान्त को प्रकट करना है।

सामान्यतः धर्म निर्पेक्ष का अर्थ धर्म के विरोध में लिया जाता है, परन्तु हमारे विचार में यह पश्चिम का सिद्धान्त है। पश्चिम में धर्म-निर्पेक्षता की लहर को राजनैतिक और दार्शनिक आधार भूमि पर खड़े नीति-शास्त्र के साथ संबंधित करते हुए निष्पक्ष धार्मिक लहर व्याख्यायित किया गया है। जीवन और सदाचार के साथ संबंधित करके इसे दार्शनिक प्रभाव के अधीन राजनैतिक परिस्थितियों की उपज कहा जाता है। निस्संदेह इसे विद्रोह की लहर समझा है। विद्रोह तो संकीर्ण धार्मिकता और धर्म संचालन उपक्रमों के विरोध में से पैदा हुआ।

राजनैतिक दृष्टि से उथल-पुथल जिसके परिणाम स्वरूप 1832 का सुधार बिल बना – उसका आधार बनी और दार्शनिक रूप में इसकी जड़ें "ऐसोसिएट्स स्कूल" के साथ जोड़ी गईं। तब तक पश्चिमी धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र की सर्वस्वीकृत सच्चाईयों और जीवन-दर्शन के बारे में चले आ रहे विचारों का विरोध करना, इसका मूल मंतव्य स्वीकार किया गया है। यह कहा गया कि धर्म निर्पेक्षता का दृष्टिकोण भौतिक स्तर पर मानवीय जीवन के कल्याण के साथ संबंध रखता है।

धर्म-निर्पेक्षता का जन्म तथा विकास उस समय हुआ जब मानवीय चिन्तन ने विज्ञान तथा धर्म को पूर्णतः एक दूसरे का विरोधी करार दे दिया था। इस विचार के समर्थकों का विचार था कि धर्म-निर्पेक्ष ज्ञान वास्तविक जीवन के अनुभव के आधार पर आकलित किया जा सकता है जैसे गणित, भौतिक विज्ञान तथा रासायण धर्म-निर्पेक्ष विज्ञान के विषय हैं। बिल्कुल उन्हीं आधारों पर ही हम सदाचार और जीवन-कल्याण का सिद्धान्त निर्मित कर सकते हैं – इन्हीं आधारों पर हम आत्मिक ज्ञान का विवेक जान सकते हैं।

पश्चिम में धर्म निर्पेक्षता के सिद्धान्त और आदर्श "धर्म" के सिद्धान्तों और आदर्शों से बिल्कुल अलग समझे गये हैं। जिस प्रकार धर्म अदृश्य सत्य को जानने के यत्न में है – उसी तरह धर्म-निर्पेक्ष सिद्धान्त

इससे कोई संबंध नहीं रखता। यह दृश्यमान संपर्क रखता है। धर्म निर्पेक्षता के पश्चिम में पनपे इन विचारों से भारतीय धर्म-निष्पक्षता का सिद्धान्त सहमति प्रकट नहीं करता।

भारत में धर्म-निर्पेक्षता का भाव धर्म-विरोध अथवा नास्तिक नहीं और न ही भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है। बल्कि यहां तो इसके अर्थ आत्मिक मूल्यों की व्यापकता से संबंधित हैं, जिसे भिन्न-भिन्न मार्गों से प्राप्त किया जा सकता है। ऋगवेद का यह मंत्र भारत की इस रुचि को ही दर्शाता है :

''जन्म विभारती बहूद्रा विवाच्यम्
नाना धर्माना पृथ्वी यथू कसाम्।

यह बात न केवल प्राचीन भारतीय सभ्यता का प्रतीक है बल्कि मध्यकालीन श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी से प्राप्त प्रवेश का भी प्रतीक है जिसे 19वीं शताब्दी में महाराजा रणजीत सिंह ने अपनाया तो बीसवीं शताब्दी में ''महात्मा गांधी ने उसे दोहराया है।'' मेरी दूसरे धर्मों में आस्था उतनी है जितनी अपने में।

भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में, ''प्रजातंत्र और धर्म निर्पेक्षता'' एक दूसरे से आरम्भ से ही कदम मिला कर चले हैं। बल्कि यह एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते रहे हैं। भारत जैसे बहूधर्मी और बहु सांस्कृतिक समाज में प्रजातंत्र केवल धर्म निर्पेक्ष आदर्श पर ही निर्मित हो सकता है। दूसरे शब्दों में धर्म निर्पेक्षता स्वयंमेव प्रजातांत्रिक व्यवस्था की मांग करती है। भारतीय धर्म-निर्पेक्षता के आदर्शों और सिद्धान्तों के बारे में हमारे अपने विचारकों का यही मत है।

भारतीय संविधान में जिस धर्म-निर्पेक्ष राज्य की स्थापना को स्वीकार किया गया है, उसकी जड़ भी पश्चिम में नहीं बल्कि भारतीय विचार धारा में है। मंत्र शब्द, अथवा विचार महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इनका व्यावहारिक रूप यदि कहीं उपलब्ध होता है तो वह महाराजा रणजीत सिंह के समय में, जिसकी हम दूसरी जन्म शताब्दी मना रहे हैं।

पंजाब के इस महान सपूत ने जिस निपुणता से धर्म निर्पेक्षता के आदर्शों पर चलकर पंजाब में ने जिस 'पंजाबियत' नैतिकता को पैदा किया था, आज भी पंजाबियों के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम दे सकती है।

महाराजा के लिए धर्म और राज्य प्रबन्ध दो भिन्न स्वतंत्र बातें हैं। परन्तु वे आजीवन धर्म अथवा भिन्न-भिन्न धर्मों की निर्माणात्मक भूमिका से निर्पेक्ष अथवा अनजान नहीं थे। आज बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक की समाप्ति पर हम जो समस्या पूरी तरह हल नहीं कर सके – महाराजा रणजीत सिंह ने गुरु साहिब के धर्म-निर्पेक्षता के सिद्धान्तों के समर्थक बन कर उन्नीसवीं शताब्दी में समाधान ढूंढ लिया था। आज पंजाबियों ने सम्मिलित प्रयास करके भाषा की समस्या हल कर ली है। पंजाबी संस्कृति के निर्माण में भी वे यत्नशील हैं, परन्तु अभी पंजाब सांस्कृतिक चेतना ने धार्मिक तंग घेरों को पार करके धर्म निर्पेक्षता की नीति को अपनाकर अपने "पंजाबियत" के स्वरूप और स्वभाव को ग्रहण करना है। मेरे विचार में महाराजा रणजीत सिंह की 200 वर्षीय जन्म शती मनाते हुए हम उनके उद्देश्यों पर चलकर यह मंज़िल भी जल्दी तय कर सकते हैं।

पंजाब में उनके द्वारा लगाया गया धर्म-निर्पेक्षता के आदर्शों का पौधा संपूर्ण भारत के लिए एक नमूना है। यदि हम भारत में वस्तुत: धर्म निर्पेक्ष राज्य चाहते हैं तो हमें महाराजा रणजीत सिंह के आदर्श को ही अपनाना पड़ेगा, जिसमें अपने धर्म में विश्वास रखते हुए, अन्य धर्मों का आदर हो। प्रत्येक धर्म सुरक्षा महसूस करे और प्रत्येक धर्म को विकसित होने का पूरा-पूरा अवसर मिले। महाराजा रणजीत सिंह का धर्म निर्पेक्ष होने से भाव यह नहीं कि इनका धर्म में विश्वास नहीं था। अपने धर्म में विश्वास होते हुए अन्य धर्मों का सम्मान महाराजा रणजीत सिंह का संदेश है जिसे इस शताब्दी के समय हमें गांवों, शहरों, प्रान्तों, देश एवं विदेश में ले जाना चाहिए।

(गुरु गोबिन्द सिंह फाउंडेशन से सधन्यवाद)

---

1. भाई कान्ह सिंह नाभा, महान कोष।
2. J. D. Cunningham, History of the Sikhs.
3. Teja Singh, The Abolition of the Gurmatta and the Misals.
4. Dr. Gokal Chand Narang, A Glorious History of Sikhism.
5. Syed Mohd., Latif, History of Lahore.
6. Shanta Sarabjit Singh, Panjabi Tribune, Dated 19.10.1980.
7. अकाल उस्तत (1686)   8. डॉ. फौजा सिंह।

मेलों एवं त्योहारों का सरपरस्त

– डा० हरिराम गुप्ता

जुलाई 1799 का दिन पंजाब के इतिहास में एक आह्लादपूर्ण दिवस है। यह वह दिन है जिस दिन महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर पर कब्ज़ा कर अपने राज्य की नींव रखी थी। अपनी विलक्षण बुद्धि, दूर-दर्शिता और भविष्य के लिए अन्तर्दृष्टि से उन्होंने पंजाब के भिन्न-भिन्न जुझारु लोगों को संगठित करके एकमुष्ट किया।

महाराजा ने अपनी विजयों से अपनी शक्ति को संचित किया। वे जैसे ही किसी नगर अथवा किले पर विजय प्राप्त करते, वहां वे शान्ति, कानून व्यवस्था लागू करने के लिए योग्य प्रशासकों को नियुक्त करते। उनके 40 वर्षीय दीर्घकाल राज्य-काल के दौरान उनके समूचे राज्य में शान्ति रही। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर छिट-पुट लड़ाई के अतिरिक्त सिख राज्य पर कभी भी किसी विद्रोही अथवा बाहरी शत्रु ने आक्रमण नहीं किया।

पंजाब में शान्ति स्थापित होने से इसकी जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। नये गांव तथा नगर अस्तित्व में आये। बड़े शहरों का प्रसार हुआ। व्यापार में वृद्धि हुई। उद्योग प्रफुल्लित हुए। राजनैतिक एकता और आर्थिक समृद्धि के कारण पंजाबी राष्ट्रवाद का विकास हुआ।

निम्नांकित संक्षिप्त वर्णन से पता चलता है कि महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाबी मेलों और त्योहारों की अपनी सरपरस्ती द्वारा राष्ट्रवाद की भावना का कैसे विकास किया।

भिन्न-भिन्न जातियों, संप्रदायों और धर्मों के लोग अपने मत भेदों और विरोधों को परे रख अवकाश के क्षणों में एकत्रित होते। उनके द्वारा सहयोग और सद्भावना का विकास होता और धार्मिक सहनशीलता को उत्साह मिलता। इस से लोगों में यह विचार पैदा होता कि वे एक ही देश

के वासी और एक ही धरती के पुत्र हैं।

इन सामाजिक सभाओं से लोगों को उनके घरेलू तथा बाहरी कामों से छुटकारा मिलता।

लोहड़ी :

राज्य काल में लोहड़ी जलाई जाती थी। महाराजा रणजीत सिंह यह त्योहार बहुत खुशियों के साथ मनाते थे। दरबार लगाया जाता था जहां नज़रानें और खिल्लतों का विनियम होता था।

– (नेशनल आर्काइवज़ इण्डिया, फोरेन डिपार्टमैंट कंसलटेशन, 17 फरवरी, 1840 सं: 30, ओमदत्त-ओ3 तवारीख, कार्यालय-III, भाग I, 116-117, भाग II, 230, भाग IV, 449 50

माघी :

यह लोहड़ी से अगले दिन होता है। महाराजा माघी वाले दिन अपने दरबारियों और श्रेष्ठ व्यक्तियों को पुरस्कार देते।

(शाहमत अली, दी सिखस एण्ड अफगान, 94)

बसन्त :

शालीमार बाग के निकट माधो लाल हुसैन के स्मारक पर एक मेला लगता था। हिन्दू, मुसलमान तथा सिख सभी इस में सम्मिलित होते थे। गिद्धा डालती हज़ारों लड़कियां संगीत और गिद्धे से लोगों का मनोरंजन करती थीं।

महाराजा रणजीत सिंह इस दिन पीले वस्त्र धारण करते और बसन्त का त्योहार बड़े हर्ष के साथ मनाते थे। 1825 में महाराजा ने बसन्त की खुशी में अमृतसर में हरिमन्दिर साहिब में 2000/- रुपए कड़ाह प्रसाद के लिए भेंट किये थे।

महाराजा, माधो लाल हुसैन के स्मारक पर गये। उन्होंने पीली साटिन

पहने हुए सैनिकों का निरीक्षण किया। पहले उन्होंने स्मारक पर 125 रुपए चढ़ाये। तब वे मोतियों और मूल्यवान पत्थरों से जड़ित छत्र के नीचे बैठ गये और लगभग दस मिनटों के लिए पावन ग्रन्थ की बाणी सुनी और भेंट चढ़ाई, फिर पवित्र ग्रन्थ को इन अलग-अलग रुमालों से ढंक दिया गया। सब से ऊपर का रुमाल पीले रंग की मखमल का था।

(अलीउद्दीन, इबारत नामा, 43, बर्नज, I, 26 28 हयगल, 338-40, जाम-ए-जहां नुमा। 16 फरवरी, 1825, पृष्ठ 6-7, सोहन लाल, उमदत-उत-नवारीख कार्यालय II, 320)

होली

होली के अवसर पर होली जलाई जाती और उपहार भेंट किये जाते थे। सारा कारोबार रुक जाता। सभी हिन्दू और सिख हर्षोल्लास में डूब जाते। होली खेलने वाले नवयुवक और वृद्ध टोलियों के रूप में ढोल बजाते हुए गलियों और बाज़ारों में से गुज़रते और प्रत्येक हिन्दू और सिख पर रंगदार पानी अथवा गुलाल फेंकते, यहां तक कि स्त्रियों और यूरोपियनों को भी छोड़ा न जाता।

आनन्दपुर साहिब

आनन्दपुर साहिब में एक विशाल मेला लगता। यह मेला दो दिन चलता। दूसरे दिन दोपहर के बाद श्रद्धालु अपने अपने झण्डों के साथ मठों में से निकलते। वे गाते और साज़ बजाते हुए साथ लगे चो (नदी) में जाते। अपने अपने झण्डों के इर्द-गिर्द एकत्रित ग्रंथियों और पुजारियों का जलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ता। वे श्रद्धालुओं से भेंट स्वीकारते हुए उन्हें आशीर्वाद देते। आनन्दपुर साहिब गुरुद्वारे का नीला झण्डा निहंगों द्वारा निकाला जाता। उन्होंने गाढ़े नीले रंग की पोशाकें पहनी होतीं। बड़ी-बड़ी उठी हुई तीखी पगड़ियां सजाई जाती जिन पर लोहे की तीखी धार वाले चक्कर पहने होते। बहुत से निहंग घोड़ों पर सवार होकर तेज़ी से इधर उधर घूमते।

सभी अपने हथियारों और सजे हुए घोड़ों पर सवार होते। सन्ध्या वेला में शनैः शनैः पताकाएं शहर की ओर आनी आरम्भ होतीं और विजय के चिन्ह के रूप में अपने स्थान पर वापस लाई जातीं।

लाहौर

महाराजा रणजीत सिंह होली बड़ी धूमधाम के साथ मनाते। बड़ी मात्रा में रंग और सोने व चांदी की पिचकारियां इकट्ठी की जातीं।

शालीमार बाग़ का दारोगा महाराजा को फूलों की शाखाएं भेजता जिन्हें महाराजा मिठाई के थालों सहित सरदारों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की ओर भेज देता। महाराजा साहिब इस दिन शानदार दरबार लगाते। इस में राज्य के सभी श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित होते। सभी नज़राने भेंट कर खिल्लतें हासिल करते। महाराजा सभी दर्शकों पर गुलाब फेंकते और गेरुए रंग का पानी छिड़कते।

22 मार्च, 1837 को बर्तानवी सेनापति सर हैनरी फेन ने लाहौर में होली देखी। वह कहता है कि प्रत्येक कुर्सी के सामने छोटी टोकरियों का ढेर चिन कर लगाया हुआ था, जिस में लाल पाउडर की खस्ता गोलियां भरी हुई थीं। इनके लाल गाढ़े पीले केशर के बर्तन तथा लम्बी सुनहरी पिचकारियां थीं। महाराजा साहिब ने मक्खन जैसा एक पदार्थ लिया और इसे केशर से भर कर सर हैनरी के गंजे सिर पर उलट दिया। उसी समय प्रधान मंत्री ने उस पर सुनहरी तथा चांदी के बर्क का पाउडर मल दिया। इस समय में लम्बी दाढ़ी वाले भले पुरुष ने लाल पाउडर से भरी एक गेंद फेंकी जो सर हैनरी की आख पर लगी। इसी समय एक युवा व्यक्ति ने केशर का पदार्थ सर हैनरी की दूसरी आंख में डाल दिया।

इस दिन का दूसरा शिकार कंधार का एक अफगानी-राजपूत था। लाल पाउडर से भरी गेंद दूर से उसकी आंखों में लगी। इस से तुरन्त बाद किसी ने केशर तथा पीले रंग से उसकी दाढ़ी रंग दी। इसी तरह और रंग भी उस पर फेंके गये। उल्लासपूर्ण वातावरण में यह खड़ा हो गया।

दोपहर के बाद महाराजा ने प्रेड ग्राउण्ड में होली मनाई। सायंकाल महाराज लाहौर की गलियों में हाथी पर सवार होकर गुज़रे। हाथियों पर चढ़े मुख्य एवं स्त्री अंगरक्षक उनके साथ थे। लोगों ने जंगलों में से उन पर रंगवाला पानी डाला। लोगों ने राजा को भड़ुआ कहा और इस गाली पर महाराजा खिलखिलाकर हंस पडे।महाराजा इस त्योहार पर प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करता था।

सूर्य एवं चन्द्रग्रहण :

12 अप्रैल, 1828 को सूर्यग्रहण के दिन महाराजा रणजीत सिंह ने अपना भार तुलवाया और लगभग 12000/– रुपये निर्धनों में बांटे।

(जाम-ए-जहां नुमा, 21 मई, 1828 पृष्ठ 12)

बैसाखी :

संवत् 1876 (1819 ई०) में महाराजा रणजीत सिंह ने तीन महीने मुलतान में गुज़ारे। बैसाखी वाले दिन हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिखों के धार्मिक स्थानों पर भेंटें चढ़ाई और फकीरों और निर्धनों में धन वितरित किया।

यह बैसाखी का ही दिन था जब महाराजा रणजीत सिंह ने 1828 में ध्यान सिंह को राजाओं की उपाधि दी थी। उन्होंने एक आदेश जारी किया कि भविष्य में जो उसे मीयां कह के पुकारेगा उसे एक हज़ार रुपए दण्ड होगा और यदि वह यह राशि अदा करने के योग्य न हुआ तो उसके नाक तथा कान काट दिये जायेंगे।

महाराजा साधारणतः बैसाखी अमृतसर में ही मनाया करते थे।

सन् 1831 बैसाखी वाले दिन ही अमृतसर में महाराजा ने 25,000 रुपये की पोशाकें तथा सोने और चांदी के बर्तन बांटे।

प्रत्येक वर्ष बैसाखी वाले दिन पवित्र ग्रन्थ की मूल प्रति करतारपुर से अमृतसर अथवा लाहौर को भेजी जाती थी।

(अमरनाथ, जफरनामा-ए-रणजीत सिंह, 190 सिख तथा अफगान 95–96, सोहन लाल, कार्यालय III, भाग पहला तज़करित-उल-मुल्तान, 123)

जन्माष्टमी

महाराजा रणजीत सिंह के आदेशानुसार भगवान कृष्ण का जन्मदिवस तोप की सलामी से मनाया जाता था।

1825 में महाराजा ने लाहौर में एक मन्दिर को 150 रुपये, दो मन घी तथा 2 मन शक्करकन्दी सहित और वस्तुएं भेजीं। इस दिन लाहौर के भिन्न-भिन्न मन्दिरों मे चढ़ावा 5000/- रुपये था।

दशहरा :

कभी-कभी महाराजा अमृतसर में दशहरा मनाया करता था। नियमानुसार दशहरे के पश्चात् सैनिक अभियान आरम्भ करता था। यह त्योहार दस दिन तक लगातार मनाया जाता था।

हाथी पर बैठ कर प्रेड ग्राउण्ड जाते समय महाराजा रणजीत सिंह दोनों हाथों से पैसों की वर्षा करता था।

महाराजा साहिब ने दशहरे वाले दिन एक शानदार दरबार सजाया। नृत्य करने वाली बालिकाओं ने दर्शकों का मनोरंजन किया। महाराज तथा उसके दरबारियों ने पीतवर्ण परिधान धारण किये हुए थे। सरदारों तथा महान प्रतिष्ठित सज्जनों को उपहार के रूप में स्वर्णमुद्राएं, मोहरें, सोने के कर्णाभूषण तथा घोड़े दिये। उन्हें सम्मान के रूप में मूल्यवान चोगे पहनाये गये।

1837 को दशहरे वाले दिन, मोनीसियर ऐलार को उपहार के रूप में फ्रांस में बने हुए सोने के सिक्के भेंट किये गये। इन सिक्कों के एक तरफ "महाराजा रणजीत सिंह बहादुर, वालीए पंजाब" तथा दूसरी ओर महाराजा रणजीत सिंह जी की फोटो अंकित की हुई थी। यह पंजाब के सोने के सिक्के के आकार के होते थे।

दशहरे वाले दिन महाराजा ने सारी सेना का निरीक्षण किया जिसमें जागीरदार भी शामिल थे। यह निरीक्षण लाहौर के उत्तर में स्थित प्रेड ग्राउण्ड में किया गया। प्रेड ग्राउण्ड में अतिथियों तथा बड़े बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए तंबू तथा शामियाने लगाये हुए थे। महाराजा चांदी से बने बंगले में बैठा। सारी सेना, अश्वारोही, पैदल, तोपखाना, सारे साज़ोसामान से सज्जित सजे हुए घोड़े तथा हाथी उनके सामने से गुज़रे। प्रत्येक रेजिमैंट के आगे बाजा बज रहा था। बैंड बाजे के पीछे एक ग्रंथी गुरु ग्रंथ साहिब की पावन बीड़ अपने सिर पर ले जा रहा था।

(अहमंद शाह बताल, 488, अखबारे-लुधियाना 12 नवम्बर 1836, पृष्ठ 2 बूटे शाह, 11,209 जामे जहां नुमां, 15 नवम्बर, 1826 पृष्ठ 6-7, नवम्बर, 1827पृष्ठ 6-5 नवम्बर, 1828, पृष्ठ 8, लतीफ लाहौर, 272 माहेअफोज़, दिसम्बर, 1836 पृष्ठ 6 मैसन, 1, 437 एन. ए. आई, विदेशी विभाग पोलीटिकल कन्सलटेशन्ज 18 जुलाई, 1838 सं: 32-34 सीक्रेट कनसलटेशन्ज,25 नवम्बर, 1831 सं: 50, जुलाई, 1838 सं: 52-54, सिख एण्ड अफगान्ज़, 94 सोहन लाल, कार्यालय 1, 75, 81, भाग 111, 341-42 भागV7, विक्टर जैकूमोंट 11, 196)

दीपावली :

मुसलमान अधिकारियों के घर भी उसी प्रकार अनुपम प्रकाश किया जाता था जैसे कि अन्य सिख तथा हिन्दू घरों में मिठाइयों तथा फलों के उपहार परस्पर दिये गये। 5 रुपए घुड़सवार और पैदल सेना को प्रत्येक रेजिमैंट के लिए तथा अढ़ाई रूपए तोपखाने के प्रत्येक जवान के लिए तेल खरीदने के लिए मंजूर किये गये जिससे कि दीपावली के दिन रोशनी की जा सके।

रणजीत सिंह ने यह त्योहार बड़ी ही चहल पहल तथा खुशी और नृत्य के मध्य मनाया। वे रोशनी और आतिशबाज़ी देखने के लिए शहर गये। कर्मचारियों को आदेश दिये गये कि वे भारी मात्रा में तेल, मिट्टी के दीप, मोमबत्तियां तथा मिठाइयां गरीबों में निःशुल्क बांटें।

वे इस मौके पर अन्य शहरों में भी जाते। 1815 में महाराजा इन उत्सवों को देखने के लिए स्यालकोट गये तथा उन्होंने शहर तथा छावनी में ये समारोह देखे।

सन् 1825 में वे बटाला गये तथा उन्होंने ब्राह्मणों को 5 रुपये प्रति गृह वितरित किये तथा उन्होंने 4,000 रुपये स्वयं निर्धनों में वितरित किये।

7 अक्तूबर, 1838 को महाराजा ने लाहौर में दीवाली मनाई। इस अवसर पर उन्होंने दान के रूप में एक हाथी, एक घोड़ा, वस्त्र, सोने की गागरें जिनमें प्रत्येक में पांच-पांच हज़ार रुपये थे, वितरित किये।

(जाम-ए-जहां नुमा, 10 दिसम्बर, 1828, पृष्ठ 9 एन. ए. आई. विदेश विभाग, सीक्रेट कन्सल्टेशन्ज, 23, नवम्बर, 1840, सं: 63-81 पंजाब गवर्नमेंट रिकार्ड आफिस लाहौर, मोनोग्राफ XVII 2,222, पंजाब)

चौबारा छज्जू भगत:

सन् 1827 में महाराजा ने छज्जू भगत के चौबारे की यात्रा की। वहां आध्यात्मिक गीत सुने और संगत में कड़ाह प्रसाद वितरित किया।

गुरु नानक जन्म दिवस

यह पावन दिवस पंजाब के कई स्थानों पर मनाया गया। 1826 में पंडौरी में एक मेले का आयोजन किया गया। इस अवसर पर कुछ सिख घुड़सवारों तथा व्यापारियों के मध्य विवाद हो गया। इस विवाद में पांच व्यापारी और दो सिख आहत हो गये और दो दुकानें लूटी गई। महाराजा ने अपराधियों को दण्ड दिया और लूटी हुई सम्पत्ति उनके अधिकारियों को वापस दी गई।

(इब्रत नामा, 430)

ईद और शब-ए-बारात

फतह शाह-सरिश्त की समाधि पर एक बडे मेले का आयोजन किया गया जिसमें महाराजा साहिब ने भाग लिया।

बकरीद (ईदुलजुहा)

जनवरी, 1811, काज़ी फकीरुल्ला ने लाहौर में डौंडी पिटवा कर घोषणा की कि सभी मुसलमान बादशाही मस्जिद में नमाज़ अदा करने के लिये एकत्रित हों। महाराजा रणजीत सिंह ने वहां शान्ति एवं व्यवस्था स्थिर रखने का उत्तरदायित्व लिया और सारा कार्य उसी दिन बड़ा शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया।

मुहर्रम

सिख राज्य में शीया मुसलमानों द्वारा मुहर्रम का उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर जलूस में ताजिए निकाले गये।

1825 में रणजीत सिंह ने लाहौर के अफगान कोतवाल अफलातून को आदेश दिया कि ऐसे प्रभावकारी उपाय किये जाएं जिनसे हिन्दू और मुसलमानों के मध्य और दूसरी ओर सुन्नी एवं शीया के मध्य शान्ति स्थिर रहे।

कदमों का मेला

सन् 1826 में मुलतान में 5000 से 6000 व्यक्ति इस मेले को देखने के लिए एकत्रित हुए। एक विशेष बलौची कबीले ने शहर में लूटपाट करनी आरम्भ कर दी। दीवान सावन मल अकस्मात् एक विशाल सैनिक टुकड़ी लेकर बाहर आया। लूटपाट करने वाले तीन व्यक्ति जीते पकड़े गए छः व्यक्तियों को गोली मार दी गई और शेष भाग गए। बुध सिंह रसालदार को अपनी ड्यूटी में अवहेलना करने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया।

नौरोज़

यह दिन ईरानी किज़लबाशियों के साल का नया दिन था। उनमें से कुछ पेशावर में रहते थे। यह दिन 20 अथवा 21 मार्च को मनाया गया। पेशावर के मुसलमानों ने यह दिन बागों में गुज़ारा। लोग गुलदस्ते और आडू के फूलों की शाखाएं लेकर गलियों और बाज़ारों से गुज़रे।

सामान्य विश्वास यह था कि यदि प्रथम दिवस प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत किया जाए तो सारा साल खुशी के साथ गुज़रता है।

रणजीत सिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों ने यह मेला विशेषतया रावी दरिया के किनारे पर शालवाले मनमोहक टैंटों में ईरानी गलीचे बिछा कर बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया।

(बर्नज़ I, 90, IV, 461, लतीफ, लाहौर, 269 एन. ए. आई. विदेशी

विभाग, गुप्त मंत्रणा, 28 अप्रैल, 1848 स: 84 रणजीत सिंह दरबार की सूचनाएं 1825 पृष्ठ 380 पंजाब सरकार का रिकार्ड कार्यालय लाहौर, निबंध 17, पृष्ठ 20, रिसाला-ए-साहिब नुमा, 355).

क्रिसमस की शाम

पंजाब में ईसाइयों के मेले और त्योहार संख्या में कम ही थे। क्रिसमस को वे बड़े दिन के नाम से पुकारते थे और यह उनका मुख्य त्योहार था। उस दिन बड़ी खुशियां मनाई जाती थीं और अपने संबंधियों एवं मित्रों को उपहार दिये जाते थे। लाहौर दरबार, सिख साम्राज्य में रह रहे यूरोपियनों को मिष्टान भेजा करता था।

संगीत में रुचि

– अतर खां महाराजा का प्रसिद्ध बांसुरी वादक था।

– 1836 में महाराजा ने बेगम समरु की सेवा के लिए संगीत कारों को लाहौर बुला भेजा।

– प्रसिद्ध पंजाबी कवि हाशम रणजीत सिंह का दरबारी कवि था।

(ह्यूगल, 309, 745-46, ज़िला लाहौर गज़टीयर, 1883-84, पृष्ठ 54-55, एन. ए. आई. विदेश विभाग, राजकीय मंत्रणा, प्रथम जुलाई, 1831, नम्बर, 44-45, गुप्त मंत्रणाएं 31 दिसम्बर, 1847, नम्बर 189-94, ओसबर्न, 85-86, 95-98 सुल्तान-उल-अखबार, 17 अप्रैल, 1836 पृष्ठ विक्टर जैकमोंट II. 23 वीन, 144-45, वौन ओर्लिक, I,226-27)

(गुरु गोबिन्द सिंह फाउण्डेशन से साभार)

महाराजा रणजीत सिंह का शासन प्रबन्ध

– डा. एन. डी. अहूजा

महाराजा रणजीत सिंह जी का जन्म नवम्बर, 1780 की 2 अथवा 13 तारीख को हुआ 200 वर्षों के पश्चात् हम उस बहादुर सरदार की यादशानो-शौकत से मना रहे हैं। लेकिन ऐसे शूरवीरों के नाम को केवल औपचारिक ढंग से स्मरण कर लेना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उनके कुछ विशेष गुणों एवं कलाओं को समझना अधिक आवश्यक होता है क्योंकि उनके दर्शाये दिशा-निर्देश, पक्की बुनियाद का कार्य दे सकते हैं और भावी पीढ़ियों का मार्ग-दर्शन कर सकते हैं।

महाराजा रणजीत सिंह की जीवन कथा के कई पहलू हैं। इनके एक एक पहलू पर पूरी पुस्तक लिखने की आवश्यकता मैंने इन पहलुओं में से केवल एक अहम् पहलू पर कुछ विचार करने की आवश्यकता समझी है जिससे उसकी रूप रेखा से हम कुछ आधारमूल उद्धरण प्राप्त कर सकें।
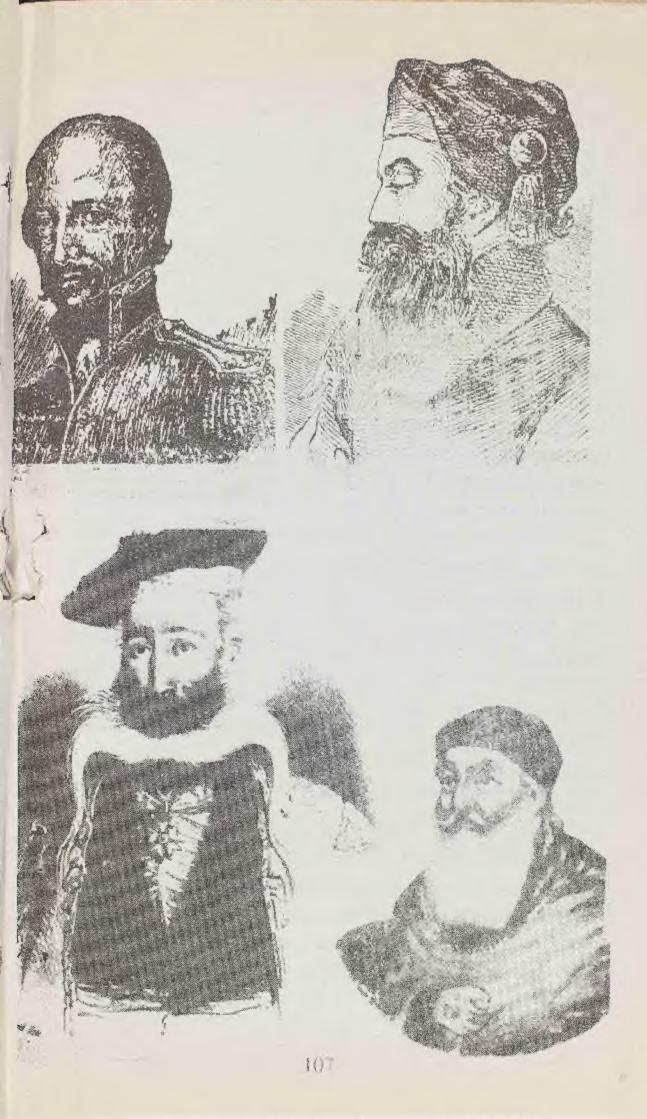
सिख गुरु साहिबों का अपना ही अनुपम राज्य प्रशासन था लेकिन राजनीतिक इतिहास में इनके क्षेत्र को कोई स्वतंत्र अथवा रियासत नहीं कहा जा सकता। बन्दा बहादुर के राज्य को भी सामयिक साम्राज्यवादी सत्ता ने आज़ाद रियासत नहीं माना था। मिसलों के राज्य को आज कई लोग परिहासवश बर्बरता का नाम दे देते हैं। मिसलों के राज्य को जिस की लाठी उसकी भैंस कहा जा सकता है, लेकिन यह गौरव सिखों में पहली बार महाराजा रणजीत सिंह के ही हिस्से में आया कि उनके राज्य को उस वक्त की देशी एवं विदेशी सभी हकूमतों ने अपनी रज़ामन्दी से एक बराबर का आज़ाद राज्य माना हुआ था एवं आज तक के इतिहासकार रणजीत सिंह को एक जाना माना स्वतंत्र महाराजा कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। कभी भी देशी अथवा विदेशी, हिन्दू, सिख, मुसलमान अथवा अंग्रेज़ जाति अथवा शक्ति ने कभी भी इस बात से इन्कार नहीं किया कि महाराजा रणजीत सिंह एक महान एवं स्वतंत्र राजा नहीं था। किसी ने उस पर निरंकुशता का दोषारोपण नहीं किया। किसी ने भी इसे लुटेरा अथवा डाकू कहने की हिम्मत नहीं की। किसी भी सिख ने रणजीत सिंह को इस बात पर कोसने का विचार तक भी नहीं किया कि उसने शेष ग्यारह सिख सरदारों की सरदारियां एवं मिसलें क्यों छीन लीं। जनसाधारण सर्वदा एक अच्छे राज्य प्रबन्ध के उत्सुक होते हैं। जो भी योद्धा अथवा राजा प्रजा की भलाई के लिए तबायफ-उल-मलूकी एवं अत्याचार को खत्म करके एक उत्तम, संपूर्ण, समूचे एवं सुव्यवस्थित राज्य का निर्माण करता है उसकी प्रजा भी आभारी होती है एवं इतिहास भी उसके लिए ऊंचा स्थान एवं विशेष पृष्ठ सुरक्षित कर लेता है एवं आने वाली पीढ़ियां भी उस से एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य ले लेती है। रणजीत सिंह के नाम पर यद्यपि कोई जितना भी कीचड़ उछालने का प्रयत्न कर ले लेकिन उसके राज्य प्रबन्ध की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। विशेषतया जब उस युग में हिन्दुस्तान की अन्य रियासतों एवं हिन्दुस्तान के बाहर अन्य जातियों की ओर देखें तो मालूम होता है कि रणजीत सिंह एक आधुनिक राज्य का निर्माण करने के प्रयास में अग्रणी होने का श्रेय प्राप्त करने के पूर्णतः अधिकारी हैं।

इससे पहले कि रणजीत सिंह के राज्य प्रशासन पर किंचित दृष्टिपात करें यह अच्छा होगा कि हम इस तरह की पहली स्वतंत्र सिख रियासत के स्थापित होने से पूर्व की स्थिति का एक हल्का सा दृश्य भी अपनी आंखों के सामने रखें ताकि अन्तर स्वतः हमारी समझ में आ जाये।

रणजीत सिंह का दादा स. चढ़त सिंह एक मामूली सा लड़ाकू सरदार था। हालात का फायदा उठा कर वह गुजरांवाला की शुक्रचकिया मिसल का आगू बन गया। उसके पुत्र महां सिंह ने भी हाथ पैर मारे और इस मिशन को कुछ आगे बढ़ाया लेकिन इस तरह की राजनीति में उस ने कई सिख मिसलदारों, अन्य लोगों को नाराज़ भी कर लिया। अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए उसने जींद के जिमीदार सरदार राजा राजवंत सिंह की लड़की राज कौर से शादी कर ली। रणजीत सिंह महां सिंह एवं राज कौर की इस जवान जोड़ी का एक मात्र पुत्र था। जब 27 वर्ष का जवान महां सिंह सन् 1792 में इस दुनियां से दूर अकालपुरुख के चरणों में जा पहुंचा तो रणजीत सिंह की आयु उस समय लगभग 11½ वर्ष की ही थी। कहते है कि जब रणजीत सिंह केवल 6 वर्ष के थे तो कन्हैया मिसल के सरदार जय सिंह की पोती महताब कौर से इस की सगाई कर दी गई। बचपन में ही चेचक के कारण रणजीत सिंह की एक आंख भी जाती रही। महां सिंह की अत्यधिक व्यस्तताओं के कारण रणजीत सिंह की पढ़ाई लिखाई की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया था और वह एक ज़िमींदार का एकमात्र लाड़ला बेटा समझा जाने लगा। इसको सही प्रशिक्षण देने के लिए उन्हें लड़ाई में भी अपने साथ ही रखना आरम्भ कर दिया। 10 वर्ष की आयु से रणजीत सिंह को क्षेत्रीय युद्धों में भाग लेने का जब मौका मिला तो उसने आने वाले दिनों के लिए बहुत कुछ सीख लिया। यदि प्रकृति एक वस्तु छीन लेती है तो दूसरी दे भी देती है। रणजीत सिंह की एक आंख तो अवश्य मारी गई थी लेकिन एक और भीतरी आंख जागृत हो उठी। उसका समस्त राज्य प्रबन्ध एवं विचार उसकी इस अंदर की आंख की देन कहें तो उचित ही होगा क्यों कि रणजीत सिंह को कोई और विशेष अवसर महानता प्राप्ति का नहीं मिल सका था। वर्ष 1797 के पश्चात् के राज्य को ही वास्तव में रणजीत सिंह का अपना राज्य कहा जा सकता है एवं उसकी सारी कमाई एवं अच्छाई उसकी अपनी मेहनत एवं गुरु महाराज की कृपा ही कही जा सकती है। यह बात यहां विशेष ध्यान देने योग्य है कि शिवा जी की मां ने अपने पुत्र को महान् बनाने में एक बड़ा कार्य किया। शिवा जी को दादा जी कौंडा देव जैसा महान् पथ-प्रदर्शक एवं नेता भी मिल गया। साथ ही सिर धड़ की बाज़ी लगाने वाले भूखे नंगे लेकिन आचरण के अच्छे मराठे सजीले जवानों की कई टुकड़ियां भी उस को मिल गईं। दोनों सरदार अर्थात् रणजीत सिंह एवं शिवा जी मामूली भू-स्वामी सरदारों के पुत्र थे लेकिन दोनों आज़ाद राज्य स्थापित करके अच्छे शासन के संचालक बने। अकबर

भी प्राय: 11-12 वर्ष की आयु में सम्राट बना था लेकिन उस को भी बैरम खांय जैसा समझदार रहनुमा एव अभिभावक भी मिल गया था। बाबर भी इसी आयु में ही फरगाना की गद्दी पर बैठा लेकिन उस को भी अपनी बुद्धिमती साहस एवं अनुभवी बड़ी बहन खाहिरज़ादा बेगम की रहनुमाई मिलती रही। बेचारे रणजीत सिंह ने तो जो कुछ भी किया वह उसकी अपनी ही मेहनत का सदका एवं गुरु महाराज का सहारा ही था क्योंकि उसे तो रास्ता दिखाने वाला कोई मिला ही नहीं था एवं सिख सरदार भी इकट्ठे होने की बजाए खामखाह परस्पर टूटे हुए थे।

जब रणजीत सिंह ने सन् 1797 में अपनी छोटी सी मिसल की बागडोर अपने हाथों में ली तो उसने इधर-उधर नज़र उठा कर देखा कि पंजाब की स्थिति बहुत ही खस्ता है एवं एक साहसी मनुष्य के लिए आगे बढ़ना शायद बहुत ही मुश्किल न हो। सतर्कतापूर्वक यदि अवसर का लाभ उठाया जाये तो साथ-साथ सुप्रशासन के कारण सामान्य लोगों की सहानुभूति भी अर्जित कर ली जाये। उसका अपना क्षेत्र तो उस समय रचना एवं चज्ज-दुआबे का मध्य का भाग ही था। गुजरांवाला, बज़ीराबाद, स्यालकोट, रोहतक एवं गांव दादर खाने के केवल कुछ क्षेत्र ही उसकी मिसल में थे। शेष संपूर्ण पंजाब प्राय: अन्य मिसलदारों, विभिन्न खुदमुख्तयार ज़िम्मीदारों एवं मुसलमान नवाबों के हाथ में था। हिन्दुस्तान की विशेष शक्तियों में अंग्रेज़, मराठे, अफगान एवं मुगल दरबारी अथवा सूबेदार, पहाड़ी राजे एवं नेपाली गोरखे सभी अपनी-2 भाग्य चमकाने अथवा छीना-झपटी में लगे हुए थे। इस पृष्ठ-भूमि में रणजीत सिंह का गुरु महाराज के नाम पर पंजाब में एक बड़ा राज्य स्थापित कर लेने तथा शेरे पंजाब कहलवाने का गर्व अर्जित करना प्रशंसनीय ही नहीं विशेषतया समझने योग्य भी है।

रणजीत सिंह ने अपने प्राय: 40 बर्षों के राज्य में पंजाब के अधिकांश भाग को एक शक्तिशाली एवं संगठित रियासत में परिवर्तित कर दिया। इस प्रान्त को सूत्रबद्ध करने के लिए उसने तलवार का सहारा भी लिया और युद्ध-नीति तथा राजनीति का भी। सन् 1839 में अर्थात् उसकी मृत्यु से कुछ पहले उस का राज्य प्राय: लद्दाख से सुलेमान तक एवं सतलुज से सिंध तक फैला हुआ था। 1,40,000 मुरब्बा मील का यह लम्बा चौड़ा क्षेत्र यूरोप एवं एशिया की कई महत्वपूर्ण आज़ाद रियासतों से भी बढ़कर था। उस समय का जापान जो टोकूगावा शोगन के राज्य प्रबन्ध के अधीन था एवं कई

तरह के मिसलदारों जैसे क्षेत्रीय सरदारों की सरदारी अधीन था, उसका क्षेत्र भी उस समय लगभग 1,00,000 मुरब्बा मील से अधिक नहीं था। एक आज़ाद एवं शक्तिशाली रियासत के नाते इसके राज्य प्रबन्ध की रूपरेखा का महत्व बढ़ जाता है एवं बिना सिर-पांव की टीका-टिप्पणी करने वालों का मुख बन्द हो सकता है। यह बात उस समय का पंजाबी शायद आज के पंजाबी से अधिक समझता था जब पंजाब के अंग्रेज़ी प्रभाव अधीन आ जाने के पश्चात् संत निहाल सिंह जी अल-मरूफ शहीद भाई महाराज सिंह जी (जिन्हें पंजाबी का गैरीबालड़ी कहा जा सकता है) ने पंजाब को आज़ाद करने के लिए हथियार उठाये एवं सभी पंजाबियों का आह्वान किया। तब उन्होंने आज़ादी का बिगुल बजा कर यह घोषणा की थी कि एक और आज़ादी का युद्ध हो कर रहेगा एवं पंजाब में खालसा-पंथ का राज्य फिर से स्थापित किया जायेगा। दीवान मूलराज ने भी मुलतान से केसरी झण्डा लहरा कर यही कहा था कि मासूम एवं नन्हें महाराजा दलीप सिंह से चालाकी से छीनी हुई पंजाब की आज़ाद रियासत को अंग्रेज़ों की गुलामी से छुड़वा कर फिर से आज़ाद करवा कर इसे महाराजा दलीप सिंह जी के ही हाथ देना उनका प्रथम धर्म होगा।

अंग्रेज़ों ने पंजाब की आज़ाद हकूमत को गुलाम बना कर अच्छा किया अथवा बुरा, यह इस लेख का मनोरथ नहीं, लेकिन रणजीत सिंह के राज्य प्रबन्ध को समझने के लिए यह मानकर ही आगे चलना पड़ेगा कि महाराजा रणजीत सिंह एक स्वायत्त एवं निरंकुश शासक था जिसकी रियासत न केवल हिन्दुस्तान की उस समय की विभिन्न आज़ाद रियासतों से ही बड़ी थी, बल्कि यूरोप, मध्य एशिया, पूर्वी एशिया और अमरीका की कई आज़ाद रियासतों से क्षेत्र में बड़ी थी एवं शायद राज्य प्रबन्ध में भी अच्छी थी।

उस समय की प्रायः प्रशासनिक परिस्थिति के सदृश महाराजा रणजीत सिंह शेरे पंजाब भी एक बिल्कुल स्वायत्त तानाशाह कहा जा सकता है। समूचा निज़ाम उसके ही इशारे पर चलता था। वह समस्त राज्य का एक उद्गम था। फव्वारे की धाराओं की तरह प्रत्येक आदेश उस का अपना ही होता था। राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्यकलाप सभी उसकी इच्छानुसार थे। कहने को तो चाहे यह बात सही हो लेकिन असली तौर पर रणजीत सिंह ने अपनी रियासत के निज़ाम को एक विशेष धारा में ढाला हुआ था। उस का राज्य कई भागों में बंटा हुआ था जहां उसके

गवर्नर, सूबेदार, नाज़म अथवा दीवान समूचा प्रबन्ध चलाते थे। केन्द्र को लाहौर दरबार कहा जाता था।

लाहौर दरबार में शासन व्यवस्था के लिए कई मंत्री नियुक्त किये गये थे एवं विभिन्न भाग, विभिन्न मंत्रियों एवं अधिकारियों को सौंपे गये थे। ये सभी मंत्री एवं अधिकारी महाराजा के प्रति उत्तरदायी थे लेकिन प्रायः सभी ही बुद्धिमान एवं ख्याति प्राप्त थे। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि यह पंजाबी राज तो कहा जा सकता लेकिन साम्प्रदायिक सिख राज्य नहीं। इसके बुनियादी सिद्धान्त यद्यपि सिख का मन वैल्थ के उच्चादर्शों पर रखे जाने का विचार तो अवश्य था लेकिन इस राज को केवल सिख ही चलायेंगे, यह महाराजा रणजीत सिंह ने कभी भी नहीं सोचा था। रणजीत सिंह के मंत्री-मण्डल में सिख सरदारों के अतिरिक्त हिन्दू दीवान, पहाड़ी डोगरे, मुसलमान मंत्री एवं यूरोपीयन ईसाई परामर्शदाता एवं कमानधारी भी थे। धर्मनिर्पेक्षता का यह एक सफल आदर्श था एवं शायद यह एकमात्र गुण ही रणजीत सिंह को प्रशासक के रूप में अमर बनाने में पर्याप्त है।

महाराजा रणजीत सिंह की यह विशेषता थी कि वह गुणों के अनुसार चुनाव करके व्यक्तियों को विशिष्ट स्थानों पर लगाता अथवा भेजता था। यही विशेष गुण संभवतः उसकी स्वर्णिम सफलता का सर्वोपरि कारण भी था बहुधा वह अपने मंत्रियों एवं परामर्शदाताओं के विचारों के समक्ष झुक कर उनकी सहायता करते हुए अपने व्यक्तिगत विचारों, धारणाओं अथवा परियोजनाओं से पीछे भी हट जाता था। इस में वह अपना कोई अपमान नहीं समझता था। इस तरह उसके परामर्शदाता सत्यतापूर्वक अपनी बुद्धि के अनुसार अपना मत देने में हिचकिचाते नहीं थे। महाराजा न्याय एवं समानता के प्रश्न पर अपने आप को एक आम सिख से ऊंचा नहीं समझता था। संगत का न्याय, पंगत की राय एवं पांच प्यारों का आदेश उसके लिए सर झुकाने योग्य होता था। इस प्रकार के कई उदाहरणों एवं रोचक प्रसंग महाराजा रणजीत सिंह के विषय में प्रसिद्ध हैं। खुद भेष बदल कर चारों ओर चक्कर काट कर अपनी आंखों से देखी स्थिति के अनुसार लोगों के हित के लिए जो कुछ उस से हो सकता था वह करता था, तभी तो वह खालसा जी का सेवक कहने से गर्व का अनुभव करता था। संपूर्ण जाति को अपने राज्य का नाम भी सिख पंथ का राज्य रखा हुआ था और वह "खालसा जीओ" कह कर बुलाने में प्रसन्नता का अनुभव करता था। उसके राज्य का

नाम भी सरकार खालसा जी पड़ गया। उसे साधारण लोग एवं अधिकारी भी सिंह साहिब जी कहने लगे। उसने अपनी सरकारी मोहर पर रणजीत सिंह की बजाय "अकाल सहाय" खुदवाया हुआ था। उसने अपने सरकारी सिक्कों पर कभी भी अपना नाम अथवा तस्वीर खुदवाने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि उसके विभिन्न सिक्कों पर गुरु नानक जी एवं गुरु गोबिन्द सिंह जी के नाम खुदवाये गये। उसके सिक्के "नानक सहाय" एवं "गोबिन्द सहाय" कहलाते थे। अमृतसर में जिस सुन्दर बाग को उसने स्वयं सजाया एवं संवारा उस का नाम भी गुरु राम दास जी के नाम पर राम बाग़ रखा। इसी तरह अमृतसर में स्थापित किये किले का नाम गोबिन्दगढ़ रखा। उसने गुरु साहिबों के नामों को अमर रखने के लिए एवं अपनी श्रद्धांजलि गुरु साहिबों के चरणों में अर्पित करने के ख्याल से अपने नाम को इस जैसी वस्तुओं के साथ जोड़ने की न ही आवश्यकता समझी एवं न ही चेष्टा की।

नेपोलियन, ज़ार, हिटलर अथवा मैसोलीनी की तरह रणजीत सिंह भी चाहता तो वास्तव में एक कामल तानाशाह की तरह अथवा एक निरंकुश मस्त हाथी की तरह अपनी रियासत में चिंघाड़ता करता और मनमानी कर सकता था, लेकिन गुरु महाराज के डर ने उसे नम्र बनाये रखा। जनसाधारण की भावनाओं एवं मंत्रियों की राय का वह कितना सम्मान करता था, यह कई उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है। इस बिन्दु को किंचित स्पष्ट करने के लिये यहां दो उदाहरणों का बर्णन करना उचित लगता है। कहते हैं कि एक बार अपनी प्रेमिका मोरां के साथ महाराजा रणजीत सिंह खुलेआम लाहौर की गलियों एवं बाज़ारों में घूम रहा था। बाद में एक खुली सभा में कुछ अकालियों तथा उनके जत्थेदार अकाली फूला सिंह ने महाराजा के एक रखैल के साथ इस तरह शरेआम घूमने पर निषेधी की टिप्पणी एवं कटु आलोचना की। महराजा को दोषी कहा गया एवं अमृतसर अकाल तख्त पर उपस्थित हो कर हुकमनामा वसूल करने का आदेश दिया गया।हुकमनामें में कोड़ों का दण्ड देने का निर्णय था।एक सच्चे सिख की भान्ति वह पांच प्यारों के आदेश को टाल न सका। स्वयं अमृतसर में एक अपराधी के तौर पर उपस्थित हो कर बिना कोई आपत्ति किये दण्ड स्वीकार कर लिया। सन् 1809 में महाराजा अंग्रेज़ों के साथ संधि करने के पक्ष में अधिक नहीं था। एवं अभी कुछ दुविधा में था, लेकिन जब उसके मुसलमान विदेश मंत्री फकीर अज़ीज़ुद्दीन ने ईमानदारी से अपना मत इस तरह की संधि के पक्ष में प्रस्तुत किया तो महाराजा ने सत्ता के सिद्धान्तों के

अनुसार अपने मंत्री की सलाह को अपनी व्यक्तिगत इच्छा से श्रेयस्कर समझा।

यह सत्य है कि महाराजा स्वयं केन्द्रीय सरकार होने के नाते यह पूरा अधिकार रखता था कि वह किस के साथ विचार-विमर्श करे एवं किस के साथ न करे लेकिन बेहतर हकूमत चलाने के लिए शक्तियों का वितरण आवश्यक हो जाता है। एक मस्तिष्क के स्थान पर कुछ अच्छे मस्तिष्क मिल कर जो कार्य करते हैं वह लाभदायक हुआ करता है। महाराजा रणजीत सिंह ने इस सिद्धान्त को ग्रहण करते हुए अपने सरकारी कार्य संचालन को अपने आज़माये हुए एवं वफ़ादार सरदारों एवं सलाहकारों में विभाजित कर दिया। उसके कतिपय विशेष मंत्रियों के नाम ये थे : डोगरा राजा ध्यान सिंह बतौर प्रधान मंत्री कार्य करता रहा। उस की सहायता उसके भाई गुलाब सिंह तथा सुचेत सिंह करते रहे जो स्वयं भी सशक्त दरबारी थे। ध्यान सिंह के पश्चात् मुसलमान मंत्री फकीर अज़ीज़ुद्दीन शायद सभी से अधिक महत्वपूर्ण सलाहकार था। महाराजा विदेश नीति में उस के बिना कदम नहीं रखता था। अज़ीज़ुद्दीन का भाई फकीरुद्दीन भी बड़े दीवान भवानी दास एवं दीना नाथ महराजा के विश्वास प्रिय वित्त मंत्री रहे अहलकारों में सम्मिलित था। सभी भण्डारों की चाबियां महाराजा ने उन्हें दे रखी थीं। दीवान मुहकम चन्द, मिश्र दीवान एवं हरी सिंह नलूआ बगैरह महाराजा के विशेष फौजी सलाहकारों का कार्य करते रहे। महाराजा सेनाओं को यूरोपीय ढगों से तैयार करने का कार्य फ्रांसीसी जरनैल रिव्वन बैनतीऊरा, फ्रांसीसी कमाण्डर येलार एवं यूरोपीय जरनैल अबूतबील वगैरह के ज़िम्मे था। लेकिन इन विदेशियों पर पूर्ण निगाह रखी जाती थी। इन विशेष मंत्रियों के सलाहकारों के अतिरिक्त ध्यान सिंह के सुपुत्र हीरा सिंह, देसा सिंह, मजीठा एवं उसके सुपुत्र,लहणा सिंह, चतर सिंह एवं शाम सिंह अटारी दीवान सावन मल्ल एवं जमादार खुशहाल सिंह एवं उसके भतीजे तेज सिंह, इलाही बख्श दीवान मोती राम, दीवाना गंगा राम, मिसर बेली राम, भाई बस्ती राम एवं उनके सुपुत्र भाई गोबिन्द राम एवं भाई राम सिंह इत्यादि के नाम गिने चुने अहलकारों में लिये जा सकते हैं। इन सभी के ज़िम्मे विशेष कर्त्तव्य थे। रणजीत सिंह स्वयं कोई अनजान नहीं था न ही वह केवल हवा में तीर छोड़ता था। प्रत्येक कार्य में वह स्वयं रुचि रखता था। वह प्रत्येक स्थिति के विवरण से अवगत था। उसे धोखा देना आसान नहीं था। उसका प्रभाव व्यापक था। अतः प्रत्येक निर्णय में उसके अपने व्यक्तित्व का अधिक अंश हुआ करता था।

सन् 1809 में महाराजा रणजीत सिंह के आदेशानुसार दीवान भवानी दास ने केन्द्रीय प्रशासन को विभिन्न भागों में बांट दिया। केन्द्रीय सरकार के कुछ महत्वपूर्ण विभाग इस प्रकार बांटे हुए थे, कार्यालय अबवाब, राजस्व, तोज़ीरात कार्यालय, मुवाजिब कार्यालय तथा रोज़नामचा खर्चा कार्यालय अबवाब राजस्व में समस्त राज की आय एवं आय के विभिन्न राज-महलों तथा दरबार आदि के व्यय का सारा लेखा रखा जाता था। जुमरों का लेखा रखा जाता था। कार्यालय तोज़ीरात में शाही तोशाखाना एवं ज़नाना महल बगैरह की सारी क्रय विक्रय एवं खर्चों का बही-खाता यह विभाग रखता था। महकमा मवाजिब के पास सेना, सरकारी कर्मचारियों एवं कार्यालयों आदि के व्ययों का लेखा रहता था। दैनिक खर्च का हिसाब-किताब महकमा रोज़नामचा खर्च मुलाज़मों के पास रहता था एवं बाकायदा रजिस्टर में दर्ज किया जाता था। इसी तयह व्यावहारिक रूप में महाराजा के राज्य प्रशासन के व्यय पर पूर्ण यियंत्रण करने का साधन कायम था।

प्रशासनिक सुविधाओं के लिए रणजीत सिंह ने अपनी रियासत को चार प्रान्तों में विभाजित किया हुआ था। सूबा लाहौर, सूबा काश्मीर जनत-नज़ीर सूबा मुलतान चार उल-अमन एवं सूबा पेशावर। महाराजा के विशेष निर्भर योग्य व्यक्ति ही इन प्रान्तों के प्रबन्ध के लिए नाज़िम बना कर भेजे जाते थे। जब मुलतान को काफी परिश्रम के बाद जीत लिया गया तो वहां के लोगों में विश्वास कायम करने के लिए रणजीत सिंह ने अपने सर्वाधिक योग्य कर्मचारी सुखदयाल क्षत्री को वहां भेजा एवं उसके पश्चात् दीवान सावन मल्ल को। सावन मल्ल के सुप्रशासन के कारण यहां इतनी अमन शान्ति स्थापित हुई कि लोग मुलतान को दार-उल-अमन अर्थात् शान्ति का घर कहने लग पड़े। खुद अंग्रेज़ों ने भी दीवान सावन मल के अनुपम प्रशासन की बहुत सराहना की है। "चहार बाग़ पंजाब में गणेश दास बडहेरा ने तो दीवान सावन मल्ल के कसीदे गाने में कोई कमी ही नहीं छोड़ी। काश्मीर को राज्य में सम्मिलित कर लेने के पश्चात् दीवान मोहकम चन्द के सुपुत्र मोती राम को वहीं का प्रशासक बना दिया गया। पेशावर की जीत के पश्चात् हरी सिंह नलूआ को यहां का शासक बना दिया गया। महाराजा इन सभी प्रान्तों के प्रबन्ध पर स्वयं भी दृष्टि रखता था। महाराजा को लाहौर एवं मुलतान के प्रशासकों के संबन्ध में तो अच्छी खबरें मिलती रहीं, लेकिन जब काश्मीर एवं पेशावर के संबन्ध में उन्हें

कुछ शिकायतें पहुंचीं तो उसने उसके वहां के शासकों के कान अच्छी तरह खींचे।

लाहौर दरबार अथवा रणजीत सिंह की आज़ाद रियासत की राजधानी लाहौर शहर होने के कारण यहां के राज्य प्रशासन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता रहा। इस शहर को कई मुहल्लों में विभाजित किया गया था। वही अपने मुहल्ले में शान्ति स्थापित करने के लिए ज़िम्मेदार होता था। उस की सहायता के लिए पुलिस कोतवाल हर समय तैयार रहता था। रणजीत सिंह के समय लाहौर की पुलिस का पुलिस कोतवाल हमेशा मुसलमान ही होता रहा। इससे भी यह सिद्ध होता है कि रणजीत सिंह सिखी के सिद्धान्त पर कायम रहते हुए मज़हब के नाम पर किसी के साथ भी अत्याचार नहीं करता था। रणजीत सिंह के समय लाहौर का एक कोतवाल अमामबख्श तो विशेषतया प्रसिद्ध हुआ। उसे लोग मज़ाक एवं प्यार से "खर सवार" कहते थे। क्योंकि उसकी छोटी सी घोड़ी थी जिस पर बैठ कर वह शहर की गश्त को निकलता था, बिल्कुल गधे जैसी लगती थी। लाहौर में क्योंकि मुसलमान काफ़ी रहते थे इसलिए महाराजा रणजीत सिंह ने उनके लिए मुस्लिम कानून के मुताबिक फैसलों के लिए मुसलमान काज़ी भी नियत किया हुआ था।

यह सत्य है कि स्थिति एवं ज़माने के मुताबिक उस समय न तो अधिक हस्तशिल्प ही आय का कोई विशेष साधन था और न ही कोई और साधन धन इकत्र करने के लिए मौजूद थे। राज्य प्रशासन एवं युद्धों के लिए सेना तैयार रखने के हेतु धन की विशेष आवश्यकता थी। रणजीत सिंह के समय भू-राजस्व ही आय का सर्वोपरि कुछ आंकड़ों के अनुसार साधन था। रणजीत सिंह की आय लगभग 2,50,00,000 रुपये वार्षिक होती थी। इस में से 1,75,00,000 रुपये तो भूमि के राजस्व से ही आ जाते थे।

न्याय

न्याय-विधि को रणजीत सिंह ने प्रायः पूर्ववत् ही स्थिर किये रखा। जुर्माने और नज़राने लिए जाते रहे। सरकारी अदालतें इस तरह सरकारी आय में वृद्धि का भी साधन बन गई, लेकिन यह बात प्रशंसनीय है कि रणजीत सिंह न्याय के मामले में कोई रियायत नहीं करता था। लोग परिहासवश आज भी यही कहते हैं कि रणजीत सिंह हर एक को सचमच एक आंख से ही देखता था। अदालतें कई किस्मों की थीं। पंचायतों के

अतिरिक्त नाज़िम एवं कारदार भी अदालतों पर अपीलों के फैसले करने के लिए ज़िम्मेदार थे। सब से ऊपर लाहौर में अदालते-ए-आला थी जो अपीलें भी सुनती थी एवं कई बार अपने आप भी मुकद्दमों का फैसला करती थी। लाहौर की अदालत-ए-आला के अतिरिक्त अमृतसर, पेशावर एवं मुलतान वगैरह में प्रान्तीय अदालतें भी थीं। जागीरदारी क्षेत्रों में यह कार्य जागीरदारों के अपने ज़िम्मे ही था। क्षेत्र के रीति-रिवाजों का इन्साफ करते समय विशेष ध्यान रखा जाता था। फौजदारी अदालतों में दी गई सज़ा को कई बार जुर्माने देकर मुआफ कराया जा सकता था। उस ज़माने की स्थिति को देखते हुए शायद यह ढंग अच्छा था चाहे आज कल के विचारों के अनुसार रणजीत सिंह का न्याय प्रशासन अधिक अच्छा भी प्रतीत होता हो।

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में अग्नि-शस्त्र

डा. फौजा सिंह

अग्नि-शस्त्र एवं गोला-बारूद बनाने की कला सब से प्रथम मुगलवंश के प्रवर्तक बाबर द्वारा भारत में प्रफुल्लित हुई। वह मध्य एशिया में से अपने साथ तोपें बनाने वाले एवं उनका प्रबन्ध एवं मुरम्मत करने वाले बहुत से तकनीकी व्यक्ति लेकर आये जो भारतीय युद्धों में उसके काम आने वाले थे। उस्ताद कुली खान के योग्य निर्देशन में आगरा स्थित तोप-निर्माण की स्थापना करके बाबर ने भारत में तोप-निर्माण की नींव रखी। दुर्भाग्यवश उसके बाद के मुगल शासक इस कला को आगे न बढ़ा सके। परिणामस्वरूप मुगलों की तोपें व्यर्थ होने लगीं। इसके अतिरिक्त मुगल शासक विदेशी प्रबन्ध एवं निपुण व्यक्तियों पर निर्भर थे। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में उनके यूरोपीय विरोधियों के बढ़िया शस्त्रों के समक्ष उन्हें अपने शस्त्रों की कमज़ोरियों का पता न चला एवं न ही भारतीय राजाओं को अपनी तोपों का विकास एवं उनकी मुरम्मत करने के लिए
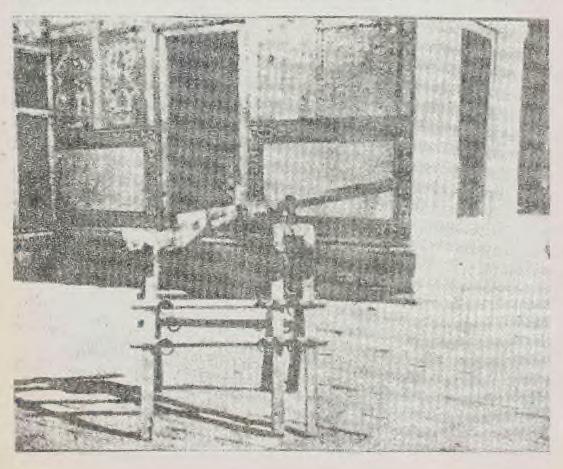
तुरन्त सहायता ही मिली। टीपू एवं महाराज सिंधिया जैसे राजाओं ने कुछ अनुभव करने की कोशिश तो की ताकि वह अपने कुछ रजीमैंटों के तोपखाने एवं शस्त्र सेना को यूरोपीय सैनिकों की युद्ध-नीति के ढंगों के अनुसार शिक्षा दें एवं अनुशासबद्ध किया जा सके। लेकिन कुछ सीमा तक सफल होने के पश्चात् अंत में ये अनुभव असफल रहे क्योंकि अपने शस्त्रों के विकास एवं निर्माण की तकनीक की ओर पूरा ध्यान न देने के कारण हुई असफलता के कारण वे आत्म-निर्भरता एवं आत्म-विश्वास प्राप्त न कर सके।

लगभग आधी शताब्दी के पश्चात् उन अनुभवों की असफलता के कारणों को रणजीत सिंह ने देखा। उसने अनुभव किया कि जब तक भारतीयों के पास आवश्यक शस्त्र-निर्माण एवं विकसित शस्त्र नहीं होंगे तब तक बर्तानिया जैसी संगठित अंग्रेज़ी मशीनरी की चुनौती का सामना नहीं किया जा सकता। उस समय से उन्होंने विकसित ढंग की वर्कशाप की स्थापना एवं महान शस्त्रों की आत्म-निर्भरता के प्रश्न को प्राथमिकता दी। उन्होंने न केवल देश में उपलब्ध प्रत्येक प्रकार की तकनीकी निपुणता का उपयोग किया बल्कि विदेश से आये निपुण एवं योग्य बर्तानवी कारीगरों द्वारा भी सेना के विभिन्न विभागों जैसे कि प्रशासकीय एवं संगठनात्मक मामलों में तकनीक को विकसित करने का प्रयास भी किया एवं अपने व्यक्तियों को छात्रवृत्ति देकर लुधियाना में बर्तानवी ढंग की शिक्षा के लिए
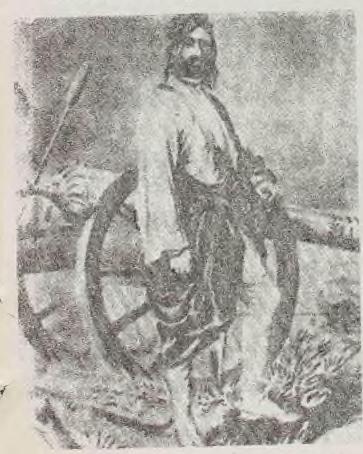
भेजा। इसी लिए उसने गार्डनर, अबुतबील एवं होनिंगबर्गर जैसे विदेशी योग्य व्यक्तियों को अपने राज्य में भर्ती किया। यह वर्णनीय है कि लगभग प्रत्येक प्रकार के शस्त्र एवं गोला-बारूद जो रणजीत सिंह की सेना के लिए आवश्यक थे उनकी मुरम्मत एवं निर्माण अपनी ही राजधानी की वर्कशापों, कार्य-केन्द्रों एवं असला फैक्टरियों में किया जाता था। इस संबंध में रणजीत सिंह के प्रयत्नों की सफलता की जानकारी इस सच्चाई से मिल सकती है कि ऐंग्लो-सिख युद्धों के समय बर्तानवी सेनापति लार्ड गफ़ द्वारा सिखों की तोपों को बर्तानवी शस्त्रों के बराबर राजकीय सम्मान दिया गया। सिखों द्वारा दूर तक मार करने वाली तोपों का निर्माण संभव नहीं था, लेकिन ऐसा उच्च स्तरीय विकसित तकनीक से संभव हो गया।

निम्नलिखित कुछ तथ्यों से पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के राज्यकाल में अग्नयास्त्रों एवं गोला-बारूद के निर्माण का पता चलता है :

शोरा

हम शोरे के उत्पादन से आरम्भ कर सकते हैं। यह तोप का गोला बनाने के पाउडर का विशेष भाग होता था जो पंजाब के एक बड़े हिस्से में तैयार किया जाता था। यह कल्लर वाली भूमि में से निकाला जाता था। इस को तैयार करने के दो मुख्य ढंग थे। पहला ढंग इतना प्रचलित नहीं था। इस ढंग का प्रयोग सिंध-जेहलम क्षेत्र में होता था। यहां एक तंग लम्बी खाई बनाई गई थी इसे घास से ढक दिया जाता था। इस पर कल्लर वाली भूमि से लाये गये ढेले आदि बिछा दिये जाते थे। उस पर पानी छिड़क दिया जाता था जो घास आदि में से होकर तंग खाई में बह जाता था। उस घोल में नमक आदि मिले होते थे। गाढ़े भूरे रंग का घोल खाई में एकत्रित हो जाता था जिस को खाई में से लोहे के एक बड़े बर्तन में इकट्ठा करके उसे उबाल कर ठण्डा कर लिया जाता था तो इसके क्रिस्टल बन जाते थे। इन क्रिस्टलों को शोरा कहा जाता था। दूसरा ढंग आसान ही था। कल्लर वाली मिट्टी को बर्तनों में डाल दिया जाता था जिस में पानी भी डाला जाता था। वह एक पेस्ट का रूप धारण कर लेता था। बर्तन के नीचे एक छोटा सा छिद्र कर दिया जाता था जो एक और बर्तन पर रख दिया जाता था। यह दूसरा बर्तन ज़मीन में गाड़ दिया जाता था, ऊपरी बर्तन में से क्रिस्टल छन कर नीचे वाले बर्तन में आते थे। छने हुए पदार्थ को आंच पर रख दिया जाता था।

शोरा हल्का होने के कारण घोल की ऊपरी तह पर क्रिस्टल के रूप में आ जाता था। इसे शेष पदार्थ में से पृथक कर दिया जाता था।

गन-पाउडर

गन-पाउडर का निर्माण लगभग संपूर्ण पंजाब में होता था एवं सरकार द्वारा नाज़िमों एवं कारदारों आदि को इस की मांग का आदेश देकर तनख्वाह के रूप में इस का उत्पादन करवाया जाता था। इस को साल्टपीटर, सल्फर एवं तारकोल के विशेष प्रकार के चूर्ण में आवश्यक मात्रा में मिला कर तैयार किया जाता था। उपयोगी मिश्रण 5 सेर सल्फर एवं 10 सेर तारकोल को मिलाकर बनाया जाता था। मिश्रण के इन पदार्थों को संयुक्त रूप में लकड़ी मोटर (चट्ठ) में डाल कर मिला लिया जाता था एवं इस मिश्रित पदार्थ को धूप में सूखा लिया जाता था। तदोपरांत इसे चक्की में पीस कर छाज में डालकर हिलाया जाता था, जब तक कि यह दानेदार रूप ग्रहण कर ले, लेकिन इस तरह तैयार किया गया गन-पाउडर इतना बढ़िया नहीं होता था, क्योंकि वह विभिन्न लोगों द्वारा तैयार किया होता था। जब से रणजीत सिंह लाहौर में स्थापित हुआ तो डॉ० होनिंगबनर्गर की सहायता से उसने यूरोपीय ढंग की एक गन पाउडर बनाने वाली पावन मिल तैयार की। देसी गन पाउडर का मूल्य उस समय औसतन 8 रुपये मन होता था। पुराने गन पाउडर को सुधारने का मूल्य 3 रुपये मन होता था।

तोप के गोले

तोप के गोले बनाने के दो ढंग प्रचलित थे (1) बीटिंग (2) कास्टिंग। बीटिंग ढंग के लिए सस्ती मजदूरी की आवश्यकता होती थी। इस ढंग के उत्पादन के लिए राऊँड शाट एक अच्छा उदाहरण है जबकि शैल्ल (गोला शेल्ल) एक अच्छा उदाहरण था। सबसे पहले सिखों ने ज़िंक एवं लोहे के शेल्स तैयार किये, लेकिन बाद में उन्होंने कास्टिंग तकनीक का विकास किया। बेड़ल पोवैल ने सिखों द्वारा बनाये गये होविटज़र (एक प्रकार की तोप) के सैल्स कास्ट करने के दो तरीकों का वर्णन किया है। पहला यह कि साँचे में कास्टिंग करने से इस का केन्द्र ठोस बन जाता था। इस पर लाख की पर्त चढ़ा दी जाती थी जो मिट्टी की पर्त से मिली होती थी।

लाख पिघल जाती थी तो इस के घोल को पिघाली धातु के घोल से भर दिया जाता था। दूसरे तरीके में एक लोहे का साँचा जो दो भागों में खुलता था, का प्रयोग किया जाता था जिस के दोनों भागों में तेल एवं रेत से आधा-आधा भर दिया जाता था। आवश्यकता के आकार का लकड़ी का एक गोला उस में रखा जाता था जिससे दोनों ओर से दबाने पर उस में लकड़ी के गोले जितना खोल बन जाये। शेष के खोल को धातु से भर दिया जाता था। इस सेल के मुंह को एक बत्ती लगाकर लकड़ी के एक बक्से के साथ जोड़ दिया जाता था जिस से उसके साथ पाउडर का पेस्ट एवं स्पिरिट लग जाती थी जो खोल में जाती थी।

मोटर शैल्ल बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के ढंगों का प्रयोग किया जाता था। मिट्टी की एक छोटी गोली पर बहुत ही सावधानी से तार लपेट कर लोहे की सीखों जिन्हें कन्नज कहते थे तैयार की जाती थी। इस पर लाख की पर्त चढ़ाई जाती थी जिसे मिट्टी की पर्त से ढक दिया जाता था। इसके पश्चात् लाख को पिघला कर पिघली हुई लाख डाल दी जाती थी। जब इस तरह का शैल्ल केस तैयार हो जाता था तो बीच वाली मिट्टी की गोली को तोड़ दिया जाता था तो उसके टुकड़े खोल में से निकाल दिये जाते थे। वह एक खतरनाक प्रकार का शैल्ल बन जाता था।

अग्नि-शस्त्र तोपें

तांबे एवं लोहे की तोपें बनाने का प्रचलन था। इस विषय पर अध्ययन करने वाले लेखक को तोपें बनाने के दो ढंगों का पता चला। पहले मेजर पी लारेंस ने पेशावर में देखा जिस को साधारण लेकिन प्रभावहीन बताया गया। सबसे पहले एक गोल लाठी एवं खंभे पर गारे से तोप का मॉडल बना लिया जाता था। इस मॉडल को सुन्दर ढंग से आवश्यकता अनुसार गोल तराश लिया जाता था। इस गारे के मिश्रण को लगभग आधा फुट मोटा बना लिया जाता था और इस को सुखा लिया जाता था। इस के बीच वाली लाठी एवं खम्भे को निकाल लिया जाता था जिससे सांचे के अन्दर से मिट्टी के टुकड़ों को निकाला जा सके। इस के पश्चात् इस सांचे को आंच पर पका लिया जाता था एवं इसके अन्दर धातु भर दी जाती थी और इस धातु के केन्द्र में बोर बनाने के लिए लोहे का एक सरिया लगाया जाता था। इस तरह तोप प्रयोग के लिये तैयार होती थी। दूसरा ढंग जिस को लाख ढंग भी कहा जाता था, प्रचलित था। यह ढंग लाहौर एवं अमृतसर में लोकप्रिय था। सब से

पहले ऐसी काली मिट्टी का माडल बना लिया जाता था जिस में पहले से ही पानी, गन्ने का छिलका, बतख के अण्डे, थोड़ी सी शक्कर एवं हड्डियों की राख आदि मिला कर मिश्रण पदार्थ बना लिया जाता था। इसके पश्चात् लोहे की छड़ जो बोर की लम्बाई-मोटाई आदि के बराबर होती थी, को लेकर उपर्युक्त पदार्थ केन्द्र में लगा दी जाती थी जिस के दोनों सिरे खुले रहते थे जिससे इस को खराद पर निश्चित स्थान पर रखा जा सके। इस मिट्टी की पर्त की मोटाई तोप के बोर की मोटाई पर आधारित होती थी। इसके पश्चात् सुखाने के लिए एक लकड़ी के स्टैंड पर रख लिया जाता था। अब इसके ऊपर चाक मिट्टी की पर्त चढ़ा दी जाती थी एवं इसको खराद पर तराश कर संशोधित कर लिया जाता था। इसके पश्चात् इस पर मोम का इतना लेप किया जाता था जितना तोप का बोर बनाने के लिए आवश्यक होता था। फिर तोप के ऊपर सुन्दर नक्काशी की जाती थी। इस के पश्चात् लोहे के डण्डे को एक ओर से काट दिया जाता था। इस स्थिति में उस को खराद से उतार लिया जाता था एवं लाख से तोप के पिछले हिस्से का सांचा बनाया जाता था और उसको मिट्टी के मिश्रण एवं घास पात से ढक दिया जाता था एवं बाद में काट दिया जाता था जिसको लोहा मिट्टी कहा जाता था। जब इसको सुखा लिया जाता तो उस पर मिट्टी एवं चावल के छिलके आदि के मिश्रण की पर्त चढ़ा दी जाती थी। इसके पश्चात् मिट्टी की दोनों पर्तें मोटी कर दी जाती थीं, क्योंकि इस पर पिघली हुई धातु भरी जानी होती थी। जब यह सभी कुछ सुखा लिया जाता था तो लाख को एक तरफ से गर्म किया जाता था एवं उसे निकाल लिया जाता था। फिर सांचे को खड़ा करके रखा जाता था और सावधानी से इस में पिघली हुई धातु डाली जाती थी। अब सांचे को ठण्डा होने दिया जाता था। बाहर की मिट्टी की पर्त हटा कर उसको तराश लिया जाता था एवं अन्दर से सुराख को साफ कर लिया जाता था। इस के पश्चात् तोप की सफाई एवं इसे चमकदार बनाने के लिए भेज दिया जाता था एवं कारीगरों के पास रंग आदि करने के लिए एवं उपयोग हेतु तैयार करने के वास्ते भेज दिया जाता था। अब इस पर पहिये लगाये जाते थे और उस को तख्त-ए-तोप का नाम दिया जाता था। इस कार्य के लिए सिख शीशम की लकड़ी का उपयोग करते थे जो लाहौर के शीशम के जंगलों में काफी मात्रा में उपलब्ध थी, परन्तु पहिओं के लिए वे कीकर की लकड़ी को प्राथमिकता देते थे, क्योंकि कीकर की लकड़ी सख्त होती है। सुन्दरता बढ़ाने के लिए तोप गाड़ियों को विभिन्न रंग किये जाते थे।

जब तोप तैयार हो जाती तो उसके उद्घाटन के लिए समारोह किया जाता था, जिसको न्याज़ कहते थे जिसमें पीरों एवं देवताओं को दान दिया जाता था। इस खुशी के मौके पर मिठाईयां बांटी जाती थीं एवं तोप का उचित रूप से नामकरण किया जाता था। धातु के भार एवं उस पर आये व्यय मजदूरी आदि के आधार पर तोप का मूल्यांकन किया जाता था।

बंदूक

बंदूकों के लिए शीशम की लकड़ी का प्रयोग होता था जो साधारणतः बीच से तंग होती थी। बैरल एवं लाक साधारणतया लोहे के बने होते थे। इसके लिये प्रयोग में लाये जाने वाला लोहा मण्डी एवं बजौर से लाया जाता था। यद्यपि कई बार लोहा काश्मीर एवं अन्य स्थानों से भी मंगवाया जाता था।बादने पावेल के अनुसार बैरल बनाने के तीन मुख्य तरीके होते थे। (लोहे की चादर को मोड़ कर गोल लाठी की तरह बना लिया जाता था एवं उसके दोनों किनारे आपस में मिला लिये जाते थे। इस प्रकार से तैयार की गई बन्दूक को पटा-बन्दूक कहा जाता था। यह ढंग सब से साधारण था। इस ढंग से तैयार की गई बन्दूक अच्छी चलती थी, लेकिन थोड़ी दूर तक मार करती थी। (2) लोहे की नाली को काट कर बनाई जाती थी। इस ढंग से बनाई गई बन्दूक को "चूड़ीदार" बन्दूक कहा जाता था (3) वैल्डिंग द्वारा समाइलर्ज को साफ्ट से लम्बी और वैल्डिंग करके एवं पीट कर बनाई जाती थी, जिसे पहले चिकनी मिट्टी लगा कर गर्म किया जाता था। इस को जौहर अथवा बेल बूटेदार कहा जाता था। कैप्टन ऐबोट ने दो तरह के जौहर का वर्णन किया है। एक सीधा "जौहर" एवं दूसरा घुमावदार जौहर। जौहर का अर्थ था बैरल के अन्दर की लोहे की चक्करदार पर्त लगाना जिस से बैरल में से निकलने वाली गोली की गति तीव्र होती थी। दूसरी ओर बैरल के अन्दर की ओर सोलह अथवा अठारह चक्करों को वैल्डिंग कर के जोड़ा जाता था। मर्क्रोफ्ट काश्मीर में 1820 में तैयार किये मैच लॉक के संबंध में लिखते हुए चैन-जौहर एवं पार्शियन जौहर में निम्नलिखित अन्तर बताता है : जौहर एवं पार्शियन जौहर में मुख्य अन्तर यह है कि ज़ंजीर वाली जौहर में स्पष्ट दिखाई देने वाली धारियां होती थी, जो सीधी रेखाओं वाले जौहर से मिलती जुलती थीं। अंत में बैरल के खोल के दोनों ओर अंकित होती थीं एवं तिरछी ढंग से बनी होती थीं। परन्तु पार्शियन डामासिटक के दोनों ओर से अंकित होती थीं। बंदूक के घोड़े के

ऊपर वाले हिस्से एवं पत्तियों की कटाई एव नाली के अन्दर के घुमाव की कटाई दोनों तरह की बन्दूकों में एक तरह की होती थी हालांकि इन दोनों बंदूकों को चलाने में काफी अन्तर था। सभी प्रकार की बंदूकों में चैन डामास्कि प्रचलित थी।जौहर के निर्माण के लिए निम्नांकित ढंग अपनाये गये थे : (1) बैरल को चिकनी मिट्टी अथवा गीली मिट्टी से पोच दिया जाता था एवं उसके पश्चात् आंच पर तपा कर पीटा जाता था। (2) पानी एवं लोहे के सल्फेट का मिश्रण तैयार किया जाता था एवं बैरल को सूखी राख एवं साफ कपड़े से रगड़ा जाता था और इस पर यह मिश्रण लेपा जाता था। इस समय यह ध्यान रखा जाता था कि बैरल के अन्दर का भाग इस से प्रभावित न हो। 24 घण्टे के पश्चात् इस मिश्रण को सूखी राख से रगड़-2 कर उतार लिया जाता था। यही क्रिया 20 अथवा 30 दिन तक दोहराई जाती थी (3) दूसरा तरीका था, धातु पर लाख का लेप करके जौहर तैयार करने का (4) बोर को ध्यान से साफ करके बैरल को गंधक के तेज़ाब के पानी से भरे पीतल के सिलैण्डर पर खड़ा कर दिया जाता था। सिलैण्डर को हल्की आंच पर रख कर गर्म किया जाता था एवं दो दिन पश्चात् जौहर की लकीरें उभर जाती थीं।

बैरल के बोर बनाना

जब बैरल तैयार हो जाता तो एक विशेष "सिलाई" साफ निजाक से बारी-बारी इस के बोर को घिसाया जाता था।जब तक उस को घिसा कर पालिश नहीं किया जाता था, तब तक वह कार्य अधूरा रहता था। कैप्टन एबोट इस ढंग को अधूरा बताते हुए लिखता है – बंदूकों के निर्माण में यह एक बहुत बड़ी कमी थी कि उसके अतिरिक्त भाग की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता था। बंदूकें बनाने वाले अकुशल कारीगर इस बात का ध्यान नहीं रखते थे कि बैरल की पिछली छोर में छोड़ी गई कमी बन्दूक लोड करते समय लोड करने वाले का जीवन भी ले सकती है। बोर का अनुचित सिलैण्डर एवं कभी कभी कपड़े अथवा चमड़े में लपेट कर रखी गोलियां सरलता से एवं सही निशाने पर लगेंगी, यह निश्चित नहीं था।

बैरल को चिकना करने की क्रिया बोरिंग करके की जाती थी, परन्तु यह ढंग प्रत्येक बंदूक पर लागू नहीं होता था। चिकनी बैरल वाली बन्दूक को सादा कहा जाता था एवं रैफ़ल बोर को रख-दार कहा जाता था। कैप्टन एबोट के अनुसार राईफलिंग ढंग आदि विकसित नहीं था क्योंकि सिख

खराद और राईफलिंग के अंग्रेज़ी ढंग से परिचित नहीं थे। राईफलिंग के दो ढंग परिचित थे। पहले में स्क्वायर-बीट्स द्वारा राईफलिंग की जाती थी, जिस में पीछे की ओर छेद करके लकड़ी का लीवर लगाया जाता था। बैरल को ऊपर रख के उसको लोड करने वाला व्यक्ति अपना पूरा भार डालता एवं एक झटके से उसको लोड करना पड़ता था। दूसरा ढंग अच्छा था जिस का वर्णन बदेल-पवैल ने किया है। इस में बैरल की "रखबुर" नामक एक विशेष औज़ार के खराद के ब्रिफटलैंथ पर सावधानी से लगाकर उसको घुमाया जाता था। बैरल में साधारणतया चार अथवा इस से अधिक किये जाते थे, एक समय में केवल दो बोर किये जाते थे।दो और बैर करने के लिए बैरल की दिशा बदल दी जाती थी।

मैच लाक लगभग व्यापक रूप से ओवोफार्म चैम्बर द्वारा बनाये जाते थे, जो बाज़ार के कमज़ोर गन-पाउडर के प्रयोग करने से हानि रहित होते थे। परन्तु जब अंग्रेज़ी गन-पाउडर का प्रयोग किया जाता तो खतरनाक होते थे। परन्तु यह सस्ता पड़ता था। चैम्बर की बनावट के अनुसार बैरल को बीचों बीच बड़ा बनाया जाता था।

लम्बे बैरल के आम तौर पर दो भाग बनाये जाते थे जिन्हें आपस में परस्पर वैल्डिंग द्वारा जोड़ दिया जाता था। यह वैल्डिंग दिखाई नहीं पड़ती थी।

एक अच्छी कोटली बैरल (बिना सजावट) लगभग 15 रुपए की होती थी परन्तु प्रिंसीपल सीता राम कोहली के खालसा दरबार के असली रिकार्ड के आधार पर लिये गये आंकड़ों के अनुसार विभिन्न तरह की बंदूकें होती थीं जिन की कीमत 11 रुपये से20 रुपये तक होती थी। बैनट जड़ी राईफल का मूल्य 16 रुपए होता था।

निष्कर्ष

पंजाब में सिख शासन काल के दौरान अग्नयास्त्र बनाने की कला का अध्ययन विशेषज्ञों द्वारा अभी तक पूरी तरह वर्णित नहीं है, परन्तु इस के अधूरे आकार में इस कला के चरित्र एवं संभावना की झलक मिलती है, जो देश में विस्तृत रूप से व्याप्त थी एवं जिस का संबंध अन्य विकसित कलाओं के साथ भी था एवं जो तत्कालीन आधिकता पर आधारित थी।

महाराजा ने इस कला को विकसित करने के सारे यत्न किये परन्तु तत्कालीन उपलब्ध तकनीकी शिक्षा ने इस संबंध में रुकावटें डालीं जिस के समक्ष वह असमर्थ रहा, फलतः शस्त्र बनाने की इस कला में कमियां रह गईं।

महाराजा रणजीत सिंह की सिख कला को देन

— प्रि: प्रकाश सिंह

भारत में अंग्रेज़ों के आने से पहले हमारे देश पर जितने आक्रमण हुए, वे पश्चिम की ओर से ही हुए। इन आक्रमणों का सर्वाधिक प्रभाव पंजाब पर ही पड़ता रहा। सरहद के नज़दीक होने के कारण इन आक्रमणों के सब से अधिक घाव पंजाबियों को ही सहन करने पड़े। पंजाब में काफी समय तक लगातार अशान्ति रही। इस लिए अधिक समय तक यहां कलाएं इतनी प्रफुल्लित न हो सकीं जितनी कि देश के अन्य हिस्सों में हुईं, क्योंकि कला का निकास और विकास शान्ति एवं व्यवस्था के वातावरण में ही होता है। वैसे तो प्रत्येक कार्य एवं प्रत्येक व्यवसाय की उन्नति तभी हो सकती है जब देश में अमन चैन हो, लेकिन कोमल कला एवं सूक्ष्म कला प्रफुल्लित होने के लिए तो यह बहुत आवश्यक है कि लोग सुख-चैन में विचरते हुए समृद्धिशाली हों।

पंजाब में सिखों ने जब शक्ति अर्जित कर ली तो पश्चिम की ओर से आक्रमण बन्द हो गये। पंजाबियों को तब अमन एवं सुख-चैन की सांस आने लगी।जब यहां ''भूरियां वाले राजे'' होने लगे। बिखरी हुई शक्ति एक जगह एकत्र होने लगी एवं विभिन्न मिसलों ने महाराजा रणजीत सिंह की सरकार स्वीकार करनी आरम्भ कर दी।

महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब में एक सम्मिलित राज्य स्थापित किया। हिन्दुओं, मुसलमानों एवं सिखों में मेल-मिलाप बढ़ने लगा। एक दूसरे का भय कम होकर आपस में विश्वास बढ़ने लगा। खुशहाली की ओर अग्रसर होने लगे।

पंजाब में विभिन्न कलाओं की उन्नति

इस में कोई संदेह नहीं कि मुगल राज्य के समय मुसव्वरी भाव चित्र-कला एवं वास्तुकला भाव मन्दिर-कला ने बहुत उन्नति की। उस का

कुछ असर पंजाब पर भी पड़ा। लेकिन मुगल राज्य के अंत में यह कला घटने लगी। औरंगज़ेब के समय तो सूक्ष्म कलाएं काफी कम हो गई थीं।

अठाहरवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसबीं शताब्दी के आरम्भ तक मुगल, कांगड़ा और राजपूताना कला की परम्पराओं का विकास प्रायः बन्द ही हो गया। लेकिन पंजाब में इस समय कला की एक नई परम्परा चल पड़ी। कला की एक नई रूपरेखा उभरने लगी, जिसे सिख-कला कहा जाता है। इस कला का केन्द्र अमृतसर बना। यहां दरबार साहिब की छत्रछाया के अधीन यह नई कला पनपने लगी।

डब्ल्यू. जी. आरचर के अनुसार सिख-स्कूलकी चित्र-कला की तीन प्रमुख शाखाएं हैं।गुलैर चित्र, कांगड़ा चित्र एवं लाहौर चित्र। गुलेर के कलाकार जो पहले राजपूत विषयों पर कार्य करते थे, बाद में सिख विषयों संबंधी प्रयोग करने लगे। 1813 में गुलेर का क्षेत्र महाराजा रणजीत सिंह की सल्तनत का भाग बन गया। इस लिये वहां की कला एवं सिख विषयों का परस्पर मेल होने लगा। वहां के कुछ चित्रकारों ने सिखों के गुरु साहिबों

के अथवा निल सरदारों के कुछ चित्र बनाये। ऐसे ही महाराजा रणजीत सिंह के लड़के राजा शेर सिंह ने जब कांगड़े की देख-रेख अपने हाथ में ली तो वहां के चित्रकारों ने सिख राजाओं एवं सरदारों के चित्र बनाये। उन्होंने कुछ सिख राजाओं के रोमांच को भी चित्रित किया। लाहौर महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी थी। यहां के चित्रकारों ने महाराजा के एवं उनके दरबारियों के चित्र बनाये।

इन तीनों शाखाओं के निरूपण के ढंग विभिन्न हैं यद्यपि विषयों की कई स्थानों पर समानता दिखाई देती है।

सिख परम्परा की चित्रकारी के कई चित्र मिलते हैं। इन में से उपर्युक्त राजाओं एवं सरदारों की तस्वीरों के अतिरिक्त कई अन्य चित्र भी हैं। विभिन्न स्थानों पर सैंकड़ों ही सचित्र प्रारूप उपलब्ध होते हैं जिस में अनेकों ही ऐसे चित्र हैं जो कि सिख-कला के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कई ऐसी जन्म साखियों के प्रारूप हैं जिन में गुरु नानक देव जी के जीवन की चित्रित कथाएं हैं। अन्य भी कई धार्मिक एवं ऐतिहासिक लेख हैं जिनमें गुरु साहिबों के चित्र हैं। कई बहुत ही छोटे छोटे चित्र भी हैं
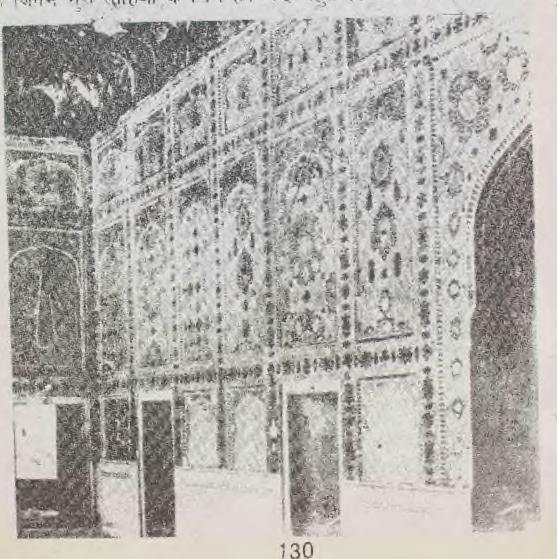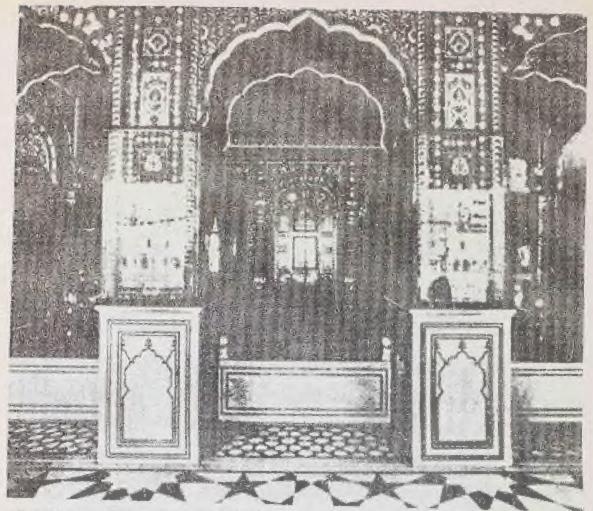
जिनमें अलग अथवा पाण्डुलिपियों में सुरक्षित हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की कई ऐसी हस्त-लिखित बीड़ें हैं जिनके हाशिए सुन्दर बेल-बूटों से संवारे हुए देखे जा सकते हैं। ऐसे ही कई और हस्त-लिखित मसौदे हैं जिन के हाशिए कई तरह की बेलों एवं नमूनों से सुसज्जित दिखाई देते हैं।

महाराजा रणजीत सिंह द्वारा उत्साहवर्धन

जब महाराजा रणजीत सिंह का पंजाब में राज्य स्थापित हो गया तो यहां कई ओर से उन्नति होने लगी। कला के क्षेत्र में भी अच्छी उन्नति हुई। तीस बत्तीस वर्ष की लगातार कोशिशों के पश्चात् जब सिख राज्य की धूम चारों ओर मचने लगी तो महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में दूर से कई कलाकार आने लग पड़े। न केवल पंजाब अथवा भारत के विभिन्न हिस्सों से बल्कि पश्चिम के कई देशों से भी कई तरह के कलाकार जो विभिन्न कलाओं में कार्य करके प्रसिद्धि चाहते थे, अपना भाग्य आज़माने के लिए लाहौर आ पहुंचे।

ऐसे ही फ्रांस से जैकोमैंट, इटली से ऐबीटेबल, रूस से प्रिंस सोल्टीकाफ भी आये। यहां तक कि अमरीका से भी हार्लन नाम का एक विदेशी लाहौर पहुंचा।

इस के अतिरिक्त और भी कई विदेशी सिख राज्य में पहुंचे जो कि सैनिक कौशल में निपुण थे जिन में से जनरल वैनतूरा का नाम बहुत प्रसिद्ध है जो कि फ्रांस से आया।

दूर पार के देशों से यदि इतने विदेशी लाहौर खिंचे आए तो पंजाब के विभिन्न भागों और भारत के अन्य क्षेत्रों में से कितने कलाकार सिख राज्य में आये होंगे।

अमृतसर कला का केन्द्र बना

बम्बई से छपते अंग्रेज़ी मैगज़ीन मार्ग के जून, 1977 के अंक में डा. मुल्क राज आनन्द ने सत्य ही लिखा है कि "1803 में जब अमृतसर महाराजा रणजीत सिंह की सल्तनत का हिस्सा बन गया तो पंजाब में नये वातावरण से जो तबदीलियां आईं उनके कारण जो उथल-पुथल हो रही थी उस के बीच लाहौर तथा उसके नज़दीक के क्षेत्रों में शान्ति एवं व्यवस्था का माहौल था। इस सुख-शान्ति के वायुमण्डल में पहले सिख महाराजा ने अमृतसर को अपनी आत्मिक अथवा धार्मिक राजधानी बनाया जबकि लाहौर उस की नई बनी सल्तनत की राजनीतिक राजधानी थी।

महाराजा रणजीत सिंह ने यह भी यत्न किया कि अमृतसर को अपने राज्य का व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र बनाया जाए।

अमृतसर के बहु-पक्षीय विकास के लिए महाराजा रणजीत सिंह के उत्साहवर्धन करने से लाहौर के कई बड़े बड़े व्यापारी यहां आ गये। उनकी कई तरह से सहायता की गई। नई इमारतों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता भी दी गई।

इस तरह अमृतसर की कई तरह से उन्नति होने लगी। यहां कई शिवालय, मन्दिर एवं मस्जिदें बनने लगीं। श्री दरबार साहिब तो पहले ही यहां था। शहर की आबादी धीरे धीरे बढ़ती गई। यहां तक कि महाराजा रणजीत सिंह के राज्य के समय अमृतसर की आबादी लाहौर से अधिक हो गई। यहां व्यापार में भी वृद्धि हुई। यहां की शालें, रेशमी कपड़े एवं दन्त कार्य का निर्यात रूस तक होने लगा।

श्री दरबार साहिब की सजावट

महाराजा रणजीत सिंह ने दरबार साहिब की सजावट की ओर विशेष ध्यान दिया। हरिमन्दिर साहिब की जैसे ही नव-निर्माण एवं सजावट होती गई तो इस धर्म-केन्द्र की प्रसिद्धि और भी फैलती गई। लाहौर से आए अनेकों विदेशियों में से कुछेक ने अमृतसर आ कर इस स्थान की शोभा देखी।

हरिन्दर सिंह रूप की लेखनी अनुसार महाराजा ने भाई संत सिंह ज्ञानी को यहां विभिन्न तरह के कार्य करने का हुक्म दिया।यह आज्ञा शेरे-पंजाब ने अमृतसर शहर पर कब्ज़ा करने के पश्चात् शीघ्र ही दी।1803 ई. में उन्होंने पांच लाख रुपए श्री दरबार साहिब के पुन-निर्माण तथा इसे विभिन्न कोमल कलाओं से सजाने के लिए दिये। श्री दरबार साहिब के अतिरिक्त इसके साथ लगते और ऐतिहासिक स्थान जैसे कि श्री अकाल तख्त एवं बाबा अटल राए साहिब के गुरद्वारे भी नए सिरे से बनवाये गये एवं उनकी अन्दर से चित्रकारी, गच्च टुकड़ी के जड़तकारी के कार्यों से संवारा गया।

चन्योट से बुलाए गये मुसलमान कारीगर

महाराजा रणजीत सिंह ने वास्तुकला-प्रवीण कारीगर एवं लकड़ी के कार्य करनेवालेबुद्धिमान एवं अनुभवी मिस्तरी चन्योट से बुलाए। यह कस्बा अब पाकिस्तान स्थित ज़िला गुजरात का हिस्सा है। यहां से जो मिस्तरी अमृतसर आए वे मुसलमान थे। के. सी. आरीयन के अनुसार इन में एक यार मुहम्मद खान मिस्तरी भी था जो कि सोने को पानी एवं बर्क जड़ने के कार्य में बहुत निपुण था।

चन्योट से आए कारीगर शिल्पी एवं उनकी सहायता करने वाले उनके छोटे शिल्पी एवं शिष्य आदि अमृतसर में एक बहुत बड़ी हवेली में रहने लग पड़े। लाहौरी गेट के अन्दर यह एक बहुत खुली हवेली थी। इस का नाम "हवेली चन्योटीआं" से प्रसिद्ध हो गया। यह कूचा तरखाना गली कब्र वाली में था। कूचे के नाम से ही स्पष्ट है कि वहां कई बढ़ई एवं लकड़ी के विभिन्न कार्यों के निपुण मिस्तरी रहते थे। 1947 ई. में देश विभाजन के समय जब दंगे हुए तो यह हवेली आग का शिकार हो गई। इस का काफी हिस्सा जल गया। इस के कुछ चिन्ह अभी भी शेष हैं एवं स्थान "हवेली चन्योटआं" के नाम से ही जानी जाती है।

हरिन्दर सिंह रूप के अनुसार इन बाहर से बुलाए गये शिल्पियों के पास से जब हरिमन्दिर साहिब के अन्दर की सजावट के लिए दीवारों पर नक्काशी का कार्य करवाया गया तो भाई संत सिंह ज्ञानी पूर्णतः संतुष्ट न हुए। उन्होंने देखा कि बाहर से आए कारीगर पुराने ढंगों से तो सम्यक प्रकार से अवगत हैं लेकिन नए रंगों एवं नये ढंगों में वे पूरी तरह कुशल नहीं हैं। कहते हैं कि श्री दरबार साहिब की छत की सजावट का कार्य इन कारीगरों ने ही किया। जब महाराजा रणजीत सिंह ने देखा तो उन्हें पसन्द न आया। वे चाहते थे कि दरबार साहिब में जो कार्य हो वह मुग़ल एवं राजपूत कला से न केवल अलग ही हो बल्कि उन्हें मात भी दे। उनकी इच्छा थी कि यहां के कला के कार्य में आकर्षण एवं सुन्दरता के साथ-साथ यहां के आत्मिक रस की भी झलकी हो एवं वह यहां के शान्त एवं संगीतमय वायुमण्डल में आत्मसात हो सकने की भी क्षमता रखता हो।

प्रमुख कलाकारों का सम्मेलन

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने समय के सभी प्रसिद्ध कलाकारों का एक सम्मेलन बुलाया। उनके विभिन्न कार्यों की एक प्रदर्शनी भी हुई। महाराजा ने उनके कार्य देखे। साथ ही भाई संत सिंह ज्ञानी भी थे। स ठाकुर सिंह आर्टिस्ट बताया करते थे कि महाराजा को चार सिख कलाकारों के कार्य बहुत ही पसन्द आये। ये चारों ही रामगढ़िया मिसल में से थे। इन्होंने पहले भी कुछ महल एव किले आदि बना कर प्रसिद्धि प्राप्त की हुई थी। इस तरह इन चारों का चुनाव किया गया। इनको भाई संत सिंह के साथ लगाया गया जिनके साथ पहले भी कुछ सिख एवं कुछ गैर-सिख विशेषतः चन्योट से आये मुसलमान कारीगर भी थे। ये सभी भाई संत सिंह के संरक्षण में कार्य करते रहे। भाई साहिब स्वयं भी कार्य करते तथा साथ ही पुराने ढंगों में नए रंग भरने की विधि भी बताते। विभिन्न कार्यों, जैसे कि मीनाकारी, टुकड़ी एवं नक्काशी आदि के लिए जो खाके बनाये गये होते, वे भी चित्रांकित करके संबंधित कारीगरों को समझाते।

भाई संत सिंह से लेकर अब तक जिन कारीगरों ने श्री दरबार साहिब में अपनी कला के किसी रूप में चमत्कार दिखाये हैं उन में से कुछ के नाम इस तरह हैं – बाबा केहर सिंह, महन्त ईशा सिंह, भाई बिशन सिंह, भाई निहाल सिंह, भाई जवाहर सिंह, भाई ज्ञान सिंह, भाई हरनाम सिंह एवं भाई आत्मा सिंह।

श्री के. सी. आरीअन का कथन है कि समूची मीनाकारी (पत्थरों में छोटे-छोटे रंग बिरंगे पत्थर जड़ के फूल-बूटे आदि बनाने का कार्य) एवं समस्त नक्काशी (दीवारों पर चित्रकारी का कार्य) उन मुसलमान कलाकारों ने किया जो कि चन्योट से आये थे। इस कार्य के लिए बदरुमहीऊद्दीन को निरीक्षक नियुक्त किया गया।

हो सकता है कि चन्योटियों का मुख्य तो महीऊद्दीन हो लेकिन समस्त कलाकारों के प्रमुख भाई संत सिंह हों। महाराजा ने किसी को भी मुख अथवा प्रमुख नियुक्त किया हो, यह बात तो स्पष्ट है कि आज जितने प्रकार के कार्य श्री दरबार साहिब में दिखाई देते हैं वे महाराजा रणजीत सिंह की ही देन हैं।

हरिमन्दिर साहिब में कला के बहु-पक्षीय कार्य

हरिमन्दिर साहिब का नीचे का आधा भाग सफेद पत्थर-संगमरमर का बना हुआ है जिस में बहुरंगे कीमती पत्थर जड़ित हैं। ऊपरी आधा भाग स्वर्णपत्रों से चमचमाती दीवारों गुंबदों से सुशोभित है। हरिमन्दिर साहिब के अन्दर गच (एक प्रकार का लेप) टुकड़ी के कार्य से जिस को कई रंगों से श्रृंगारित किया गया है। कुछ स्थानों छतों एवं दीवारों को गच पर शीशे के टुकड़ों से सजाया हुआ है। विभिन्न रंग के कीमती पत्थर भी गच में जुड़े हुए दिखाई देते हैं। गच पर पीले, नीले, सब्ज़ एवं लाल रंग लगा कर विभिन्न नमूने बनाये गये हैं।

दरबार साहिब की चमक है लेकिन दमक नहीं। यहां सुखद चमक है। यह आंखों को चौंधिया देने वाली नहीं। बाहर एवं अन्दर सजावट है। जितने फूल-बूटे आदि के नमूने हैं वे सभी कुदरत में से लिये गये हैं। यहां कला एवं कुदरत का सुमेल है। मानों बलिहारी कुदरत वसिआ का कथन साकार हो गया।

श्री दरबार साहिब के परिक्रमा के अन्दर प्रवेश करते ही सर्वप्रथम विशालता का प्रभाव पड़ता है। बिल्कुल ऐसे जैसे कुदरत की ब्रह्माण्डी विशालता का प्रभाव पड़ता है। सामने सरोवर के बिलकुल मध्य हरिमन्दिर साहिब दिखाई देता है। परिक्रमा में पांव रखते ही "हरिमन्दिर" पर ऐसे दृष्टि स्थित होती है कि सरोवर के चारों ओर चक्कर काटते बार-बार नजर इधर ही जाती है।

महाराजा रणजीत सिंह ने इस की बाहर से एवं अंदर से दिलकश सजावट की। बाहरी खूबसूरती को देख कर मन करता है कि अंदर जा कर देखें कि "हरि का मन्दिर" अन्दर से कितना आकर्षक है। अन्दर की मनमोहक सुन्दर सजावट देख कर मन करता है कि उस "सतिसुहाण" के दर्शन हों। काश, इस "हुसन जमाल" की कहीं झलक पड़े।

श्री हरिमन्दिर साहिब में जैसे ही प्रविष्ट होने लगे तो दरवाज़े पर लगे बड़े सुनरही पत्र पर निम्नांकित बाणी उत्कीर्ण है जिस से महाराजा की सेवा के साथ-साथ उस की नम्रता का प्रमाण भी मिलता है। यह ऐतिहासिक लिखाई इस प्रकार है :

ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूर्ति अजूनी सैभ गुर प्रसादि। जपु। आदि सचु जुगादि सचु।। है भी सचु नानक होसी भी सचु।।

श्री महाराज गुरु साहिब जी ने अपने परम सेवक सिख जान कर श्री दरबार साहिब जी की सेवा श्री महाराजा सिंह साहिब रणजीत सिंह जी पर दया करके करवाई संवत 1887।

सिंह साहिब एवं बर्तानवी हिन्दुस्तान

– प्रो: देविन्दर सिंह

महाराजा रणजीत सिंह समस्त हिन्दुस्तान में शानदार राज्य स्थापित कर लेता यदि अंग्रेज़ों ने शेष हिन्दुस्तान को अधीन न कर लिया होता''.... डाक्टर हरी राम गुप्ता।

आस्ट्रेलियाई ह्यूगल कहता है, ''.... मुझे यह कहने में रत्ती भर भी संकोच नहीं कि यह सेना किसी भी समय की सुरक्षित सेना से हज़ारों गुणा अधिक विशेषता रखती है। खालसा फौज कूच करते समय यूरोपीय ढंग से पांव उठाती है, लम्बे कूच के समय हमारी सेनाओं को मात देती है और पीछे छोड़ जाती है। ... जितने समय एवं व्यय में 30,000 खालसा सेना बड़ी ही आसानी से अथवा स्वाभाविक तौर पर कुछ कर सकती है, उतने समय एवं व्यय में ही हमारी मुश्किल से 3000 सेना ही जा सकती है।''

''यदि महाराजा सतलुज पार की रियासतों को 1805 ई० से पहले ''प्रोटैक्टोरेट'' बना लेता तो सरकारे-खालसा की अरब-सागर पर पहुंची सीमा इसको बर्तानिया की गुलाम न बनने देती एवं न आज पाकिस्तान ही बनता।'' (एक अनुमान)

संभावना का आधार

उपर्युक्त संभावनाओं का आधार फौजी-शक्ति एवं विनाशी शक्ति है जो खालसा सेनाओं को प्राप्त हुई। जो नेपाली सेनाएं खालसा सेना को देखते ही कांगड़ा छोड़ दौड़ीं, जिन अफगानों ने हमेशा खालसा सेना से गहरी चोट खाकर ''हरीआ राघले'' (पठानीआं बच्चों को सरदार हरी सिंह नलुआ की
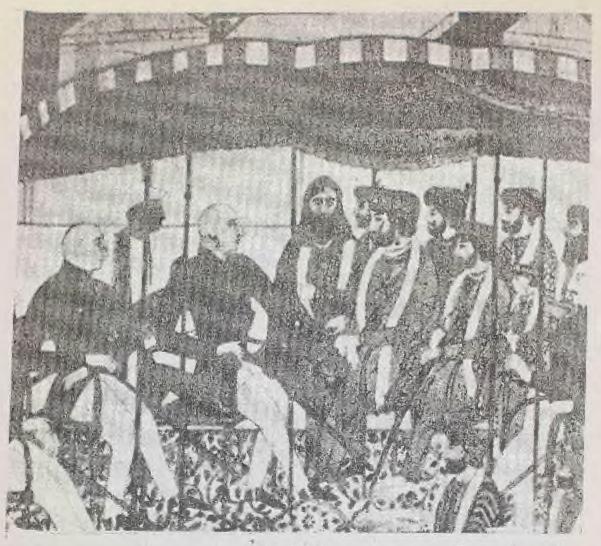
आमद का भय दे कर चुप कराती हैं) के प्रमाण स्वरूप हमेशा ही भारी शिकस्त (हार) का सामना किया, उन्होंने नेपाली एवं अफगान सेनाओं के हाथों अंग्रेजों के दान्त खट्टे करवाये। संभावनाएं कार्यान्वित क्यों न हुई?

यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसके जवाब के लिए विशाल क्षेत्र घेरना आवश्यक है। महाराजा साहिब, कम्पनी हिन्दुस्तान के राजे, बर्तानवी दुकानदार एवं खालसा जी इस विषय के क्षेत्रों के रूप में अध्ययनाधीन लाने आवश्यक हैं क्योंकि इस सब कुछ की पृष्ठ-भूमि पश्चिमी बुर्जुआ मशीनरी-व्यापार का व्यवहार एवं पंजाब (सिंध से यमुना तक का क्षेत्र) का "श्रमिक आन्दोलन" एवं उस की संभावनाएं हैं।

महाराजा रणजीत सिंह : "सिंह साहिब" कहलवा कर प्रसन्न होना एवं लोगों द्वारा "सरकार" राज्य-प्रशासनीय मुख्य संबोधन करवा कर "पाइबोस के स्थान पर" वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतहि" कहना साबित करता है कि महाराजा,पंजाब और पंजाबी एक दूसरे के

लिए बने थे। पंजाब और पंजाबी तक महाराजा सांझे दुश्मनों, मुगलों, अफगान एवं मराठों का मुकाबला करते हुए, धर्म प्रभावकारी कार्यों में ढलाकर तदरूप हो चुके थे। उस वातावरण की करामात थीं जो पंजाब के श्रम-आन्दोलन एवं उससे उत्पन्न हुए विश्वास ने बना छोड़ा था।

नेपोलियन एवं महाराजा साहिब

सर लैपल ग्रिफन लिखता है, "निस्संदेह उसका (माहाराजे का) नाम जूलीअस सीज़र से लेकर नेपोलियन तक महान लोक-नेताओं के मध्य रखा जा सकता है।"

महान रोमन-सम्राट जूलीअस सीज़र एव विश्व के रोमन साम्राज्य को विभिन्न रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता। वह लोक-नायक था। नेपोलियन बोनापार्ट, फ्रांस के लोक-सम्राट को, जो यूरोप को "एक देश, एक दिशा, जाति एक न्याय एव एक सम्राट अधीन, के रूप में आकार देना चाहता था एवं उस दिशा में एक विशाल बेजोड़ प्राप्ति की भी। आज तक लोगों की "स्वाभाविक-लीडरशिप की सब से बड़ी एव उच्चतम उपाधि दी जाती है। परन्तु इस दुनिया में मशीन-व्यापार के एकाधिकार का बोलबाला है। एकाधिकार देशों का वह (नेपोलियन) गौरव है इस लिए उसकी प्रसिद्धि हो गई (झूठी नहीं हुई) परन्तु पंजाब के इस महाराजा में सर्वपक्षीय उत्तम गुण एवं प्राप्तियां थीं जिस की प्रसिद्धि तो अभी हिन्दुस्तान के इतिहास में भी नहीं हुई।

"नेपोलियन क्रान्ति का बेटा था जिसने अपनी मां की पीठ में छुरा घोंपा।" उसने राजनीतिक आजादी के बिना और सब आज़ादियां दीं, अपने गुरु दार्शनिक जैक जैकुअस रूसो को पागल व्यक्ति कहा एव प्राचीन सम्राटों की तरह शक्तियों का केन्द्रीकरण करके सैनिक तानाशाह बन बैठा। सभी नागरिक संस्थाएं भी उसके केन्द्रीकरण का साधन थीं।

महाराजा साहिब ने आजीवन सेवादार-रूपी कमरबंद नहीं खोला। सादी पगड़ी बांधी। कुर्सी को सिंहासन समझा। चमक दमक एवं भड़कीले के स्थान पर सफेद कपड़े पहनकर दर्शनीय स्वरूप में ही शोभामान हुआ। "सिंह साहिब" कहलवाकर गुरु साहिबान को सच्चा पातिशाह मान कर सदा गुरुबाणी के आगे सर झुकाया। नानकशाही रुपया एवं नानकशाही अशरफ़ियां ढलवाईं एवं सरकार का नाम "सरकार-ए-खालसा जी" रखा एवं खुद को "गुरु का नगारा-रणजीत" कहा। युद्धों में जन्मे पले

एवं बड़े हुए सिंह किसी को ऊंचा अथवा उत्तम मानने से इन्कारी थे एवं महाराजा साहिब तो स्वयं को "सिंह साहिब" कहलवा कर प्रसन्न होते थे। इस तरह वे सभी के मध्य एक जत्थेदार की हैसियत में ही रहे। उन्हें उदारवादी तानाशाह का नाम देना भी उचित नहीं, क्योंकि तानाशाह वे थे ही नहीं। वे तो "सरकार" अर्थात् केवल राज्य प्रशासीय मुख्य थे।

महाराजा साहिब ने राज्य भी लोगों को करने दिया और इस स्थिति को लागू करने के लिए जो आवश्यक था, किया। जैसे मृत्यु-दण्ड किसी को भी न देने की नीति सब जगह सफलता पूर्वक लागू करवाई। (यह दण्ड शेष संपूर्ण भारत में साधारण ही था और आज के पंजाब में करीब 50 वर्ष पहले तक खेल ही समझा जाता था)। पंचायतों ने ही समस्त कानून एवं शान्ति–व्यवस्था न्याय एवं निर्माण का कार्य संभाला हुआ था और यह संस्था अपने कार्य एवं क्षेत्र के प्रति उत्तरदायी थी। स्थानीय ज़िम्मेदारी एवं जवाबदेही की इस विधि (रक्षा विधि) का परिणाम सोहन लाल सूरी के शब्दों में इस तरह है "कोई भी लाहौर से पेशावर तक हाथ पर सोना रख कर निर्भय यात्रा कर सकता है।" बैरन ह्यूगल कहता है कि पंजाब में डकैती अनजानी बात थी एवं पंजाब, हिन्दुस्तान (ब्रिटिश) से कहीं अधिक सुरक्षित था। डाकटर ज: स: ग्रेवाल के अनुसार, पंजाब में मुगलों की अधिक अपेक्षा नरम टैक्स लगाये जाते थे। जान लारेंस कहता है कि पंजाब की समूची भूमि हरी-भरी एवं काश्त अधीन थी, जबकि हिन्दुस्तानी-पंजाब (रियासत) में 1812, 1817, 1824, 1833, 1837, 1841, 1842 में अकाल पड़े। डैज़िल रबेटसन।

पंजाब के श्रम -आन्दोलन की लोकशक्ति को संगठित करके लोकनायक महाराजा रणजीत सिंह ने कम्पनी-हिन्दुस्तान के राजाओं की अपेक्षा अधिक राजे जीते, परन्तु कहीं भी पराजित नहीं हुए। आठ शताब्दियां समाप्त होने के पश्चात् उन्होंने खैबर-दर्रे की नाकाबन्दी की और हमलावरों के मुंह तोड़े। आज भी पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान का बार्डर गेट वही "जमरौद" है जो सरदार हरी सिंह नलूए की -देशान्तरों के मध्य संधियों पर बादशाहों के हस्ताक्षर होते थे। फिर फ्रांसीसी क्रान्ति आई तो लोग लगभग सौ वर्ष से संघर्ष करते रहे एवं परिणाम स्वरूप "राज्यप्रजा" शक्ति संपन्न कहलवाने लगी तो संधियों पर देशों के नाम दर्ज किये जाने लगे। परन्तु इस विचार एवं अमल को दुनियां अभी तक असंभव ही मानती है एवं साथ ही साथ मानवीय सभ्यता का शीर्ष मानती

है, वह है, निजी एवं सामूहिक प्रभुसत्ता की एकता।'' जो ब्रहमाण्डी सिद्धान्तों को मानेंगे एवं अमल करेंगे केवल वही ''तत्वैज्ञानिक-बौद्धधारी'' इस सिद्धान्त पर पूरे उतरेंगे। इस मानवीय सभ्यता की शीर्ष मंज़िल का प्रकटन 1842 ई० में लद्दाख के संधिपत्र में हुआ है। एक ओर तो दलाईलामा एवं चीन के बादशाह इस संधि के पक्ष हैं एवं एक पक्ष है - ''खालसा जीओ'' अन्तर्देशीय अहदनामों में पक्षों के हस्ताक्षर एवं मोहरें, प्रभुसत्ता के प्रमाण होते हैं। यह पंजाब की लोकशक्ति की महानताएं उसकी प्राप्तियों का प्रमाण है जिसको महाराजा साहिब ने सरदार (राज्य प्रमुख) होते हुए कायम रखा है। इस तरह खालसा जी एवं महाराजा रणजीत सिंह अपने समकालीन यूरोप से सैंकड़ों वर्ष आगे थे और हिन्द की रियासतें तो पाषाणकालीन बरबरता।

आधुनिक काल में चीन विरुद्ध लद्दाख के क्षेत्रों पर हिन्द सरकार का दावा सरकार-ए-खालसा जी की सीमाओं पर आधारित एक प्रत्यक्ष सच्चाई के रूप में स्पष्ट होता है। महाराजा साहिब शक्तिशाली सैनिक संगठनों, महान सैनिक आक्रमणों के कारण हिन्दुस्तान भर में श्रेष्ठ थे। लगभग 100 यूरोपीय खालसा सेना में नियुक्त थे एवं आधुनिक शस्त्र महाराजा के असला खानों में थे। सर्वोत्तम बात है कि महाराजा ने पंजाब को सैनिक एवं राजकीय रूप जन-साधारण के स्तर पर लोकनायक बने हुए इस तरह लामबन्द एवं संगठित किया कि सभी पंजाबी ही जैसे शासक वर्ग बन गये थे।

नैपोलियन का राज्य केन्द्रीयकरण की सीमाएं लांघने के परिणाम स्वरूप गया लेकिन सरकार-ए-खालसा जी का राज्य देश-द्रोहियों (जम्मू-भाइयों एवं बनारस के सरदारों) द्वारा गद्दारी एवं बारूद के स्थान पर सरसों भेजने के परिणाम स्वरूप समाप्त हुआ। दुनिया का इतिहासकार जब नेपोलियन एवं महाराजा रणजीत सिंह का मुकाबला करेगा तो महराजा साहिब को ऊँचा स्थान सुरक्षित करेगा।

महाराजा साहिब एवं हिन्दुस्तानी शासक

महाराजा साहिब के समय में यूरोपीय लेखकों एवं चित्रकारों का सबसे प्रिय विषय था : महाराजा रणजीत सिंह। महाराजा साहिब ने हिन्दुस्तानी राजाओं जैसे कि सिराजुद्दौला,मीर जाफर, अवध के नवाब, मराठे, मुग़ल

एवं दक्षिणी राजाओं के पैदा किये हुए उस हीनभाव को धो दिया (डा० हरी राम गुप्ता) कि हिन्दुस्तान महान व्यक्तित्व पैदा करने के योग्य नहीं रहा।

दृढ़ निश्चय वाले बनाम अविश्वसनीय

महाराजा दृढ़ विश्वासी एवं इरादे वाले थे जबकि हिन्दुस्तानी हाकिम रोज़-बरोज़ वफादारियां एवं ईमान बदलते थे। मराठे एवं मुस्लिम हाकिम एक ओर तो महाराजा से सहायता मांगते थे लेकिन दूसरी ओर अन्दरूनी तौर पर अंग्रेजों से सांठ-गांठ भी करते रहते थे ताकि उनसे कोई संधि कर ली जाये।

मित्रों की खोज

महाराजा साहिब ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघ संगठित करने हेतु रूस, फ्रांस, एशिया एवं अन्य अंग्रेज़ विरोधी शक्तियों से संपर्क साधने की पूरी कोशिश की। वह अरब-सागर तक सीमा बढ़ाने में भी यही दिलचस्पी रखते थे। महाराजा ने कतिपय भारतीय शासकों से संबंध भी स्थापित किये, परन्तु उनकी राजनीतिक सहायता करने का निर्णय वह न कर सके। वे स्वयं बड़ी भारी सैनिक-मशीनरी के निर्माण में लगे हुए थे। परन्तु सांठ-गांठ अथवा संघीय-शक्तियों के क्षेत्र में उन्हें निराशा ही हाथ लगी। अंग्रेज़ों के विरुद्ध फैसलाकुन इरादे के कारण सैनिक तैयारी के परिणामस्वरूप वे हिन्दुस्तान में सर्वोच्च शक्ति के रूप में उभरे। लेकिन कहां थी वह मित्र - शक्ति जो महाराजा के साथ-साथ सभी कुछ दांव पर लगाये रखती थी जब तक अंग्रेज़ों के विरुद्ध जीत प्राप्त न हो जाती। हिन्दुस्तानी हाकिम तो खुद की रियासतों के छिन जाने के भय से अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध की सोचने में ही असमर्थ थे।

अंग्रेज़ों के विरुद्ध कोशिशें

महाराजा ने उत्तरी भारत में राजपूत एवं मराठा एवं दक्षिणी हिन्दुस्तान में हैदराबाद रियासत से संबंध स्थापित करने एवं अंग्रेज़ों के विरुद्ध अभियान के निर्माण हेतु एलची भेजे। हैदराबाद के तो हिन्दू पेशकार ने ही अंग्रेज़ों को सूचना दे दी जब कि नीलोर में फतहगंज वासी

धूमदास (महाराजा का एजेंट) अंग्रेज़ों के हाथ आ गया और उससे सभी भेद मालूम हो गये (आर्मज़-स्ट्रांग कमीशन की कार्यवाहियां, नेशनल आर्काईवज़ में से) इस के अतिरिक्त तथ्य मौजूद हैं कि बंगाल, बम्बई एवं भरतपुर, बांदा सिंधिया, हुलकर, पेशवा, टिकारी के राजाओं एवं क्षेत्रों में महाराजा ने गुप्त संदेश भेजे जिससे कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जा सके। पंजाब के प्रथम गद्दार राम सिंह के कारण यह भेद अंग्रेज़ों को मालूम हो गये एवं परिणास्वरूप अमृतसर की संधि 1809 ई० में हुई एवं यमुना की जगह सतलुज पक्की सरहद बना दी गई।

महाराजा की कोशिशें एवं 1857 का ग़दर

1857 ई० का ग़दर "मुतबन्ना" के अधिकार के आधार पर खड़ा हुआ था जो कूटनीतिक प्रचार द्वारा सैनिक-बगावत बना एवं पुराने हाकिम इस में लड़े। परन्तु महाराजा साहिब की कोशिश शुद्ध रूप में "आज़ाद-हिन्दुस्तान" के संकल्प की थी। वे निजी स्वार्थों के लिए टुकड़ा-टुकड़ा लड़ाई की जगह संपूर्ण एवं योजनाबद्ध युद्ध अंग्रेज़ों को निकालने के लिए लड़ना चाहते थे। उत्तरी हिन्दुसतान के सिख-क्षेत्रों के एकीकरण के पीछे एवं काश्मीर, मुलतान एवं पेशावर को विदेशी पंजों से आज़ाद करवाने के पीछे यही भावना थी। यदि 1809 ई० की ये योजनाएं संपूर्ण हो जातीं जब कि हिन्दुस्तानी राजाओं की शक्ति 1857 से अधिक थी, तो यह सचमुच ही आज़ादी की प्रथम एवं अन्तिम सफल लड़ाई होती।

इतिहास दोहराता है

शायद भारतीय शासक रियासतें गुरु हरिगोबिन्द जी, गुरु गोबिन्द सिंह जी एवं बाबा बन्दा सिंह बहादुर के समय की तरह अभी भी अधकचरी ही थीं। सांझे दुश्मन खत्म करने की योजनाओं के स्थान पर उन्हें भय एवं हीनता की कंपकंपी हो जाती थी एवं यदि उन्हें सम्मिलित होने के लियं मजबूर किया जाता था तो वे युद्ध जीतने से पहले ही, जीत के बंटवारे के प्रश्न पर ही झगड़ पड़ते थे। अपने में शक्तिशाली हाकिम के अधीन हो कर स्वतंत्र रूप में राज्य करने की जगह वे विदेशी शासकों के पांव की जूती बनना स्वीकार करते थे। यही बर्ताव मुसलमानों के प्रथम हल्लों के समय से ही स्थापित हो गया था एवं महाराजा रणजीत सिंह के समय भी यही बर्ताव रहा।

महाराजा ने यह बर्ताव शायद भांप लिया था। यद्यपि उन्होंने विशाल शक्ति निर्मित कर ली थी, परन्तु अंग्रेज़ों का राज्य दुनिया भर में फैला हुआ एवं इंग्लैण्ड से सैंकड़ों गुना से भी बड़ा था। एक एक करके समस्त हिन्दुस्तानी शासक अधीन होते गये। देशी शासक झगड़ते रहे एवं अंग्रेज़ों के विरुद्ध कभी भी संगठित न हुए। इसी कारण महाराजा ने निराशा से, हिन्दुस्तान के मानचित्र को देख कर कहा था "सब लाल हो जायेगा।" वीर-भूमि से कोई भी साथी राजा न मिलना महाराजा के समय का दुखान्त था। साथी मिलता भी तो कैसे? महाराजा लोकनायक था जब कि शेष राजे प्राचीन वर्ण प्रथा अथवा वर्ग जन्म-जात विशेषाधिकारी आधार पर दैवी-राज्यसत्ता के अधिकारों में लीन थे। इस तथाकथित उत्तमता ने अंग्रेज़ों के समक्ष हीन बनना स्वीकार कर लिया था लेकिन जनशक्ति के नायक महाराजा रणजीत सिंह के साथ गांठजोड़ नहीं किया।

महाराजा रणजीत सिंह एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी (दुकानदार)

नई राजकीय शक्ति :

इस्लाम, ईसाई धर्म एवं हिन्दुस्तान के सैंकड़ों ही मत राजकीय जूए एवं खेल के हथियार बन चुके थे। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक धर्म एवं उसके समाज का आविर्भाव लोक-आन्दोलन में होता है एवं इसके द्वारा राजकीय शक्ति के विरोध के बावजूद दुनिया भर के सर्वोत्तम नेता, योद्धे एवं स्वाभिमानी मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। जब महाराजा रणजीत सिंह सिखी-लहर एवं इस की शक्तियों को अपने पक्ष में संगठित कर रहा था (1802 ई०) उस समय तक मशीन एवं वाणिज्य यूरोप में नई शक्ति के रूप में उभर चुके थे। यह नई शक्ति यूरोप के तानाशाहों, सम्राटों को धराशायी करने में लगाई हुई थी एवं इस को दुनिया भर का बेजोड़ एवं सर्वोत्तम लोक नेता प्राप्त हुआ जिस का नाम था, नेपोलियन। यूरोप की बुर्जुआ श्रेणी ने वैज्ञानिक अनुसंधान, मशीन, उद्योग एवं व्यापार पर

एकाधिकार प्राप्त कर लिया था एवं अब वह राजकीय शक्ति प्राप्त करने के लिए विचलित हो रही थी। अंग्रेज़ बुर्जुआ एकाधिकार प्राप्ति बहुत समय पहले कर चुका था। इसी कारण औद्योगिक उत्पादन के लिए व्यापार एवं व्यापार के लिऐ मण्डियों की खोज में उन्होंने सर्वप्रथम समुद्र पार किये। उपर्युक्त परिस्थितियों के परिणास्वरूप उन्होंने राजनीति, कूटनीति, हकूमत, राजनीति देशी, विदेशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों एवं उसके दाव पेच विषयों में बहुत बड़ी उन्नति की। भारतीय राजाओं को इन बातों का ख़ाब-ख्याल भी नहीं था। साथ ही उद्योगों द्वारा हर रोज़ नई एवं अधिक घातक जंगी-शक्ति यूरोप में उत्पन्न हो रही थी। उस का मुकाबला करने के लिए हिन्दुस्तान में कौन सा मशीनी औद्योगिक ढांचा था।

सिख लहर

नानक पंथी (सिखों) की उत्पत्ति एवं लहर जो फ्रांसीसी-क्रान्ति से लगभग 300 वर्ष पहले बिन्दु से आरम्भ हुई एवं 200 वर्ष पहले विकसित हो चुकी थी। इस लहर का उद्देश्य फ्रांसीसी क्रान्ति की तरह संकीर्ण अथवा तंग नहीं था, बल्कि सृष्टि के सिद्धान्त के अधीन संपूर्ण मानवता की भलाई के लिए था। इस आन्दोलन में रूसो के बहुत से विचार एवं संकल्प, संबंध होने के बावजूद भी पूर्ण हुए दिखाई देते हैं एवं तत्पश्चात् हुई कार्ल मार्क्स के श्रमिक, श्रम एवं पूंजी के सिद्धांतों की पुष्टि भी दिखाई देती है। (गुरुबाणी अकाल-धुरे पर लिखी गई है, इस कारण देश एवं काल की जड़ पकड़ से मुक्त है।) मूलाधार, सृष्टि के सिद्धान्त पर थोपने के कारण इस का सिद्धान्त लोक हितकारी है।आज यमुना से लेकर समस्त पंजाब तक, कृषि अधीन भूमि-अधिकारों का इतिहास, हमें बाबा बन्दा सिंह बहादुर के समय की खालसा जी की प्राप्ति का अहसास करवाता है। आज की पंजाब की समृद्धि का शिलान्यास, खालसा जी "सरबत के भले" के लोक हितकारी सिद्धान्त के अनुसार तभी रखा गया था एवं रजबाड़ा-जगीरू अधिकारों को तोड़ कर भूमि काश्तकारों (मुज़ारों) को दी गई थी। साहूकारों के पंजे को अंग्रेज़ों के समय बढ़ावा मिला और आज यही स्थान बैंकिंग साहूकारों को प्राप्त है। आवश्यकता है उस लोक-कल्याणकारी सिद्धान्त की जिसे महाराजा रणजीत सिंह ने स्थापित रखा।

किन्तु लगभग सौ वर्षीय घल्लूघारे (रक्तपात), जिस में लाखों सिंह जुझारू, संत सिपाही शहीद हुए, के पश्चात् पंजाब के लोगों को जब प्रत्येक

राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इजारदारी से मुक्ति मिली तो जो व्यक्ति आन्दोलन में अथवा आन्दोलन के साथ निजी स्वार्थों के कारण जुड़े हुए थे उन्होंने नई नई प्राप्त "सुविधा" का आनन्द लेना आरम्भ कर दिया। सब से प्रथम आर्थिक समानता की शुरूआत हुई। चाहिए तो यह था कि लोक सरकार स्थापित होती, परन्तु रक्षा-प्रणाली एवं मिसल-प्रणाली की स्वैचालक लोक शक्ति के नियंत्रण ने इस बिचार के बीज ही अंकुरित नहीं होने दिये एवं गुरुमता भी मिसलदारों के हाथों में ही केन्द्रित हो गया था। इस तरह आन्दोलन पथ-भ्रष्ट होकर रजवाड़ा-संस्कृति एवं सभ्यता के रास्ते पीछे लौट गए। यह नई, स्वस्थ, शक्तिशाली लेकिन रजवाड़ा-अवगुणों से आज़ाद पंजाबी सभ्यता का पश्चिमी मशीनी व्यापारी सभ्यता के समक्ष कोई जोड़ नहीं था।

अंग्रेज़ एवं हिन्दुस्तानी प्रशासक :

नए ईजाद किये हथियारों, समुद्री सेना एवं वैज्ञानिक योजनाओं द्वारा अंगेज़ शक्ति ने सिख एवं मराठा साम्राज्यों को अधीन करके देशी आर्थिकता नष्ट की एवं अपनी मण्डी स्थापित की। जब अंग्रेज बुर्जुआ हिन्द को अंधाधुंध लूट लूट कर उस बर्ग को अमीर बना रहा था जो कि उसकी शक्ति का आधार थे तब हिन्दुस्तानी शासक केवल करों के बोझ से अपनी प्रजा को लूट रहे थे ताकि उनका ऐशो-आराम बना रहे। इस तरह प्रजा देशी प्रशासकों से निर्लेप हो गई। इस व्यवहार में केवल पंजाब की सरकार सरकार-ए-खालसा जी ही एक अपवाद थी।

दोनों दलों में मुकाबला :

महाराजा की शक्ति ने उन यूरोपीय सैनिकों एवं साज़ो-सामान की नकल करनी आरम्भ कर दी जिस के पीछे आधुनिक राष्ट्रों के नागरिक, मशीनों, उद्योग, व्यापार एवं समुद्री शक्तियां थीं एवं सर्वोपरि सारी दुनिया पर छाये हुए प्रगतिवादी बुर्जुआ पूंजीपति थे। यह विचार बहुत अधिक वज़नदार नहीं है कि पश्चिमी ढंग की सिख सेनाओं ने एक बार तो अंग्रेजों को खतरे में डाल दिया एवं भारत-खण्ड की सबसे शक्तिशाली सेनाएं साबित हुई। भारत-खण्ड की तो वह सब से महान सेना थी ही, इस में कोई संदेह नहीं लेकिन स्मरण रहे कि जिस का अनुकरण किया जा रहा हो, वह

नक्लची से अधिक उत्तम होगा एवं रहेगा। "रक्से-लुलिआ", "रक्से कंजरियां" शब्द प्रमाणित करते हैं कि सिखों का आधुनिकीकरण होना चाहिए था ना कि पश्चिमीकरण। पश्चिमीकरण में अधीनता, नौकरी एवं हीनता के अवगुणों ने सिखों की वीरता कम की क्योंकि यह कुछ सिखों के स्वभाव के अनुकूल नहीं था। खालसा जी तो हमेशा नये-नये शस्त्र एवं दावपेच सीखने के लिए उतावले रहते ही थे। इसलिए आधुनिकीकरण के स्थान पर पश्चिमीकरण सब से बड़ी भूल थी। जब एंग्लो-सिख बार सभरावां एवं अन्य स्थानों पर लड़ी गई थी एवं खुलेआम मक्कारिया यूरोपी बनारसी एवं डोगरे भाइयों ने की क्योंकि पश्चिमी ढंग से प्रशिक्षित सिख-सैनिक संगठन में अहम नियंत्रण के मालिक थे इसलिये यह सभी कुछ करने में सक्षम थे। बारूद की जगह सरसों के बीज़ भेजे गये। इस युद्ध का रूप तोपों-बंदूकों के समक्ष तलवारों का था। पश्चिमीकरण से पहले ऐसे महत्वपूर्ण नियंत्रण, पद अथवा किसी भाग की मालकी सिख-सेनाओं में प्रचलित नहीं थी। सिख सेनाएं पहले ऐसे प्रबन्धों पर निर्भर न होकर असाधारण स्तर पर आत्मनिर्भर थीं। पश्चिमीकरण से पहले या तो महाराजा गद्दारों का फ्रांस की तरह सफाया करते थे। लेकिन महाराजा ने तो एक व्यक्ति की भी जान नहीं ली। फिर ऐसी सेनाएं तो एक जाति की ही सफल हो सकती हैं। बहु-जातीय स्थापना में तो यह संगठन आत्म-हत्या के समान ही होता है जहां धन एवं सुविधा के लिए ही अन्य जातियों के लोग नौकरियां करते हैं। यूरोपीय, बनारसी, डोगरे, हकीम-भाई तो नौकरियां करते थे जहां कि सतलुज को अपने रक्त से लाल कर देने वाले, पंजाब के नाम एवं सरकार-एक-खालसा जी की आन पर मर मिटने वाले भंवरों के लिए देश संस्कृति प्राणवत् थे।

अविश्वासी दोगले

लोकतांत्रिक संस्थाओं की डींगें हांकने वाले अंग्रेज़ों ने आस्ट्रीया, रूस, एशिया के पैरों में सोना रखा एवं 25 वर्षीय युद्ध जारी रखा फ्रांसीसी लोक-क्रान्ति के विरुद्ध। यूरोप में अंग्रेज़, देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनवा कर सारे देशों को अपाहिज करके खुद ज़ोर एवं बेईमानी से दखलअंदाज़ी करता रहा। सामुद्रिक शक्ति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय कानून के साथ बलात्कार करता रहा एवं अन्य देशों के व्यापार को चोट पहुंचाता रहा। अंग्रेज़ दुकानदार ने इस प्रकार दोगले

बर्ताव द्वारा अवैध साम्राज्य का निर्माण किया। लाहौर-दरबार एवं पश्चिमीकरण की गई खालसा सेनाओं को कोई नेता महाराजा साहिब के बाद न मिला एवं वैसे भी बहुक़ौमी दरबार के जंगल में कोई परिस्थितियों पर सवार हो कर राज्य कर भी कैसे सकता था?

अन्तर की सम्भावना

एंग्लो-सिख युद्धों के समय में अकाली फूला सिंह एवं अकाली साधू सिंह जी की सेनाएं कहां थीं? शायद दो देशों एवं राजाओं की लड़ाई में यकीन न होने के कारण खालसा जी निर्लेप हो गये थे। ख़ैर यदि पश्चिमी ढंग की खालसा जी की अपेक्षा आत्म-विश्वास में कमज़ोर सिख सेनाओं ने ही बारूद न होते हुए भी अंग्रेज़ों को करारी हार दी तो यदि आधुनिक शस्त्रों से लैस सेना जंग लड़ती तो क्या होता? बहुत ही संभावनाएं थीं। यह लेख इस तरह संभावनाओं से आरम्भ होकर संभावनाओं पर ही समाप्त होता है।

फिरंगी साम्राज्य को समाप्त करने के लिए महाराजा रणजीत सिंह के प्रयास

– प्रिं: जोगिन्द्र सिंह

"सब लाल हो जायेगा," यह अक्षर महाराजा रणजीत सिंह ने तब कहे जब उन्हें भारत का वह नक्शा दिखाया गया जिस में पंजाब को छोड़ शेष संपूर्ण भारत, अंग्रेज़ी राज्य का भाग होने के तौर पर लाल दिखाया गया था। महाराजा को भली-भान्ति ज्ञात था कि यद्यपि अंग्रेज़ मुह पर उनसे पूर्ण मित्रता का इज़हार करते हैं लेकिन मौका मिलने पर उनकी पीठ में छुरा घोंपने से भी संकोच नहीं करेंगे।

नेपोलियन को पराजित कर 1815 के बाद अंग्रेज़ विश्व की सबसे बड़ी शक्ति बन चुके थे। हिन्दुस्तान में ही उनके पास प्रायः 2,50,000 सेना अपनी थी एवं समस्त भारत में स्थान-स्थान पर अन्य बहुत राजा थे, जिन की निजी सेना का उपयोग कर लेने के अधिकर भी अंग्रेज़ों के पास ही थे।

जो पंजाब महाराजा को विरासत में मिला वह खस्ताहाल, बेजान और दुश्मनों से घिरा हुआ पंजाब था। महाराजा की सैनिक शक्ति का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1811 तक उनके पास केवल 39 तोपें ही एकत्रित हो सकी थीं।

अंग्रेज़ों से जूझने के लिए महाराजा ने जो योजनाएं सोचीं वे एक महान सूझबूझ का प्रतीक थीं। सर्वप्रथम उन्होंने उन उत्तरी घाटियों में रुकावटें डालीं जहां विदेशी आक्रमणकारी प्रायः आते ही रहते थे। इस पर पराजित हुए भारतीय राजा भारत में अभी भी काफी संख्या में मौजूद थे जो अंग्रेज़ों से अपना राज्य वापस जीत लेने के लिए उत्सुक दिखाई देते थे। महाराजा ने उन ऐसे सभी राजाओं से सँधि करके इकट्ठे मिल कर अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध करवाने की कोशिश में यत्न आरम्भ किये।

महाराजा ने यह भी देखा कि अंग्रेज़ी सेना का बड़ा भाग तो हिन्दुस्तानियों का ही था जो पेट-पैसे की खातिर अपने देशवासियों को गोरों के बन्दी बनाये जा रहे थे। महाराजा ने फ़िरंगियों के भारतीय सिपाहियों को भी अपनी ओर करना आरम्भ कर दिया। कई वर्ष महाराजा ने अपनी सेना में फिरंगी भारतीय सिपाहियों (तिलंगियों) के अतिरिक्त किसी और सेना की भरती करनी ही छोड़ दी, एवं पंजाब की सीमाओं पर बैठी बंगाली सेना को अपनी सेना से भूखा बंगाली कहलवा कहलवाकर मज़ाक भी इसी कारण करवाये कि उनमें देश प्यार जागृत हो सके।

भारत में अंग्रेज़ शासक एक उच्च कोटि के चतुर न होते तो इतने बड़े देश पर हावी कदाचित न हो सकते। पहले पहल तो वे खुश हुए कि महाराजा ने उत्तरी आक्रमणकारियों को रोक कर अंग्रेज़ों के लिए दिल्ली का राज्य स्थिर कर दिया है। लेकिन जब उन्होंने महाराजा की बढ़ती हुई ताकत देखी तो उन्होंने अपनी नीति (पंजाब के प्रति) शीघ्र ही बदल ली।

पहले तो एक ही मुसलमान, सय्यद अहमद बरेलवी को पंजाब के विरुद्ध मुसलमानी जिहाद करवाने के लिए पैसे एवं भारतीय मुसलमानी जिहादियों सहित सिंध होकर काबुल से नीचे सिताना नाम के गांव में एक केन्द्र खुलवा दिया जहां वह कबाइली पठानों को अपने साथ मिला कर महाराजा को प्रति दिन तंग करने लगा। सिख सेना के शूरवीर जरनैल, अकाली फूला सिंह एवं स हरी सिंह नलूआ अंग्रेज़ों की इस नीति के कारण शहीद हो गये।

दूसरी ओर से अंग्रेज़ों ने महाराजा को सतलुज पार मालवा के क्षेत्र में प्रसन्नतापूर्वक रह रहे अपने सिख संबंधियों को तोड़ कर महाराजा की शक्ति को सतलुज दरिया तक ही सीमित करने की कार्यवाही जारी कर ली।

1808 में सर्दियों में जब फिरंगी ने मैटकाफ नाम का अपना दूत महाराजा की ओर दोस्ती का हाथ फैला कर फ्रांसीसियों के विरुद्ध संधि करने के लिए भेजा तब महाराजा को उसकी चालों का पूरा ज्ञान था।

इतिहासकारों को इस बात की समझ नहीं पड़ती थी कि मैटकाफ के पंजाब आने के पश्चात् महाराजा ने उसको फकीर अज़ीज़ुद्दीन के अधीन

छोड़ कर सतलुज पार करके फरीदकोट अम्बाला आदि तक नया क्षेत्र जीत लिया एवं पूरे 6 मास मैटकाफ को बिना कोई बातचीत किये पीछे लगाये रखा, लेकिन अन्त में जीते क्षेत्र छोड़ कर सतलुज दरिया को अपनी सीमा भी मान लिया।

इस प्रश्न का समाधान तब इस लेख के लेखक को मिला जब नेशनल आर्काइवज़ दिल्ली में गुरमुखी दस्तावेज़ों की खोज करते समय 1808-1809 वाले मैटकाफ के बण्डल में से उसे कुछ गुप्त पत्र मिले।

ये पत्र महाराजा के जासूसों के हैं। इनके द्वारा महाराज ने बम्बई तक मराठे एवं राजपूत नरेशों की ओर एवं कलकत्ता तक बेगम समरु, कानपुर बैठे पेशवा, बांदा के नवाब और पटने के निकट टिकारी वाले राजा को निमन्त्रण भेजे कि वे महाराजा को मिलें ताकि अंग्रेज़ों के साथ सांझा मुहाज़ बना कर लड़ा जाए।

इन दस्तावेज़ों में ही सहारनपुर से महाराजा के अपने ही दरबारी, भाई राम सिंह की भी चिट्ठी है जो एक गद्दार था और गुप्त रूप से अंग्रेज़ों के साथ मिला हुआ था।

यह उसी की मिहरबानी का परिणाम था कि उपर्युक्त रजवाड़ों की ओर भेजे महाराजा के गुप्त संदेश दुश्मनों के पास पहले ही पहुंचते रहे, जिन्होंने अपनी शक्ति का उपयोग कर महाराजा की सब चालों को नाकारा कर दिया।

उत्तरी भारत में से निराश होकर महाराजा ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध कार्यवाहियों का रुख दक्षिण की ओर मोड़ा एवं 1810 में गुड़ सिंह नाम के एक दूत को हैदराबाद के निजाम के पंजाबी हिन्दू पेशकार, चन्दू लाल के पास एक गुप्त चिट्ठी देकर भेजा। इस में लिखा हुआ था कि महाराजा की बातचीत दौलत राओ सिंधिया, जसवंत राओ होल्कर, भरतपुर के राजा तथा पेशवा के भाई अमरत राओ के साथ अंग्रेज़ों से एक सांझी टक्कर लेने की चल रही है। इस हेतु पेशकार से यह पूछा गया था कि वह दक्षिणी भारत में अंग्रेज़ों की शक्ति के संबंध में महाराजा के अनुमान से अवगत करवायें।

लेकिन यह सारी की सारी यथावत चिट्ठी चन्दू लाल ने हैदराबाद के अंग्रेज़ रैज़ीडैण्ट, सिडनहैम को दे दी जो दिल्ली में आज भी मौजूद है एवं

महाराज की कारवाईयों का सारा पोल खोल दिया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपने संघर्ष को महाराजा किस संगीन सीमा तक ले गये थे इस का पता अंग्रेज़ों को तब लगा जब अंग्रेज़ों ने दक्षिणी भारत के कई क्षेत्रों में से महाराजा के कुछ जासूसों को पकड़ लिया।

नवम्बर, 1838 में फिलौर में स्थित फकीरी भेष धारण किये हुए एक व्यक्ति अंग्रेज़ी जासूस के झांसे में आ कर अपना असला ज़ाहिर कर बैठा और अंग्रेज़ों के हाथों बंदी हो गया।

अंग्रेज़ अधिकारी मिस्टर स्टोन्ज़ की जांच-पड़ताल पर उसने बताया कि उस का नाम धूमदास है, वह अटक ज़िले में फतह जंग का निवासी है एवं महाराजा रणजीत सिंह का जासूस है।

वह जोधपुर के राजा मान सिंह से संधि करके आया था। सितारा का राजा, बड़ौदा का गायकवाड़, बांदे का नवाब, रोहेलखण्ड के कुछ अफगान शहज़ादों, भोपाल का नवाब, पटियाला एवं सौगर के राजे, महाराजा रणजीत सिंह के साथ मिल कर अंग्रेज़ों को भारत से निकालने के यत्न कर रहे हैं। हैदराबाद का मुबारिज़ुदाओला एवं करनूल का नवाब भी इस मुहाज़ में सम्मिलित हैं। रूसी और ईरानी सेना भी हिन्दुस्तान की ओर आने को तैयार बैठी थीं। फैसला यह हुआ कि जैसे ही विदेशी सेनाएं भारत की सीमा पर पहुंचेंगी, भोपाल का नवाब अपने क्षेत्र में से अंग्रेज़ों को भगा देगा। सिंधिया अंग्रेज़ों की छावनी मऊ पर हल्ला बोल देगा, बुंदेल खण्ड वाले अफगान शहज़ादे सौगर की छावनी पर टूट पड़ेंगे। ईरानी सेनाएं एवं काबुल के दोसत हाकिम मुहम्मद की सेनाओं के साथ जोधपुर वाला राजा एवं महाराजा रणजीत सिंह मिल कर अंग्रेज़ों पर धावा बोल देंगे। दक्षिण में हैदराबाद तथा करनूल भी महाराजा की सहायता के लिए अंग्रेज़ सेना के साथ भिड़ पड़ेंगे। एक और जासूस जिस का नाम रहमान बेग था, ने अंग्रेज़ों को बताया कि महाराजा रणजीत सिंह के एक हज़ार सिपाही हैदराबाद में गदर भड़काने के लिए आ चुके हैं एवं एक एक, दो दो कर के रोज़ाना आते ही जा रहे हैं ।

जिस समय धूम दास पकड़ा गया, उस समय महाराजा एवं अंग्रेज़ गवर्नर जरनल आकलैण्ड काबुल से निकाले हुए सम्राट शाह सुजा के साथ मिल कर काबुल पर हमला करने के लिए योजनाएं बना रहे थे। फिरोजपुर के आमने-सामने सतलुज दरिया के दोनों ओर अंग्रेज़ों एवं महाराज के

विशाल कैम्प लगे हुए थे एवं जशन मनाये जा रहे थे।"

इस कैम्प की रिपोर्ट में लिखा है कि लार्ड आक्लैण्ड से खाना खाने के पश्चात् जब महाराजा अंग्रेज़ों द्वारा दिये तोहफों का निरीक्षण करने के लिए आगे बढ़ा तो कुछ तोपों के समक्ष गिर पड़ा। इस घटना के पश्चात् महाराजा का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया, ज़ुबान भी बन्द हो गई एवं अधरंग ने भी आ घेरा। कई इलाज़ों के बावजूद महाराजा स्वस्थ न हो सका।"

एक मुसलमान कवि जाफर बेग ने लिखा था :

दारू तेज अंग्रेज़ फिरंगी वाली
पींदे सार महाराज बेताब होया
अंत नाल सरकार दे दगा कीता
डाल ज़हर दा किसम शराब चढ़ेया।

जो ऐतिहासिक साक्षी इस लेखक के हाथ लगी है और जो दिल्ली एवं हैदराबाद में आज भी पड़े हैं, उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि जाफर बेग की कविता एक अटल सच्चाई है। "फिरंगियों को इस बात का पूर्ण ज्ञान हो चुका था कि जब तक शेरे पंजाब ज़िन्दा है वे चैन से सांस नहीं ले सकेंगे। महाराज जैसे योद्धे को युद्ध में हराना भी कोई सरल नहीं था।"

यदि महाराज को धोखे से ज़हर दिलवा कर न मरवाया जाता तो भारत का इतिहास क्या होता, इस बात का अंदाज़ा पढ़ने वाले खुद लगा सकते हैं।

महाराजा का दरबार

– प्रोः राजेन्द्र सिंह

महाराजा रणजीत सिंह ने एक शानदार दरबार की स्थापना की। मुंशी सोहन लाल सूरी, स्टेनबैल, ओसबोर्न एवं अन्य समकालियों ने अपने लेखनों में लाहौर दरबार की विलक्षणता का विस्तृत विवरण दिया है।

इस दरबार में आने वाले व्यक्तियों की आंखें चौंधियाने वाली सर्वप्रथम वस्तु इस की नूरानी ठाठबाठ थी। स्टेनबैक लिखता है कि महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में वह सभी कुछ मौजूद था जोकि मानवीय जाहो-जलाल संबंधी कल्पना द्वारा ही चिंतन किया जा सकता है एवं जो शाही ठाठ-बाठ को चोटी पर ले जाने के लिए पर्याप्त था। उसे संदेह था कि लाहौर दरबार जैसी अमूल्य वस्तुएं शायद ही किसी यूरोपीय दरबार में हों।

एक खुद मुख्तयार राज्य पंजाब,स्थिरता एवं गौरवता के पुंज, उन्नत एवं समृद्धिशाली राज्य के सिरमौर महाराजा सुनहरी कुर्सी पर बिराजमान हुआ करते थे। यद्यपि बालपन में चेचक से उनकी शक्ल कुछ खराब हो
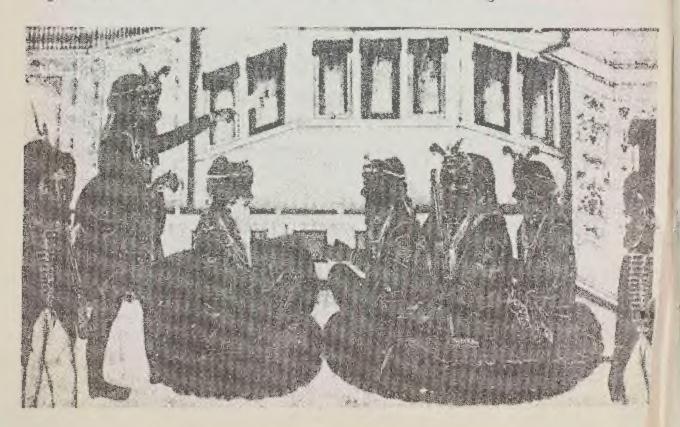
गई लेकिन उनके चेहरे पर फिर भी बहुत जलाल था। उनकी निर्जीव आंख में गौरव स्पष्ट दिखाई देता था। वे सादा पोशाक पहनते थे। गर्मियों में सफेद मलमल एवं सर्दियों में पशमीना। वे कोई ज़ेवर आदि नहीं पहनते थे। केवल कमर के इर्द गिर्द असली मोतियों की माला एवं अपनी एक बाज़ूबन्द पर कोहिनूर सजाया करते थे। वे बहुत मिलनसार एवं खुले विचारों वाले थे एवं वे खुल कर बातचीत करते थे। वे बात बहुत दिलचस्पी से करते एवं सुनते भी थे। वे विदेशियों को अनगिनत ऐसे प्रश्न करते थे जिस से विदेशी बौखला जाते थे। वे निपुण एवं योग्यता के धनी थे। वह तीक्षणस्मरण शक्ति के स्वामी थे। रणजीत सिंह की प्रतिभा के संबंध में एम. एल. एम. मैकग्रेगर लिखते हैं, रणजीत सिंह की प्रतिभा स्वाभाविक ही थी और उनकी निपुणता शिक्षा के कारण नहीं थी बल्कि ईश्वरीय कृपा से ही वे सर्वगुण सम्पन्न थे। उन्होंने अनगिनत जीतें प्राप्त कीं एवं उनकी शक्ति का पाट विशालतर होता गया।

महाराजा रणजीत सिंह के मुख्य दरबारी उनकी कुर्सी के दोनो ओर कतारों में खड़े होते थे। शाहजहां की तरह वे मोर के पंखों से सुसज्जित चबूतरे पर नहीं बैठते थे। ह्यूगल कहता है कि वे कहा करते थे कि '' मैं अपनी तलवार की शक्ति से ही हर असम्भव वस्तु की प्राप्ति कर सकता हूं। बाहरी तड़क भड़क मुझे अच्छी नहीं लगती और दरबार में उनकी कुर्सी के पास कंवर खड़क सिंह, कंवर शेर सिंह एवं राजा ध्यान सिंह के सुपुत्र हीरा सिंह खड़े होते थे। डोगरा राजा ध्यान सिंह हाथ जोड़ कर अपने मालिक के पीछे और फकीर अज़ीज़ुद्दीन उनके भी पीछे खड़े थे। कुलीन वर्ग के लोग दरबार में पीले अथवा हल्के हरे रंग के वस्त्र पहन कर आया करते थे। वे इस तरह लगते थे जैसे वर्दी डाल कर आये हों।

यद्यपि प्रतिदिन दरबार लगाने का कोई विशेष तौर पर निश्चित स्थान अथवा समय निर्धारित नहीं होता था, परन्तु दरबार सामान्यतः सुबह एवं दोपहर को लाहौर के किले में सम्मन बुर्ज पर लगाया जाता था। मेले वाले दिनों में दरबार शालीमार बाग़ में सजाया जाता था। मुख्य दरबारियों के अतिरिक्त अन्य लोग दो कारणों से दरबार में उपस्थित होते थे। अधिकारी लेखे का हिसाब-किताब देते थे एवं शिकायतों का निपटारा करते थे। शेष लोग महाराजा के समक्ष शीश झुका कर उन्हें ''सरवारना'' एवं नज़र के रूप में धन अर्पित करते थे। इन भेटों की कीमतें विभिन्न रुतबे के अनुसार होती थीं। इस प्रकार इकत्रित किया गया धन ग़रीबों को दान में दे दिया जाता था।

महाराजा साहिब दरबार के पक्के नियम पालक थे। गलत कार्य अथवा उल्लंघन करने पर दण्ड दिया जाता था। बिना आज्ञा कोई बोल भी नहीं सकता था। महाराजा पहले विषय पर बातचीत शुरू करते। कोई भी बीच में टोक नहीं सकता था। केवल राजा हीरा सिंह को ही इस संबंध में कुछ छूट थी।

मैक्ग्रेगर के कथनानुसार दरबार में बातचीत पंजाबी में की जाती थी यद्यपि न्याय के कार्यों एवं रिकार्ड के लिए फार्सी को ही सरकारी भाषा माना गया था। अन्य सरकारों के साथ पत्र-व्यवहार फारसी में ही किया जाता था। महाराजा को मसौदे पढ़ कर सुनाये जाते थे और वे देखते थे कि उनके आदेश जैसे कि उन्होंने दिये थे माने गये अथवा नहीं। वे स्वयं निर्णय करते थे। राज्य प्रशासन में वे बहुत ही सख्त थे।

महाराजा रणजीत सिंह के दरबार की महत्वपूर्ण विशेषता मंत्री के चुनाव के लिए उनकी धर्म-निर्पेक्ष नीति थी। वे योग्यता को प्राथमिकता देते थे और सदा ही योग्य व्यक्तियों की खोज में रहते थे। डा० गोकुल चन्द नारंग लिखते हैं कि महाराजा का एक महान गुण अधिकारियों के चुनाव का ढंग था। वह सदा सही स्थान एवं सही व्यक्ति को ही तैनात करते थे और जब कोई ऊंचे से ऊंचा व्यक्ति अपने पद पर सही ढंग से कार्य नहीं कर सकता था तो उस को बदलने में कभी संकोच नहीं करते थे।

इस तरह उनके दरबार में किसी प्रकार का नसली पक्षपात अथवा भेद भाव नहीं पाया जाता था। वे किसी व्यक्ति के चुनाव के समय धर्म और जाति को कोई महत्व न देते हुए केवल व्यक्ति की योग्यता को मुख्य समझते। उन्होंने दरबार में सिख, हिन्दू, काश्मीरी पण्डित, राजपूत, मुसलमान एवं यूरोपियन चुने हुए थे। यूरोपियन की नियुक्ति के समय वे निम्नलिखित शर्तें रखते थे – (1) वे गोमांस न खाते हों (2) सिगरट न पीयें (3) दाढ़ी रखते हों, आदि।

दरबार में अधिक प्रवीण दरबारियों में जम्मू के डोगरा राजा भाई जैसे कि मीयां ध्यान सिंह, गुलाब सिंह, सुचेत सिंह एवं ध्यान सिंह के पुत्र हीरा सिंह आदि गिने जाते थे। इन में से ध्यान सिंह बड़ा वज़ीर बना। वह 1811 में एक रिसाले के सिपाही के तौर पर महाराजा की सेवा में आये, अपने मालिक का विश्वास जीतने के पश्चात् उन तक पहुंचने के लिए एक साधन के तौर पर बन गये। वे अपनी प्रजा के हितों को कभी भी आंख से ओझल नहीं करते थे।

गुलाब सिंह राजनीतिज्ञ था। ओसबोर्न उसे निपुण, चुस्त, बहादुर, शक्तिशाली एवं बुद्धिमान कमाण्डर के तौर पर बताता है। वह प्रायः लाहौर से बाहर ही रहता था और जम्मू में डोगरा भाइयों को दी गई जागीरों का प्रबन्ध करने में ही लगा रहता था। वह महाराजा को बहुत नम्रता से शीश झुका कर मिलता था।

सुचेत सिंह

इन तीनों भाइयों में से सुचेत सिंह सब से छोटा था, घोडसवारों का जनरल था एवं बहुत सुयोग्य दरबारी था। उसको सिविल प्रशासन में कम ही सम्मिलि किया जाता था।

राजा हीरा सिंह

ध्यान सिंह का सुपुत्र राजा हीरा सिंह महाराजा का बहुत ही निकटवर्ती था। वह बहुत सुन्दर था एवं दरबार में उसको विशेष स्थान प्राप्त था। अपने पिता के अकाल निधन के पश्चात् उसने हिम्मत से काम लिया और प्रमुखता हासिल करने का प्रण किया।

फकीर भाई

रणजीत सिंह के मुसलमान दरबारियों में सब से प्रसिद्ध दरबारी फकीर अजीज-उ-दीन था। ग्रिफिन के कथनासुसार वह रणजीत सिंह के सभी दरबारियों में से सब से ईमानदार एवं निपुण दरबारी था। वह विदेश मंत्री के तौर पर कार्य करता था एवं महाराजा का बक्ता था। 1808 में अंग्रेज़ों के साथ युद्ध की घोषणा करने से उन्होंने ही महाराजा को वर्जित किया था एवं 1831 में विलियम बैंटिक के साथ रोपड़ में मीटिंग आयोजित की।

उस का भाई नूर-उ-द्दीन गुजरात का गवर्नर था एवं ईमामुद्दीन गोबिन्दगढ़ का गवर्नर था। जिन हिन्दुओं को उनके राज्य काल में उच्च पदों पर तैनात किया गया था, उनमें ज़मांदार खुशहाल सिंह डयौढ़ी वाला, जनरल मोहकम चन्द, भवानी दास खज़ानची एवं दीना नाथ जो वित्त मंत्री था सम्मिलित थे।

यद्यपि रणजीत सिंह आप सिख जाट था, परन्तु वह सिखों का पक्षपात नहीं करता था। वे अधिकतर सेना में ही भर्ती किये जाते थे। हरी सिंह नलूआ उन का सब से बड़ा जरनैल था। वह रणजीत सिंह के लिए युद्ध लड़ते हुए ही शहीद हो गया।

लहणा सिंह मजीठीआ को हिसाब तथा गणित ज्योतिष में विशेष निपुणता प्राप्त थी और प्रत्येक व्यक्ति उसके इस ज्ञान से आश्चर्यचकित होता था। वह लाहौर एवं अमृतसर की फाऊंडरियों पर नियंत्रण किया करता था। शाम सिंह अटारीवाला, जिस की लड़की 1837 में कंवर नौनिहाल सिंह के साथ ब्याही गई थी, 1845 में सभराओं की जंग में रणजीत सिंह के राज्य की रक्षा करते शहीद हो गया। इसके अतिरिक्त राज्य की रक्षा के लिए अकाली फूला सिंह एवं साधु सिंह के निर्देशन में कुछ अकाली भी थे।

अपनी सेना को यूरोपियन ढंगों से प्रशिक्षित करने के लिए रणजीत सिंह ने नेपोलियन बोनापार्ट के कुछ अधिकारी भी नियुक्त किये थे। बैनतूरा भी यूरोपियन था जो कि फौज-ए-खास का कमाण्डर बना एवं अलार्ड ने यूरोपियन ढंगों पर अश्वारोही सेना को संगठित किया।

मंत्रियों के उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से मालूम होता है कि महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी विभिन्न जातियों एवं वंशों के थे। डोगरे, ब्राहमण एवं यूरोपियन ग़ैर पंजाबी थे जो महाराजा रणजीत सिंह के स्वर्गारोहण के पश्चात् राज्य के लिए कमज़ोर सिद्ध हुए। वे केवल अपने स्वार्थ के लिए ही रणजीत सिंह के दरबारी बने थे। वे केवल महाराजा के साथ वफादारी के कारण ही दरबारी बने एवं उनके पास राज्य की रक्षा के लिए शक्ति आदि कम ही थी। महाराजा के जीवन काल में ही उनमें परस्पर ईर्ष्या एवं दुश्मनी कायम थी, परन्तु महाराजा के अकाल निधन के पश्चात् यह दुश्मनी ज़्यादा ही बढ़ गई। सभी साज़िशों के पीछे संधावालिया एवं डोगरों का दिमाग काम करता था। शक्ति सेना के पास थी लेकिन राज्य-गद्दी के हकदार यह धरोहर बनते थे।

महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर कैसे जीता

– लैः कर्नल गुलचरन सिंह (रिटायर्ड)

लाहौर (मूल) पंजाब का एक बहुत प्रसिद्ध शहर है। दिल्ली एवं उत्तर पश्चिमी सीमा के मध्य पड़ता है। इस शहर की महत्ता 1036 ई० में प्रकट होना आरम्भ हुई जब कि महमूद गज़नवी ने अटक दरिया के पूर्व के बीच के क्षेत्र की इसे राजधानी स्थापित किया। तब से लेकर आज तक यह शहर अपने प्रान्त की राजधानी रहा है। इसने कई वंश आबाद एवं बर्बाद होते देखे हैं। मार काट करती सेनाओं ने इसको पांव तले रौंदा एवं लूटा है, इसको बर्बाद किया एवं बाद में इस का निर्माण हुआ है। कई बार यहां के प्रशासकों ने दिल्ली के विरुद्ध बग़ावत ही की है। उसकी बात मानने से इन्कार किया है। मुग़लों का यद्यपि यह शहर राजधानी नहीं बन सका था, लेकिन उन्होंने इस प्यारे आकर्षक शहर को पर्याप्त महत्व दिया। यहां आकर मुग़ल बादशाह कई-कई मास बिताया करते थे। अबुल फ़ज़ल के शब्दों में लाहौर कौमों की सैरगाह रहा है। 1554 ई० से लेकर 1598 तक अकबर अपना दरबार यहीं सजाया करता था। उसने इस शहर की चार दीवारी बनवाई एवं यहां के किले को और पक्का किया। अकबर के साथ यहां आये पुर्तगेज़ों को यह शहर बहुत सुन्दर लगा। जहांगीर बादशाह भी इस शहर का बहुत शौकीन था। उनके समय के कई सिक्के इस शहर में गढ़े जाते थे। जहांगीर एवं नूरजहां दोनों के मकबरे भी लाहौर में स्थित हैं। इसी सम्राट का राज्य था जब सिखों के पांचवें गुरु अर्जुन देव जी की शहादत इसी शहर में हुई एवं उन्हें गर्म तवों पर बिठा कर उनके ऊपर गर्म गर्म रेत डाली गई थी। यह सिख इतिहास में एक बहुत बड़ा परिवर्तन बिन्दू बना।

शाहजहां का जन्म लाहौर का था। काश्मीर जाते-आते समय वह काफी समय के लिए अपना दरबार यहां ही लगाया करता था। उसने ही यहां समन बुर्ज बनवाया था, जहां आकर मुगल शहनशाह अपनी प्रजा को
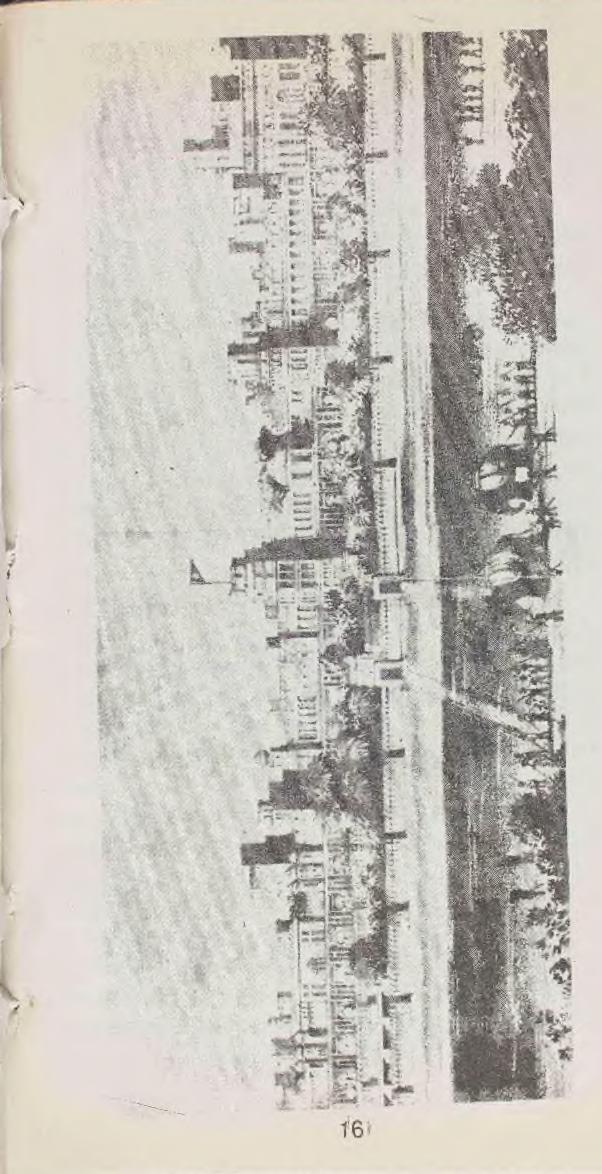
दर्शन दिया करते थे एवं उनके अमीर वज़ीर भी यहीं आकर हुकम हासिल किया करते थे। लाहौर का प्रसिद्ध एवं शानदार शालीमार बाग भी इसी शहनशाह बादशाह की देन है। इस के अतिरिक्त जो सेनाएं अटक के पार युद्ध करती थीं उनके लिए सिक्का बारूद भी यहीं एकत्रित किया जाता था।

नादिरशाह एवं अब्दाली का भी दब दबा इस शहर पर रहा है एवं उनके बाद के समय में षड़यंत्रों का घर भी यही शहर बना रहा।

इसके उपरांत सिखों की बारी आई।

1764 ई० में स. लहणा सिंह एवं गुज्जर सिंह भंगी मिसल के दो सरदारों ने इस शहर पर कब्ज़ा किया। इसके पश्चात् इन सरदारों के बेटों ने इस शहर पर राज्य किया। इन जाबर सरदारों ने प्रजा को बहुत परेशान किया एवं वह इनके अत्याचारों के बोझ तले दबी सांस भरती रही। लोग इनसे नाखुश थे एवं इनकी सरकार से छुटकारा पाने की योजनाएं बनाते रहते थे। भगवान ने समय दिया और शाहज़मान ने 1798 ई में पंजाब के ऊपर धावा बोल दिया। लेकिन शाहज़मान के लाहौर पहुंचने के पूर्व ही ये सरदार छोड़ कर भाग गये और शाह ने बिना किसी लड़ाई के ही शहर को अपने अधीन कर लिया।

इस समय सिख मिसलों ने अपने झगड़े छोड़ इस बाहर से आये दुश्मन का मुकाबला करने की योजना सोचने के लिए अमृतसर में सम्मेलन किया। अधिकांश सरदार मुकाबला करने से हिचकिचाते थे। इस पर स रणजीत सिंह की सास सरदारनी सदा कौर, जो कि इस सम्मेलन में सम्मिलित थी, ने सब को चुनौती देते हुए कहा कि यदि कोई भी सरदार दुश्मन का मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं तो वह अकेली ही डट जायेगी। एक औरत का इतना साहस देख कर शेष सभी सरदार भी दुश्मन का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गये। स. रणजीत सिंह को उन्होंने अपना नेता मान लिया। सिख सेना मिल कर लाहौर की ओर बढ़ी एवं शहर के बाहर जा कर डेरा लगा लिया। वहां से रणजीत सिंह कुछ साथियों को साथ लेकर समन बुर्ज पहुंचा जहां कि शाहज़मान बिराजमान था, एवं उसको चुनौती देते हुए कहा : "ओ अब्दाली के पोते! आ बाहर और चढ़त सिंह के पोतरे का मुकाबला कर" लेकिन कहां! शाह ने सिखों की शक्ति का अनुमान लगा लिया हुआ था। किसी ने लिखा है कि सिखों के भय के कारण शाह का डेरा हमेशा घबराया रहता था। विशेषतः रात को जब कि

सिख आ कर इस पर गोली चलाया करते तो उनका मुकाबला करने के लिये कोई बाहर नहीं निकलता था। सिखों की गुरीला शक्ति का शाह सामना करने में असमर्थ था तथा मायूसी के कारण काबुल लौट गया। कई इतिहासकारों का कथन है कि शाह को काबुल तो लौटना पड़ा, क्योंकि वहां उसके सौतेले भाई महमूद ने बग़ावत का झण्डा झुला दिया था।

जो भी हो लेकिन शाह पंजाब का संतोषप्रद बन्दोबस्त न कर सका, जिससे कि वह आवश्यकता के समय फायदा ले सकता।

शाह ज़मान ने अभी मुंह फेरा ही था कि तीनों भंगी सरदारों ने फिर आकर लाहौर पर चौधर जमा ली। प्रजा इन सरदारों के बर्ताव से प्रसन्न नहीं थी। साथ ही उन्हें भय था कहीं कसूर का निज़ामुद्दीन ही लाहौर न आ बैठे। उनके लाहौर के मुसलमानों को भेजे हुए निमंत्रण किसी काम न आये। नगर निवासी क्या मुसलमान, हिन्दू, सिख स. रणजीत सिंह को पसंद करते थे। इसलिये इन तीनों जातियों के नेताओं ने मिलकर स. रणजीत सिंह को लाहौर आने का निमंत्रण भेजा जबकि वह राम नगर में था। उन्होंने यह भी वादा किया कि लाहौर को जीतने में यथा संभव उनकी सहायता भी करेंगे। उन्होंने सरदारनी सदा कौर को भी अपील की कि वह भी सरदार रणजीत सिंह को इस कार्य के लिए प्रेरणा दे।

रणजीत सिंह ने प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं सही हालात की जांच के लिए अपने जासूस लाहौर भेज दिये। उधर वह अपनी सेना लेकर बटाला की ओर चल पड़ा। वहां से अपनी सास एवं उसकी सेना लेकर वे दोनों अमृतसर की ओर चल पड़े। दोनों की सांझी सेना की संख्या प्रायः 25,000 थी, जिस में सदा कौर के 8,000 घुड़-सवार सम्मिलित थे। लेकिन आम प्रचार यह कर दिया गया था कि वे अमृतसर सरोवर में स्नान करने के लिए जा रहे थे। अमृतसर से दोनों चल पड़े एवं सारा रास्ता एक दिन में ही समाप्त कर शालीमार बाग़ पहुंच गये। वहां प्रसिद्ध शहरी उन्हें आ कर मिले एवं शहर की दीवार में जो कमियां थीं उन से रणजीत सिंह को परिचित करवा दिया। रणजीत सिंह बहुत चतुर था। उसने दीवार की दरारों से होकर अन्दर जाने से इन्कार कर दिया। इस पर शहरियों ने शाह आलमी एवं लाहौरी दरवाज़े रात को खुले रखने का प्रण किया। उस दिन नागरिक मुहर्रम में लगे हुए थे और सभी कुछ इतनी शीघ्रता से हुआ कि भंगी सरदार अपने बचाव के लिए कोई विशेष कदम न उठा सके। उनकी

200 सवारों की भेजी हुई एक टुकड़ी को रणजीत सिंह ने भगा दिया।

अब रणजीत सिंह ने अपनी सेना को दो भागों में बांट लिया। एक भाग ने सदा कौर के निर्देशन अधीन दिल्ली दरवाज़े से अन्दर जाने का दिखावा किया और दूसरे भाग को लेकर रणजीत सिंह, जिस के साथ 300 जुझारु अकाली भी थे, लाहौरी द्वार होकर नगर के अन्दर आ घुसे। दो भंगी सरदार तो भाग गये। पीछे केवल चेत सिंह ही रह गया और वह झूठी खबर मिलने के बाद चार पांच सौ सवार लेकर दिल्ली दरवाज़े की ओर बढ़ा, लेकिन स. रणजीत सिंह तो किसी और दरवाज़े से अन्दर घुसा था। जब चेत सिंह को इस का पता चला तो वह भागकर किले के अन्दर जा घुसा एवं दरवाज़ा बन्द कर दिया। यदि वह थोड़ा भी पिछड़ जाता तो रणजीत सिंह किले में प्रवेश कर जाता। अब दोनों ओर से गोली चलने लगी एवं दिन भर चलती रही। स. रणजीत सिंह जो किले से तोपों के गोले फेंकवाना चाहता था, को सदा कौर ने मना कर दिया। सरदारनी का विचार था कि शत्रु के पास जब अन्दर भण्डार किया बारूद एवं राशन आदि समाप्त हो जायेगा तो वह खुद ही हथियार फेंक देगा क्योंकि उनके सभी रास्ते बन्द किये हुए थे और बाहर से उसके लिए कुछ भी नहीं जा सकता था । ऐसे ही हुआ एवं चेत सिंह ने हथियार फेंकने मान लिये, यदि उसे सुरक्षित नगर से निकल जाने दिया जाये और कुछ भत्ता भी दिया जाये। स. रणजीत सिंह ने ये दोनों शर्तें मान लीं एवं 7 जुलाई, 1799 ई० को लाहौर पर स. रणजीत सिंह का अधिकार हो गया। कई इतिहासकार यह तिथि 27 जून, 1799 बताते हैं जो कि सही नहीं है।

किले पर कब्ज़ा करने के पश्चात् वहां से कई तोपें एवं कितना ही बड़ा खज़ाना भी रणजीत सिंह के हाथ आया। चेत सिंह को लाहौर से 24 मील दूर वेनीआं 7000 रुपये वार्षिक आय वाला गांव जागीर में दिया गया। विजेता सेना को सावधान किया गया कि नगर में कोई लूट-मार न की जाये एवं न ही नागरिकों को परेशान किया जाये। इस पर नागरिक बहुत प्रसन्न हुए।

स. रणजीत सिंह को जब भी लाहौर पर कब्ज़ा करने का मौका मिला उसने हाथ से न जाने दिया। वर्ष का समय भी अच्छी गर्मी का था एवं बरसातें भी शुरू होने ही वाली थीं। इस लिए दुश्मन को यकीन ही नहीं था कोई इस समय युद्ध आरम्भ करने की सोचेगा। फिर उसने ऐसा रास्ता

पकड़ा कि दुश्मन को कहीं सन्देह भर भी न हो सकता हो कि रणजीत सिंह लाहौर पर हमला करने वाला था। उन्होंने अपना इरादा एवं सारी योजना गुप्त रखी, फिर तेज़ रफ्तारी से बढ़कर रणजीत सिंह ने दुश्मन को तो आश्चर्य चकित कर दिया। वे बहुत घबराये। इससे उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि फुर्ती कितनी लाभप्रद होती है।

लाहौर का किला तो बहुत मज़बूत था, लेकिन भंगी सरदारों को वहां के निवासी पसन्द नहीं करते थे और न ही भंगियों ने किले में काफी राशन एवं बारूद सिक्का ही एकत्रित किया हुआ था। रणजीत सिंह की चतुराई से पता चलता है कि वह कैसे कार्य करता था। जब लाहौर निवासियों ने उन्हें निमंत्रण दिया तो विश्वास करने के लिए उसने सारा समाचार गुप्तचरों से प्राप्त किया ताकि वे धोखे में ही न मारा जाये।

जब बैरी ने दोस्ती के लिए निवेदन किया तो रणजीत सिंह ने मान लिया ताकि व्यर्थ में रक्तपात न हो। इस लिए कई जानें बच गई। इस से पता चलता है कि वह कितना उदारचित था।

राजनैतिक दृष्टिकोण

लाहौर पर अपना अधिकार जमा लेना रणजीत सिंह के लिए एक महत्वपूर्ण विजय थी। लाहौर, जो कि 2000 वर्ष से पंजाब की राजधानी चला आ रहा था, ने रणजीत सिंह का रुतबा ऊंचा कर दिया। लाहौर पंजाब के लिए वही महत्व रखता है जितना कि दिल्ली भारत के लिए। इस विजय से रणजीत सिंह उत्तरी क्षेत्र में एक धनाढ्य शासक बन गया। उसकी जहां यह इच्छा पूर्ण हुई, वहां उसकी और इच्छाएं बढ़ गई और अल्प समय में ही उसने कई और क्षेत्र भी जीत लिये।

लाहौर रणजीत सिंह के हाथ आने के कारण एक और राजनैतिक लाभ हुआ जिस कारण पंजाब एवं भारत का भावी इतिहास ही बदल गया। इस से भारतीय मुसलमानों के मध्य एशिया एवं अफगानिस्तान के मुसलमानों से संबंध विच्छेद हो गया, जहां कि इन को ताज़ा सहायता आती रहती थी। इससे यह रास्ता भी बन्द हो गया जिस से होकर कई सदियों से दुश्मन उत्तर-पश्चिम से आकर भारत को रौंदता रहता था। इस ने भारत के इतिहास का एक नया काण्ड आरम्भ किया। शाह ज़मान ने भी रणजीत सिंह की ओर दोस्ताना हाथ बढ़ाया और कई तोहफ़े भी भेजे।

इस से साफ स्पष्ट है कि रणज़ीत सिंह ने लाहौर अपने बाहु बल से लिया। प्रचलित रीति गलत है कि शाह ज़मान की कुछ तोपें उसके काबुल जाते जेहलम दरिया में रह गई थी, एवं जब रणजीत सिंह ने यह तोपें निकलवा कर शाह ज़मान को भेजीं तो उसने प्रसन्न होकर लाहौर का कब्ज़ा रणजीत सिंह को बख्श दिया। यह सत्य नहीं है। रणजीत सिंह ने लाहौर पर अपना अधिकार जमाने के पश्चात् ही यह तोपें जेहलम दरिया में से निकलबाई थीं एवं मित्रता समाप्त करने की खातिर ये तोपें 1800 ई० में शाह ज़मान को भिववा दी थीं, ना कि किसी और लाभ की खातिर। अंग्रेज़ों की फतहबाद में रैजीमैंट (कालिन्ज़) की 1800 ई० की रिपोर्ट के अनुसार शाह ज़मान ने इस पर प्रसन्न हो कर कुछ तोहफे रणजीत सिंह को भेजे। इनमें थीं मूल्यवान, पोशाकें, दो घोड़े अच्छी नसल के और कितना कुछ और। इस तरह शाह ज़मान ने भी रणजीत सिंह को लाहौर का शहनशाह मान लिया।

इस समय न तो लाहौर और न ही पंजाब शाह ज़मान के अधीन था। इतना ही नहीं उस को काबुल भी उसके हाथ से जाता प्रतीत होता था। इस तरह जब किसी पुरुष के पास कोई वस्तु हो ही नहीं , वह दूसरे को यह किस तरह दे सकता है? यह मानने वाली बात नहीं। प्रिस्प की रणजीत सिंह पर लिखी पुस्तक कैप्टन मर्रे की दी सूचना के आधार पर लिखी गई थी, जिसमें कि इस का कोई उल्लेख नहीं है। यह बात बाद में सम्मिलित की गई जो कि कैप्टन वेड के ब्यान पर आधारित है, लेकिन वह (वेड) पंजाब मंच पर बहुत समय के पश्चात् आता है।

अच्छा रज्ज के राज कमा गया

--प्रिं: सतबीर सिंह

कैप्टन मुर्रे ने प्राचीन पंथ प्रकार के लेखक से पूछा था कि :

"इतनी बात बताहु कि सिंघन पायो राज किम,
औ दीने किन पातशाह।"

तो भाई रतन सिंह जी भंगु ने कहा था "सिंघन पातशाही शाहि सचै दई।" इतना सुन कर कैप्टन मुर्रे ने फिर कहा था कि मैंने तो इतना ही सुना है कि :

"भयो नानक फकीर,
उन शाह की क्या ततबीर।"

इस समय बहुत ही भावपूर्ण बात भाई जी ने कही थी कि :

"गुरु नानक शहिन शाहि
दीन दुनी सचे पातशाह।
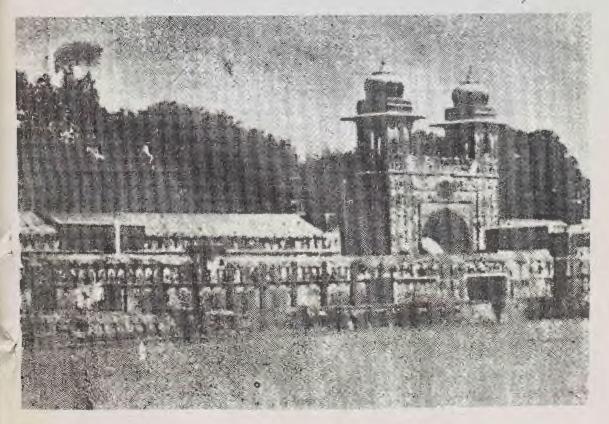
कई शाह तिन कीयो फकीर,
कई फकीर कर दीने पीर।
रहयो आप हुई बेपरवाह,
या नानक भया शाहनशाह
जिन शाह नानक चरन परसाए,
तिन में शकती इती भई आए।
चिड़ीअन ने उस बाज कुहाए।"

गुरु नानक की धूलि ले कर सिंह पंजाब का राज्य कमाया। यहां एक बात लिखनी अनुचित नहीं होगी कि जब शिवा जी मराठा ने अपने आप को राजा होने की घोषणा की तो ब्राहमणों ने ऊंची कुल का न होने कारण राज्य सिंहासन पर बिठाने से इन्कार कर दिया था। इस विचारे को लाखों रुपय ब्राहमणों को दक्षिणा देनी पड़ी तब कहीं जा कर उस को योग्य समझा गया। यह गुरु घर की ही महिमा है कि गरीब सिंह को दई पातशाही।

शताब्दियों से जो शक्तियां पंजाब को रौंद रही थीं, उन को ईन मनवाई। अब्दाली के पुत्र तैमूर को तथाकथित नवाब लाहौर ने जब हल्ला करने के लिए कहा तो उसका उत्तर था। "मेरे बाप ने क्या पाया सिंघों के साथ लड़ाइयां लड़-लड़ कर"।

फिर जब अब्दाली के पोत्र शाहज़मान ने शाही किले में बैठ कर शेखी बघारी कि सिंह अफगानी घोड़ों की आवाज़ सुन कर ही दुबक जाते हैं तो 17 वर्ष के नवयुवक रणजीत सिंह ने समन बुर्ज शाही लाहौर के नीचे खड़े हो कर चुनौती दी थी कि :

"आ ओए अब्दाली के पोत्रे,
तुझे चढ़त सिंह का पोत्र पुकारता है।"

वह आया अवश्य, लेकिन हाथ में लाठी, आंखें गंवा महाराजा रणजीत सिंह के पास शरण लेने।

राज्य पा कर भी महाराजा रणजीत सिंह का सिर नहीं फिरा वही नम्रता, वही धैर्य, वही सेवाभाव रखा जो सिख सिपाही होने के समय था।

जिस नम्र-राज्य का ज़िक्र गुरु अर्जुन पिता ने किया था, वही नम्र राज्य बना कर दिखाया। जैसे गुरु ग्रंथ साहिब अकाली छावनी है, सभी फकीरों, पीरों, भक्तों, मुरीदों एवं वाहिगुरु नाम लेवे की उसी से प्रकाश ले ऐसा

राज्य स्थापित किया जिस में सभी हिन्दू, सिख, मुसलमान, ऊंच, नीच, ग़रीब, अमीर, सुखी रहते थे। फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन यदि राज्य को अपना कहता था तो दीवान मेहकम चन्द भी मेरा कह कर प्रसन्न होता था।

केवल देखने में ही महाराजा रणजीत सिंह का राज्य था, लेकिन वह निज हित के लिए नहीं था, बल्कि सरकार खालसा था। सिख नानकशाही, मोहर अकाल सहाय एवं देग तेग़ फतह कौमी तराना देह शिवा बर मोहि इहै।

मुसलमानों को हुक्म दे रखा था कि यदि पुत्र खड़क सिंह, शेर सिंह अथवा और भी पुत्रत्व के अभिमान में प्रशासकीय कार्यों में हस्तक्षेप करें तो मना किया जाए एवं यदि फिर भी न हटें तो कानून मुताबिक उन से निपटा जाए। एक और फरमान द्वारा तो यहां तक कह दिया था कि यदि वे स्वयं भी किसी जल्दी में अथवा शीघ्रता से कोई ऐसा हुक्म दे देवें जो राज्य की मर्यादाओं के विपरीत प्रतीत होता हो तो उस पर कार्यान्वयन रोक दिया जाए एवं मेरे ध्यान में लाया जाए। एक कहावत भी प्रचलित है कि जब एक मिहतरानी अपने रोते हुए बच्चे को चुप करवाने के लिए लोरी दे रही थी :

"आकड़ मुंडियां आकड़, रणजीत सिंह तेरा चाकर।
सदा तेरी दाई, महिताब कौर दौड़ती आई।"

तो राज्य कर्मचारियों ने पकड़ मंगाई थी कि वह महाराजा एवं उसके खानदान के संबंध में कुबोल बोल रही है। महाराजा रणजीत सिंह ने उस समय उस माई को न केवल ईनाम दिया बल्कि कहा भी था :

"ठीक कहा है माई ने। राजा चाकर होना चाहिए और उसके रिश्तेदार, मां, सास अथवा घरवाली तक सेविकाएं।"

सारी आयु-सेवा भाव रखा। यदि किसी चाटुकार ने कहा भी कि अब क्यों कमर कसे रहते हैं तो कहा कि राज्य खालसे का, मुहर अकाल की, सिक्का नानक शाह का, वह केवल ही तो है। अमृतसर की सीमा में प्रविष्ट होने पर बिना हरिमन्दिर साहिब के दर्शन किये कभी लाहौर वापिस ना जाते। स्वर्ण एवं श्वेत संगमरमर की सेवा करवा कर भी अहंकार से निर्लिप्त रहे, बल्कि यही अक्षर अंकित करने के लिए कहा :

"गुरु रामदास जी ने सेवक, सिख जानकार दास से सेवा करवाई।"

मानवीय जीवन का इतना सम्मान था कि 40 वर्ष में किसी को फांसी न लगाया अथवा गोली से नहीं उड़ाया। काबुल एवं दिल्ली की शक्तियों से अकेला जूझता रहा। सूझ बूझ इतनी तीव्र कि छोटी-छोटी बात का पता था कि कहां क्या हो रहा है। एक पादरी ने जब कहा कि वह इस लिए पंजाब आया है कि लोगों में से मृत्यु का भय निकाल सके तो उसे टोकते हुए कहा कि "भले आदमी, जब तू अटक का दरिया, बेड़ियों के पुल से पार कर रहा था तो बहुत शोर मचा रहा था "बचाओ, मैं गया, बचाओ, मैं गया।" जब दरिया पार करते स्वयं ही भय खाता है, तो वह औरों का मृत्यु-भय कैसे दूर कर सकता है।" पादरी निरुत्तर हो गया। ईरान के भेजे दूत ने जब पूछा था कि आप के पास सेना कितनी है तो कहा था, और तो मुझे मालूम नहीं, लेकिन इतना जानता हूं कि जब हरी सिंह नलूआ काबुल की ओर चढ़ाई करने की सोचे तो लोग शहर खाली करके दौड़ जाते हैं।

आजीवन प्रातः काल नहीं गंवाया, कहते भी हैं कि अब राज्य संभालने लगे थे तो ग़ैबी आवाज़ ने जहां और बातें कही थीं, एक यह कही थी कि प्रातः काल और नित्य नियम त्यागना नहीं। धर्मशाला के लोग किसी की ओर न झांकें इस लिए गुरुद्वारे के साथ जागीरें लगवाईं। धर्म-प्रचारक किसी का सहारा क्यों देखें। ग्रंथी सिंहों का वे बहुत सत्कार करते। दरबार साहिब की घंटा घर की दीवार पर अंकित शब्द ज्ञानी संत सिंह जी द्वारा स्वर्ण तथा संगमरमर की सेवा करवाई। जहां आदर दर्शाता है वहां विश्वास भी। शीश गंज से आए ग्रंथी का इतना सत्कार किया कि देख कर कई लोगों ने मुंह में उंगलियां डाल लीं। अकाल तख्त के आगे सदैव ही सर झुकाया। "नांह देख भूला बीसरे" का ही उदाहरण है। तोशा खाना श्री दरबार साहिब (छत्त) आया, भूला नहीं कि वह तो नश्वर है। ऐसा छत्त सच्चे पातशाह के सिर पर ही शोभा देता है। सेहरा आया भूला नहीं कि यह मुख सुहावै, सहज धुन बाणी वाले के दर पर ही शोभायमान होता है। सभी कुछ भेंट चढ़ा दिया।

यह भी हकीकत है कि रणजीत सिंह का विचार था कि दुनिया में उस समय प्रचलित विधानों का अध्ययन करके चिरन्तन व्यवस्था कर दी जाये कि अनुवाद करवाने उसने आरम्भ भी कर दिये थे। आज उनके दो सौवें जन्म के संबंध में जहां उनके कारनामें स्मरण कर रहे हैं, वहीं बैठ कर विचार भी करना है कि ऐसे साधन जुटाए जाएं जिस से हमारा खोया हुआ

क्षेत्र, खोया हुआ गौरव एवं मान वापिस आए। जब महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी मिसल की कमान संभाली थी तो उस समय उस की आयु केवल 12 वर्ष की थी। उस की सफलता का रहस्य था साहस के साथ बुद्धि को समन्वित कर दूर दृष्टि के सहारे सभी बाधायें दूर की जा सकती हैं।

पंजाब एवं पंजाबियत का प्रथम प्रवर्तक

– ईशर सिंह अटारी

महाराजा रणजीत सिंह काल (अठारहवीं शताब्दी) से प्रायः आठ सौ वर्ष पहले से ही पंजाब बेगानी सम्पत्ति बना आ रहा था। इस ने कई सम्राट दिल्ली के तख्त पर बैठाये। कभी यह गज़नी, कभी गौड़, कभी काबुल एवं कभी दिल्ली की सल्तनत के अधीन रहा। लेकिन आठ शताब्दियों में इस ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कभी प्राप्त नहीं किया था। रणजीत सिंह प्रथम सम्राट था जिसने पंजाब को काबुल एवं दिल्ली के अधिकार से मुक्ति दिलवाई एवं इसे एक आज़ाद सल्तनत का दर्जा दिया। अहमद शाह अब्दाली ने पंजाब को 1752 में मुगल हकूमत से छीन कर अफ़गान हकूमत में सम्मिलित किया एवं 1773 तक उसने इस पर कई हमले किये। पंजाब न केवल अपनी आज़ाद हस्ती ही गंवा बैठा बल्कि अन्दरूनी सुरक्षा एवं शान्ति भी। अहमद शाह अब्दाली के बाद उस का पुत्र तैमूर शाह एवं उस का पौत्रा ज़मान शाह पंजाब पर चढ़ाई करते रहे एवं पंजाब के खेतों एवं निवासियों को अपने घोड़ों की टापों के नीचे रौंद कर चले जाते रहे। इन आक्रमणों के कारण पंजाब ने न सुख की सांस ली और न इस का धर्म, साहित्य, कला, साहस एवं संस्कृति ही फल-फूल सकी। फलना फूलना तो क्या था यह बहुत हद तक नष्ट ही हो गया। रणजीत सिंह ने पठानों को पंजाब से बाहर उनके अपने देश में धकेल दिया एवं पिशौर, बनू, कुहाट एवं डेराजात के पठाणी ज़िलों में अपना अधिकार जमा लिया। इस तरह लम्बे समय के पठान शिकारी पंजाबियों का शिकार बन गये।

लेकिन इस से पहले पंजाबियों को बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ीं एवं भारी संग्राम एवं खून-खराबे से निकलना पड़ा। सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव जी से लेकर सिख पंथ के जन्मदाता दशम गुरु गोबिन्द सिंह तक पंजाब के निस्साहस एवं शिथिल पंजाबियों में पंजाब के प्राचीन शूरवीरों का साहस, हठ, स्वाभिमान एवं सम्मान तथा स्वतंत्रता की भावना काफी

जगृत हो चुकी थी एवं अठारहवीं शताब्दी के मध्य में व्यापक राजनैतिक अराजकता एवं अस्त व्यस्तता से लाभ उठा कर पंजाबियों ने सिखों के रूप में पंजाब के कई क्षेत्र अपने प्रभाव अधीन कर उनमें अपनी-अपनी सरदारी कायम कर ली जिनको आज मिसलों की सरदारी के नाम से याद किया जाता है। लेकिन रणजीत सिंह के जन्म एवं बालपन में इन मिसलों की स्थिति यह हो गई थी कि ये आपस में ही झगड़ रही थी एवं अपनी शक्ति को अपने ही हाथों नष्ट कर रही थीं। जैसे विदेशियों के आक्रमण के समय पंजाब की शान्ति संकटग्रस्त रहती थी, इसी तरह मिसलों की परस्पर लड़ाई भी पंजाब के चैन को भंग कर रही थी।

रणजीत सिंह ने शुक्रचकिया मिसल के मुख्य सरदार महां सिंह के घर 2 नवम्बर, 1780 को जन्म लिया था एवं उसकी शादी घनैया मिसल के मुख्य सरदारनी सदा कौर की पुत्री महताब कौर के साथ हुई थी। इस तरह वह दो मिसलों का एक तरह से सरदार बन गया। फिर उसने पंजाब की राजधानी लाहौर पर आक्रमण किया जहां कि भंगी मिसल की सरदारी थी। यद्यपि शाह ज़मान ने लाहौर की सरदारी शुक्रचकिया मिसल को दे दी हुई थी तो भी भंगियों से लाहौर खाली करवाना कोई आसान बात नहीं थी। लेकिन महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सास सदा कौर के निर्देशन एवं सहायता से वह जंग की कि भंगी पराजित हो गये एवं रणजीत सिंह का लाहौर पर अधिकार हो गया। सन् 1801 में उस को महाराजा की उपाधि दी गई। उसने यह आदेश दिया कि भविष्य में उसे "सरकार" के नाम से पुकारा जाये, जो नाम उसकी मृत्यु के पश्चात् तक भी प्रचलित रहा, जैसे :

अज्ज होवे सरकार तां मुल्ल पावे
जिहड़ीआं खालसे ने तेगां मारीआं ने

(शाह मुहम्मद)
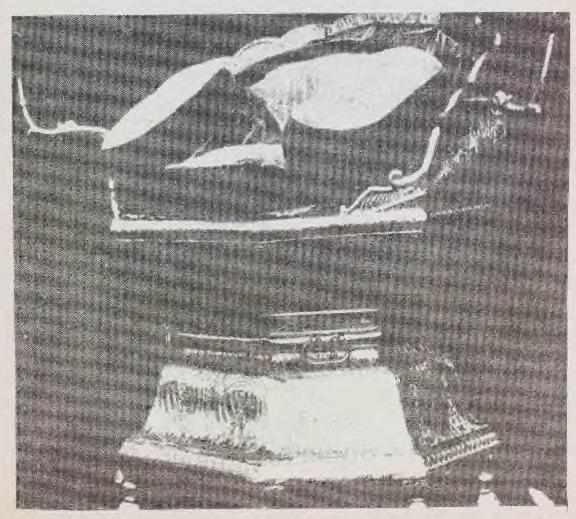
यहां रणजीत सिंह की सभी लड़ाइयों का तिथि क्रमानुसार विवरण देने की आवश्यकता नहीं, लेकिन मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि रणजीत सिंह पहला शूरवीर, सूझवान एवं प्रवीण पंजाबी था जिसने देश के इस भाग का खोया हुआ अस्तित्व, आज़ादी, शान्ति एवं एकता स्थापित करके इस को आज़ाद पंजाब का दर्जा दिया एवं फिर इस में पूरे चालीस वर्ष राज्य करके इस को स्थिर सरकार एवं सुथरा राज्य शासन दिया। वर्णनीय बात है कि जो पंजाब रणजीत सिंह ने बनाया एवं संवारा उस में उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रान्त एवं काश्मीर भी सम्मिलित था एवं इस में रहने वाले पंजाबियों पर पंजाबी राज्य करते थे। रणजीत सिंह ने पंजाब को एक संपूर्ण देश का अस्तित्व एवं दर्जा प्रदान किया। इसी कारण जब अंग्रेज़ों से पंजाब का युद्ध हुआ तो शाह मुहम्मद ने लिखा :

जंग हिन्द पंजाब दा होण लग्गा,
दोवें पातशाही फौजां भारीआं ने।

रणजीत सिंह पंजाब को एक संपूर्ण देश के रूप में छोड़ कर गया न कि एक सूबे के रूप में। इसी कारण मैं रणजीत सिंह को आज़ाद पंजाब का निर्माता अथवा खण्डित हुए पंजाब को एक संयुक्त एवं स्वतंत्र पंजाब का रूप देने वाला प्रथम निर्माता अथवा संयोजक कहता हूं।

पंजाब में रणजीत सिंह पंजाबीयत का प्रथम निर्माता था। इसके लिए हमें रणजीत सिंह की प्रशासन प्रणाली, उस की कार्य कुशलता, उस की प्रजा के सुख, आराम, खुशहाली के यत्नों के साथ-साथ पंजाब के साहित्य कला एवं संस्कृति की ओर उसकी दृष्टि की पहुंच की चर्चा करनी उचित होगी।

पंजाबीयत बहु-धर्मी समाज की देन है। भिन्न-भिन्न धर्मों के अस्तित्व के समक्ष धार्मिक सहअस्तित्व का संकल्प जो महाराजा रणजीत सिंह के राज्य से पहले बिल्कुल बिखर चुका था, बल्कि एक धर्म दूसरे धर्म के लिए आक्रमणकारी बना हुआ था, रणजीत सिंह के समय में न केवल सैद्धान्तिक तौर पर बल्कि व्यावहारिक रूप में पुनः स्थापित हुआ, बल्कि इस की सरकार ने पहली बार धर्म निर्पेक्ष लीहों पर चलना आरम्भ किया और इस का समाज धार्मिक सहअस्तित्व का परिचायक बना।

पंजाब का आज़ाद राजकीय अस्तित्व स्थापित करने के लिए रणजीत सिंह ने जो लड़ाइयां लड़ीं, वे भी सभी पंजाबियों ने मिल कर लड़ीं। यह

सही है कि रणजीत सिंह की सेना में भारी गिणती खालसा सिपाहियों एवं सरदारों की होती थी (जो कि कुछ स्वाभाविक ही थी) लेकिन जहां तक रणजीत सिंह की अपनी सूझबूझ एवं दृष्टि का संबंध है, उसने एक राजा के रूप में अपनी प्रजा के प्रत्येक वर्ग पर इतना विश्वास एवं आस्था प्रगट की कि उसके इनाम में उस की प्रजा के प्रत्येक वर्ग ने उसे अपनी सत्यता, विश्वास एवं आज्ञाकारिता प्रस्तुत की। उसके मंत्रीमण्डल में यदि सिखों के साथ हिन्दू एवं मुसलमान मंत्री होते तो उस की सेना में भी हिन्दुओं, मुसलमानों एवं विदेशी जरनैलों, सरदारों एवं सिपाहियों की कमी न होती।

मीयां ग्यासुद्दीन महाराजा के तोपखाने का कमानधारी था एवं उस की मृत्यु के पश्चात उसके सुपुत्र सुलतान मुहम्मद खां ने तोपखाने की कमान संभाली।

रणजीत सिंह की सेना में हिन्दू जरनैलों में दीवान मुहकम चन्द, राम दयाल एवं मिश्र दीवान चन्द के नाम वर्णनीय हैं और विदेशी जरनैलों में जनरल वैनवीऊरा (अतालवी), जनरल अलार एवं कर्नल कोर्ट (फ्रांसीसी) एवं कर्नल गार्डनर (आईरिश) के नाम उल्लेखनीय हैं। सेना की भर्ती में कोई साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं किया जाता था एवं यह केवल व्यक्ति के स्वास्थ्य, शूरता, स्फूर्ति एवं दृढ़ता के गुणों के आधार पर की जाती थी।

रणजीत सिंह के मंत्री मण्डल में तीन मुसलमान फकीरों के नाम उल्लेखनीय हैं। फकीर अज़ीज़ुद्दीन (विदेश मंत्री), फकीर नूर-उरूद्दीन (लाहौर के किले का सरदार जहां सारा सिक्का बारूद जमा होता था) एवं फकीर इमाम-उ-द्दीन (गोबिन्दगढ़ का गवर्नर – यह किला अमृतसर की रक्षा के लिए बनाया गया था) हिन्दुओं में से दीवान मोती राम एवं दीवान सावन मल्ल (दोनों गवर्नर थे) दीवान गंगू राम (वित्त मंत्री) मिश्र बेली राम (शाही खज़ाने का सरदार) एवं मीयां राजा ध्यान सिंह डोगरा (मुख्य मंत्री) के नाम उल्लेखनीय हैं।

रणजीत सिंह जिनको जीतता था, बिना किसी धार्मिक पक्षपात के उनके साथ उदारता का व्यवहार करता था। नवाब कुतुबुद्दीन कसूर वाले , नवाब हाफिज़ अहमद खां, मानखेड़ा एवं नवाब सरफराज़ मुल्तान वाला इस बात के उदाहरण हैं।

न केवल नियुक्तियों में ही महाराजा ने धर्म निष्पक्षता नीति लागू की बल्कि दैनन्दिन राज्य कार्य प्रणाली में भी उसने धर्म का सीधा हस्तक्षेप

समाप्त कर दिया।

महाराजा रणजीत सिंह से पहले सरबत खालसा की ओर से जो भी राजकीय निर्णय होते थे, यहां तक कि विदेशी संबंधों के बारे में भी, वे अकाल तख्त साहिब पर किये गये "गुरमत्ते" अनुसार होते थे। लेकिन महाराजा रणजीत सिंह सभी राजकीय निर्णय अपने दरबार में हिन्दू, सिख एवं मुसलमान मंत्रियों तथा परामर्श दाताओं से सहमति करते थे।

उस समय मुसलमानों को विदेशी नागरिक समझा जाता था एव हिन्दुओं को कमज़ोर वर्ग। लेकिन महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी राज्य प्रणाली के अनुसार मुसलमानों एवं हिन्दुओं को यह निश्चय करवा दिया था कि वह सिखों के बराबर के पजांबी हैं एवं पंजाब वैसे ही उनकी जन्म भूमि है जैसे सिखों की। पंजाब की नागरिकता पर सभी का एक सा अधिकार था एवं राजा सभी को समान दृष्टि से देखता था।

धर्म निर्पेक्षता एवं नागरिक समानता न केवल पंजाबीयत बल्कि मानवता का एक मूल लक्षण है एवं इसे रणजीत सिंह ने व्यावहारिक रूप में लागू कर दिखाया।

नागरिक एवं सैनिक कार्य-प्रणाली से बाहर सामाजिक स्तर पर भी महाराजा रणजीत सिंह ने बहु-धर्मी समाज का न केवल अनुमोदन किया बल्कि भिन्न भिन्न धर्मों में परस्पर सहयोग एवं सह-अस्तित्व को उत्साहित किया जो आज भी पंजाबियत का एक अपनाने योग्य सिद्धान्त माना जाता है। कहते हैं कि एक बार महाराजा को सिखों ने कहा कि मुसलमान इतने ज़ोर से आज़ान देते हैं कि उनकी नींद हराम हो जाती है। महाराजा ने तुरन्त उत्तर दिया "आप प्रत्येक मुसलमान को सुबह की आज़ान के लिये जगाने का ज़िम्मा ले लो, मैं उनकी आज़ान बन्द करवा देता हूं।" सिख निरुत्तर हो गये। इसी तरह महाराजा ने यदि सिखों के गुरुद्वारों के नाम जागीरें लगाईं तो मस्जिदों एवं मन्दिरों के नाम भी लगवाईं। यदि गुरुद्वारे बनवाये तो मस्जिदों एवं मन्दिरों का निर्माण भी किया।

रणजीत सिंह काल में जहां तक पंजाबी साहित्य एवं कला का संबंध है, इसमें प्रर्याप्त विकास हुआ। साहित्य एवं कला के विकास के लिए शान्ति एवं व्यवस्था एक आवश्यक शर्त हैं एवं सामाजिक एवं राजकीय स्थिरता दूसरी। जैसे कि हम पीछे बता आये हैं रणजीत सिंह ने पंजाब के

अस्तित्व को ठोस कदमों पर खड़ा किया एवं साम्प्रदायिक तथा सामाजिक सहअस्तित्व स्थापित किया। राज्य-कार्य की प्रणाली में धर्म-निर्लेपता का तत्व सम्मिलित किया। स्पष्ट है कि ऐसे वातावरण में ऐसे साहित्य का विकास आवश्यक होता था जिसे शुद्ध पंजाबी साहित्य कहा जा सके। अतः इस काल में किस्सा, बारें, जंगनामें एवं अन्य प्रकार के साहित्य की पर्याप्त रचना हुई। रणजीत सिंह स्वयं कवियों को संरक्षण दिया करते थे एवं प्रथा है कि हाशम रणजीत सिंह का दरबारी कवि था, जिस के निर्वाह के लिए उसने कुछ जागीर भी लगाई हुई थी। रणजीत सिंह को हाशम की यह ड्योढ़ (छन्द विशेष) बहुत प्रिय थी जिसे वह बार-बार सुना करता था :

कामल शौक माही दा मैनूं
रहे जिगर विच्च वसदा, लूं लूं रसदा।
रांझण बेपरवाही करदा
ते कोई गुनाह न दसदा,
उठ उठ नसदा।
ज्यों ज्यों हाल सुणावां रोवां,
उह देख तत्ती बल हसदा,
ज़रा न खसदा।
हाशम कम नहीं हर कस दा,
आशक होण दरस दा, बिरहों रसदा।

रणजीत सिंह के अतिरिक्त और कर्मचारी एवं सरदार भी कवियों को संरक्षण देते थे। हाशम के इलावा अहमद यार, कादरयार एवं साह मुहम्मद कवियों के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। कुछ कम परिचित नामों में मिहर सिंह, बीर सिंह, मटक, साईं दास, सुन्दर दास एवं आगरा दास के नाम लिये जा सकते हैं।

रणजीत सिंह के राज में ब्रज-भाषा में भी काफी रचना हुई एवं कुछ सूफी संतों ने भी रचना की। सूफी में से गुलाम जीलानी एवं ब्रज भाषा के कवियों में से गोपाल दास एवं गंगा राम के नाम उल्लेखनीय हैं।

यहां यह बात भी पंजाबीयत के एक विशेष लक्षण को प्रकट करती है कि पंजाबी बोली साहित्य सृजनार्थ तत्कालीन सिख, हिन्दू एवं मुसलमान तीनों सम्प्रदायों द्वारा अपनाई जा रही थी एवं रणजीत सिंह काल में भाषा साम्प्रदायिक घेरों एवं कट्टरता का शिकार नहीं बनी थी।

जहां तक चित्रकला एवं वास्तु कला का संबंध है, उस संबंध में भी कहा जा सकता है कि रणजीत सिंह की सहायता एवं उत्साह से धर्म स्थानों की सुन्दर इमारतें बनी जो हिन्दू एवं मुसलमान वास्तु-शैलियों के मिश्रण से विलक्षण पंजाबी शिल्प-शैली का प्रतीक है। रणजीत सिंह काल में निर्मित किले, बारांदरियां, शीश महल, हवेलियां एवं बुंगे आदि भी बताते हैं कि पंजाब की भवन-कला उस समय बहुत आगे बढ़ रही थी।

चित्रकला के क्षेत्र में कांगड़ा चित्रकला शैली अपने शिखर पर थी एवं उस शैली में बने बहुत से चित्र हमारी चित्रकला के कोष का बहुमूल्य दाय हैं।

संगीत के क्षेत्र में सिख गुरुओं की आरम्भ की गई कीर्तन परम्परा और विकसित हुई एवं दूसरी ओर सूफियों के डेरों में क़व्वाली की परम्परा।

इस तरह हम देखते हैं कि रणजीत सिंह ने पंजाबीयत तथा पंजाबी संस्कृति के वे लक्षण, जो सैंकड़ों वर्ष की राजकीय अस्तव्यस्तता एवं धार्मिक कट्टरता के कारण लगभग नष्ट हो चुके थे, को पुनः जीवन दान दिया एवं उन्हें व्यावहारिक रूप में पंजाबियों को ग्रहण करवाया। इन बातों से महाराजा पंजाबीयत का न केवल प्रथम निर्माता बना बल्कि उस का साक्षात् प्रतीक भी। जब महाराजा की मृत्यु हुई तो एक कवि ने कुछ इस तरह के भाव प्रगट किये "कोई कहता है कि पंजाब का महाराजा मर गया है, कोई कहता है कि पंजाब का शेर मर गया है लेकिन मैं कहता हूं कि रणजीत सिंह के मरने एवं जलने से पंजाब का सारा सौभाग्य ही जल गया है।"

मैंने महाराजा रणजीत सिंह को पंजाब एवं पंजाबियत का प्रथम निर्माता कहा है, लेकिन पंजाबी का नहीं। पंजाबी साहित्य ने यद्यपि रणजीत सिंह काल में काफी प्रगति की लेकिन जहां तक पंजाबी बोली का संबंध है, उसे रणजीत सिंह की सरकार की ओर से कोई सरपरस्ती प्राप्त न हुई क्योंकि इतिहास साक्षी है कि रणजीत सिंह ने पंजाबी को न शिक्षा और न ही राज्य कार्य की भाषा ही बनाया। सिख दरबार की राज भाषा फारसी ही थी एवं कहीं कहीं अरबी भी प्रयोग की जाती थी। रणजीत सिंह के सिक्के पर एवं तोपों आदि पर जो कुछ भी अंकित किया जाता था, वह फारसी अथवा अरबी में ही होता था एवं शाही फरमान भी फारसी में ही जारी होते थे।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस तरह महाराजा रणजीत सिंह ने कोई अनुमान से ही नहीं किया बल्कि सोच समझ कर ही किया था। महाराजा रणजीत सिंह की नीति पूर्णतया पंजाब की बहु-धार्मिक प्रजा में एकता, प्यार एवं भ्रातृत्व उत्पन्न करने की थी क्योंकि पंजाब एवं पंजाबीयत के निर्माण करने के लिए यह नीति बिलकुल उचित थी। नहीं तो यदि कोई अधर्मी अथवा विदेशी शक्ति विजित और इस देश की प्रजा का धर्म, स्वाभिमान और संस्कृति समाप्त करना, दीर्घकाली अधिकार जमाना चाहे तो राजकीय कब्ज़े के पश्चात् सबसे पहले होते हैं। सर्वप्रथम प्रजा की भाषा एवं धर्म को बदलने के यत्न करने उस के लिए आवश्यक होते हैं। यह सही है कि उस समय पंजाब की जनता के अधिकांश की बोल चाल की मुख्य भाषा पंजाबी थी लेकिन यह भी सत्य है कि सैंकड़ों वर्षों से फारसी एवं अरब देश की राज्य भाषा चली आई थी एवं एक विशेष धर्म के अनुयायियों की उस के साथ धार्मिक एवं भावुक एकता जुड़ी हुई थी। यदि रणजीत सिंह फारसी एवं अरबी को हटा कर राजकार्य की भाषा पंजाबी बना देते तो निश्चय ही इससे उस साम्प्रदायिक एकता को चोट पहुंच सकती थी जो कि रणजीत सिंह अपने पंजाब में उत्पन्न करने में सफल हुआ था। अतः उस समय पंजाबी बोली को तुरन्त राजकीय सरपरस्ती न देनी अथवा राज्य-बल से प्रचलित न करना ही पंजाब एवं पंजाबीयत की जड़ों को पक्का करना था।

इस तरह इस दृष्टि से भी रणजीत सिंह को उचित रूप में पंजाब एवं पंजाबियत का प्रथम निर्माता कहा जा सकता है। वैसे उसकी मृत्यु से सवा सौ वर्ष पश्चात् भी हम देखते हैं कि एक विशेष बोली के साथ जुड़ी एक विशेष वर्ग की धार्मिक भावनाओं के कारण अभी भी पंजाबी बोली को पंजाबियत का पूर्ण निर्माता का वह स्थान पाने का मौका नहीं दिया जा रहा, जितना कि शक्तिशाली पंजाबियों की शक्तिशाली मातृ-भाषा होने के रूप में यह पाने में सक्षम है। अतः बोली की समस्या पर्याप्त जटिल है। यदि महाराजा रणजीत सिंह पंजाबी को शासकीय तौर पर ग्रहण करने में तेज़ी करता तो हो सकता था कि उस समय के पंजाब के आज़ाद अस्तित्व एवं पंजाबियत के सामान्य आचरण का निर्माण पर्याप्त पिछड़ जाता।

पंजाब को उस का आज़ाद अस्तित्व एवं पंजाबियत को उसका सही स्थान प्रदान करने वाले महाराजा रणजीत सिंह को आज इतिहासकारों एवं विद्वानों द्वारा जिन शब्दों के साथ याद किया जाता है वे सिद्ध करते हैं कि

रणजीत सिंह सचमुच ही सदा के लिए पंजाब एवं पंजाबियत का प्रतीक बना रहेगा। महाराजा के संबंध में कुछ मत इस प्रकार हैं :–

''रणजीत सिंह में नर्म दिल एवं उदारचित शासक के सभी गुण मौजूद थे।वे कतिपय उन सर्वोतम शासकों में से थे जो कभी भारत पर राज्य करते रहे थे। वे सचमुच ही एक नेक बादशाह थे। इस का प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि किसी गंभीर अपराध पर भी उसने कभी किसी को फांसी नहीं दी। हमारी यात्रा के समूचे समय में ही उस की अपार दयालुता एवं अच्छा स्वभाव हमारे समक्ष रहा एवं यह बताता है कि यह गुण उस का नैसर्गिक स्वभाव था (न कि कृत्रिम)।''

''एकाकी मनुष्य (द्वारा) इतना विशाल साम्राज्य बिना रक्तपात से स्थापित किये जाने का उदाहरण कदाचित ही विश्व में कहीं उपलब्ध हो।''

– (बैरन कार्लवोन ह्यूगेल)

''रणजीत सिंह का चालीस वर्षीय संग्राम उस का नाम जूलीयस सीज़र से लेकर नैपोलियन बोनापार्ट तक के महान् जरनैलों एवं बादशाहों में सम्मिलित कर देता है।''

(सरुलेपाल)

''शूरवीरता, अनुशासन एवं निडरता महाराजा रणजीत सिंह के जीवन एवं संदेश के मूल स्रोत थे। हमें आज उस जैसी देश भक्ति, दृढ़ लग्न एवं साहस की आवश्यकता है। इस की महानता को स्मरण कर लेना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उस जैसा बड़ा बन कर जीना भी आवश्यक है।''

(सुभाष चन्द्र बोस)

''रणजीत सिंह एक असाधारण पुरुष है – वह बोनापार्ट की मूर्ति है। उस की बातचीत चमत्कारिक प्रकार की होती है। वह पहला सूझवान भारतीय है जिसे मिलने का मुझे अवसर मिला है। उस की सूक्ष्मदर्शी बुद्धि उस की जाति बेपरवाही को बराबर कर देती है। उस ने मुझ से भारत, बर्तानिया, यूरोप, बोनापार्ट एवं उस संसार, नरक, स्वर्ग भगवान एवं शैतान

विषयक सैंकड़ों प्रश्न पूछे हैं।"

(विक्टर जैक्युमांट)

"रणजीत सिंह ने काश्मीर एवं डेराजात जीत लिये और पेशावर तथा उसके अधीन रियासतों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। उस के बिना ये क्षेत्र दोबारा जीते न जाते अथवा बिल्कुल ही न होते। काश्मीर जीतने से उस का राज्य उत्तर की ओर फैल गया जिस का परिणाम यह हुआ कि उत्तर पश्चिम की ओर हमारी सीमाएं अन्तिम तौर पर तय हो गईं। रणजीत सिंह न होता तो ये क्षेत्र, जो आरम्भ से ही भारत का भाग थे, हमेशा के लिए हम से छिन जाते।"

(प्रौफेसर श्री राम)

"रणजीत सिंह की उस के समकालीन योद्धा नैपोलियन बोनापार्ट के साथ प्रायः तुलना की जाती है लेकिन (भाग्य का धनी) सिपाही नैपोलियन छोटे से टापू सेंट हैलीना में एक जलावतन एवं जंगी कैदी की हैसीयत में मरा जब कि "नियती के बादशाह" एक विशाल साम्राज्य एवं शक्तिशाली युद्ध प्रिय जाति के निर्माता रणजीत ने अपनी सभी विजयों एवं प्राप्तियों को संजोये रखा एवं अपनी शक्ति एवं प्रभुत्व के शीर्ष पर पहुंच कर तब नियुक्त हुआ जब पंजाब का प्रत्येक व्यक्ति जाति-पाति एवं धर्म के पक्षपात के बिना उसे प्यार करने लगा था।"

(गुरमुख निहाल सिंह)

"रणजीत सिंह को अफगानिस्तान के उस साम्राज्य के भाग्य का निर्णय करने के लिए मध्यस्थ मान लिया गया था जिस के पूर्वजों ने कभी अपने घोड़ों की टाप के नीचे रौंद दिया था। भारत के विदेशी शासक रणजीत सिंह को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते एवं आदर पूर्वक व्यवहार करते थे।"

(कन्निघम)

"महाराजा तीक्षण बुद्धि, विवेक, ईश्वरीय भय मानने वाला, विशाल

हृदय एवं न्याय-प्रिय शासक था। उस ने केवल अपनी तलवार के ज़ोर पर कई क्षेत्र जीते एवं अपनी शक्ति से ही उनको सूत्र-बद्ध किये रखा। पंजाब जो विदेशियों के पांवों अधीन रौंदा रहता था एवं बिखर रहा था, उसे रणजीत सिंह ने अपने बाहुबल एवं राजनीतिक सूझ बूझ से एक संयुक्त साम्राज्य बना दिया। साम्प्रदायकता के कुष्ठ को उस के राज्य में कोई स्थान नहीं था एवं उस के जरनैलों, वज़ीरों एवं अहलकारों में सिख, हिन्दू एवं मुसलमान सभी को एक जैसा ही स्थान मिलता था।

हम आज भी महाराजा को अपना संरक्षक पिता मानते हैं एवं प्रत्येक वर्ष जैसे अपने दादा पड़दादा के श्राद्ध मनाते एवं दान देते हैं, उसी तरह महाराजा रणजीत सिंह के नाम पर दान देते एवं श्राद्ध करवाते हैं।

(दीवान बहादुर दीवान किशन किशोर)

''रणजीत सिंह ने बिखरी हुई छोटी-छोटी रियासतों को समाप्त कर पंजाब में एक शक्तिशाली एवं स्थिर शासन कायम किया। उस ने पठानों को उनके अपने मुल्क में धकेल दिया एवं काबुल के बहुत से क्षेत्र पंजाब में सम्मिलित कर लिये। महाराजा का राज्य स्थापित होने से देश में शान्ति एवं सुरक्षा आई एवं किसान फिर खेती में और व्यापार वाणिज्य में व्यस्त हो गये। देश में जीवन पुनः प्रवाहित होने लगा। दूसरी ओर सिख सैनिकों ने भी इधर-उधर मारधाड़ करने की अपनी पुरानी आदत छोड़ कर रणजीत सिंह की नियमित सेना में भर्ती होना आरम्भ कर दिया एवं देश की हकूमत में हिस्सा लेने लगे।

जो कुछ अहमद शाह अब्दाली न कर सका हो सकता था कि हैस्टिंगज़ अथवा कोई अहिम्रस्ट कर देता। आहलूवालिया, घनैया, भंगीआं शुकरचकिया एवं रामगढ़िया मिसलों के सरदारों की स्थिति भी वैसी ही होती जो अमीर खां, गफूर खां, वासल खां एवं चेतू की हुई। रणजीत सिंह न होता तो पंजाब का इतिहास वह न होता जो आज है।''

(प्रोः सय्यद अब्दुल कादर, लाहौर)

''रणजीत सिंह राजकीय बुद्धि विवेक की मूंह बोलती तस्वीर था। वह अपने लोगों का जन्मजाता नायक एवं नेता था। वह अपने सलाहकार एवं

अहलकार, अनुपम दूरदर्शिता से चुनता था। विशेष पद केवल सिखों की जागीर ही नहीं हुआ करते थे बल्कि दरबार में बहुत से उच्च पद मुसलमानों एवं हिन्दुओं के पास भी होते थे।"

(प्रोः अब्दुल मजीद खां)

पंजाब का प्रथम पंजाबी शासक महाराजा रणजीत सिंह

– डा० एस. आर. बख्शी

अहमदशाह अब्दाली के वर्ष 1766-67 के अन्तिम आक्रमण के पश्चात् सिखों के नेता जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से संबंध रखते थे, सतलुज दरिया के दोनों किनारों पर अलग-अलग समूहों में बस गए थे, जो कि मिसलों के नाम से परिचित थे। "मिसल" शब्द अरबी शब्द है जिसका अर्थ है "बराबर" अथवा मिलता जुलता एक-जैसा। जे. डी. कन्निघम ने इन मिसलों को एक धर्म तांत्रिक, रजवाड़ा शाही का समूह बताया है। इन सिख मिसलों में धर्म एवं जाति के आधार पर बहुत ज़्यादा आपसी मतभेद थे। इस लिए इन मिसलों के नेता शत्रु के साथ लड़ने के लिए कोई एक सेना नहीं बना सके, बल्कि इस की बजाये वे हमेशा आपस में एक दूसरे के साथ लड़ते रहते थे।

महाराजा रणजीत सिंह जी की अल्पकाल में ही महानता बचपन में इनके सुचारू प्रशिक्षण का ही परिणाम है। बचपन में उनकी शिक्षा तक नहीं हुई फिर भी वे एक विशेष चरित्र के अग्रणी नेता बने। अभी वे 10 वर्ष की आयु के भी नहीं हुए थे कि उन्होंने सैनिक अभियान में अपने पिता जी का साथ देना आरम्भ कर दिया और एकाधिक अवसरों पर उनकी ज़िन्दगी को खतरा पैदा हुआ। 1790 में जब रणजीत सिंह ने शुक्रचकिया मिसल की बागडोर संभाली, उस समय जेहलम तथा सतलुज के मध्य स्थित क्षेत्र पर मिसलों का नियंत्रण था। शक्तिशाली भंगी मिसल का गुजरात, स्यालकोट, लाहौर एवं अमृतसर ज़िलों पर नियंत्रण था। वज़ीराबाद रियासत एक खुदमुखत्यार सिख सरदार जोध सिंह के अधीन थी। गुजरांवाले के इर्द-गिर्द का क्षेत्र शुक्रचकिया मिसल के अधीन था और इनके नियंत्रण अधीन स्यालकोट, गुजरात, गांव दादन खां एवं म्याणी आदि क्षेत्र थे। अमृतसर और लुधियाना के बीच का दुआबे का क्षेत्र विभिन्न

सरदारों के अधीन बंटा हुआ था। घन्हैया मिसल ने गुरदासपुर ज़िले के नगर बटाला में अपना मुख्यालय रखा हुआ था और आहलूवालिआ मिसल का कपूरथला पर नियंत्रण था। रामगढ़िया मिसल का जालंधर, दुआबे के क्षेत्रों के साथ-साथ अमृतसर तथा गुरदासपुर के कुछ क्षेत्रों पर नियंत्रण था। मुलतान एवं लाहौर के बीच का क्षेत्र कसूर के पठानों के अधीन था, नक्कई मिसल के सरदारों के पास पाकपटन एवं झंग स्यालकोट क्षेत्र था। इनके अतिरिक्त कई मुसलमान एवं राजपूत सरदार रजौरी, भिंबार, जम्मू के साथ लगते क्षेत्रों पर राज्य करते थे। एक हिन्दू राजा संसार चंद कांगड़े की पहाड़ियों पर राज्य करता था। चम्बे का क्षेत्र एक और सरदार राजा चढ़त सिंह के अधीन था।

लाहौर शहर सैनिक स्थिति के दृष्टिकोण से इस तरह स्थित था कि उस ने रणजीत सिंह के स्वाभिमान को बहुत अधिक बढ़ा दिया और रावी दरिया के साथ सभी क्षेत्रों में एक उभर रहे सिख शासक के नाते इस स्थिति ने उस की स्थिति को और दृढ़ बना दिया। इस से मिसलों के अन्य सरदारों के मन में भय एवं आतंक उत्पन्न हो गया। परिणाम स्वरूप लोगों में महाराजा के प्रति विश्वास जागृत हो गया और महाराजा ने और क्षेत्रों के प्रसार के लिए अपनी सेनाओं की परेड़ को तेज़ करने में कोई भी मौका हाथ से न गंवाया। एक अति प्रवीण सैनिक जरनैल की तरह उसने अपनी सैनिक नीति का प्रयोग किया और अपनी दूर दृष्टि, राजनीति के अनुभव के बल पर भारत के इतिहास में लासानी सफलता प्राप्त की। यह कार्य उन्होंने शक्ति की बजाये अपने सुदृढ़ प्रबन्ध द्वारा सम्पन्न किया और इस तरह हर शहर बाद में उनके हाथ ही रहा। आगामी तीन अथवा चार वर्षों के दौरान उनकी यह सफलता अन्य सरदारों, जो कि स्वतंत्र रूप से शासन चलाते थे, की आंखों में चुभने लगी। उन्हें महसूस हुआ कि रणजीत सिंह का मन्तव्य उन्हें अपने अधीन करना है। उनकी ईर्ष्या इतनी बढ़ गई कि उन्हें अपने आप को मजबूरन वसूली की निरंकुशता से बचने का उपाय भी न सूझा। जिस सरदार की मृत्यु हो जाती थी उस का क्षेत्र महाराजा रणजीत सिंह ज़ब्त कर लेता था।

लाहौर में अपनी शक्ति की धाक जमाने के शीघ्र ही पश्चात् महाराजा ने अपने पड़ौसी सरदारों की ज़मीन एवं सम्पत्ति अपने अधीन करने की एक बड़ी योजना बनाने के लिए सेना संगठित की। इस में कोई शक नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी मन्तव्य-पूर्ति में उन्हें

शानदार सफलता प्राप्त हुई। वर्ष 1809 तक उन्होंने अमृतसर, कसूर, जालंधर, मीरोवाल, निरोवाल, जम्मू, स्यालकोट, वज़ीराबाद, जैसरवाल, दिलबागगढ़, फरीदकोट, नकोदर, लुधियाना, सरहिंद, जगराओं, शेरगढ़, रहीमाबाद, दाखा, घुंगराणां, अम्बाला एवं बड़ीआ जीत लिये। फुलकीआं राज्य के सरदारों एवं कांगड़ा पहाड़ियों के शासक राजा संसार चंद ने महाराजा का लोहा मान लिया।

अमृतसर की संधि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् महाराजा में काफी विश्वास उत्पन्न हो गया जिससे उसको मुलतान, काश्मीर, पेशावर, एवं डेराजात पर शासन करने के लिये बहुत उत्साह मिला। उसने इन क्षेत्रों के शासकों के विरुद्ध दीवान मुहकम चंद एवं हरी सिंह नलवे जैसे योग्य जरनैलों, जिनमें शानदार नेतृत्व करने की दृढ़ सामर्थ्य थी, से अनगिनत सैनिक अभियान आरम्भ करवाए। इस तरह रणजीत सिंह ने अपनी शक्ति से एक विशाल राज्य की स्थापना की, जो लद्दाख से दरिया सतलुज एवं पंजाब के दक्षिण पश्चिम में शिकारपुर तक फैला हुआ था।

महाराजा रणजीत सिंह एवं अंग्रेज़ों के मध्य हुई अमृतसर की संधि में भूमिका सहित चार शर्तें थीं, जिस से एंग्लो-सिख संबंधों पर 1809 से लेकर 1839 तक (महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु तक) गहरा प्रभाव पड़ा। एक ओर यह एक योग्य, उत्साही, दूरदर्शी सफल सिख सरदार द्वारा माना गया एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ था, जिस में से रणजीत सिंह की यह इच्छा प्रबल नज़र आती थी कि वह किस तरह तराइं एवं सिख-सतलुज के क्षेत्रों को अपने अधीन कर सकता है एवं दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार के एक निर्माणवादी शासक की ओर से हुई संधि थी जिस की राजनीति, युद्ध-नीति एवं युद्ध शक्ति को किसी तरह भी चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

अंग्रेज़ों और सिखों के संबंधों में इस संधि को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस संधि से लुधियाना एवं दिल्ली के निकट फिलौर घाटों पर दरिया के किनारे दरम्यान तक के क्षेत्रों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार के बढ़ रहे राजनीतिक एवं क्षेत्रीय हितों को सुरक्षा की गारंटी मिलने के साथ-साथ यह क्षेत्र लाहौर की सरकार की शानदार एवं बिस्तारवादी रूप-रेखा से भी सुरक्षित हो गया। इसके अतिरिक्त, इस संधि से महाराजा रणजीत सिंह को अपना राज्य पूर्व (देहली की ओर) की ओर बढ़ाना

मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव हो गया।

लेकिन इस से महाराजा रणजीत सिंह के गौरव एवं दूरदृष्टि का और भी ज्ञान होता है कि उसने आप को, अपने राज्य को और सब से अधिक अपनी प्रजा को अंग्रेज़ों से अचानक एवं योजनाबद्ध तबाही से कैसे बचाया, जब कि उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में अंग्रेज़ों का एक मात्र उद्देश्य भारत के गवर्नर जनरल की ओर से लागू की गई नीति के अनुसार - जहां तक हो सके अधिकाधिक क्षेत्रों को हथियाना एवं राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना था। उसने निश्चय ही अपने राज्य को, 1809 से लेकर अपनी मृत्यु के समय (1839 तक) अंग्रेज़ों के प्रचण्ड आक्रमणों से बचाये रखा।

कुछ इतिहासकारों ने महाराजा रणजीत सिंह के अंग्रेज़-पक्षीय व्यवहार एवं अंग्रेज़ों से संबंधित नीतियों की असफ़लता के कारण उस की आलोचना की है। अंग्रेज़ अब उस की सीमाओं तक आ पहुंचे थे एवं उस की शक्ति एवं कमज़ोरियों पर पूरी नज़र रखते थे एवं आक्रमण करने के लिए किसी अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में थे।

कुछ भी हो, यह संधि दोनों पक्षों में पूर्ण भरोसा, विश्वास और यकीन पैदा करने में असफल रही। इस संधि से परस्पर संशय उत्पन्न हो गये। एक दूसरे के अधिकार अधीन क्षेत्रों में जासूसी करने के लिए जासूस छोड़ दिये गये। परिणामस्वरूप महाराजा रणजीत सिंह ने लुधियाना के सामने फिलौर में तथा बाद में गोबिन्दगढ़ में अपनी सीमा-चौकियों को मज़बूत किया।

लाहौर का सरदार व्यक्तिगत रूप में किसी राजनीतिक झगड़े में पड़ने से स्वाभाविक रूप में पूर्णतः सजग था जिससे कि एक शासक के रूप में उस की बढ़ रही लोकप्रियता प्रसिद्धि को किसी प्रकार का आघात न लगे। असल में उस को ऐसी संधि के लिए राज़ी करना मुश्किल था, जिससे वह निर्बल हो जाये। इस लिए उस ने एक सुरक्षित खेल खेलना चाहा जिससे उसको निकट भविष्य में किसी मुश्किल का सामना न करना पड़े।

इस में कोई संदेह नहीं कि महाराजा में जन्म से ही शासक के से सभी महान गुण विद्यमान थे। लोग उसके आदेश पूर्णतः पालन करते थे। उस की ओर से अपने जीवन-काल के अन्तिम वर्षों दौरान किया गया शासन भी उस की महानता का साक्षी भरता है। रणजीत सिंह बहुत सी खूबियों का मालिक एवं अपनी प्रजा में बहुत लोकप्रिय था। उस की प्रजा उसे प्रेम एवं

श्रद्धा अर्पित करती थी। लैपलग्रिफन का मत था : "यद्यपि उस की मृत्यु उपरान्त आधी शताब्दी व्यतीत हो गई है, लेकिन प्रान्त में उस का नाम अभी भी एक घरेलू शब्द है और उसकी तस्वीर महलों एवं झौंपड़ियों - हरेक के हृदय में बसी हुई है। यह अमृतसर एवं देहली के हाथी-दान्त चितोरी का मनपसंद विषय है।

महाराजा एक श्रेष्ठ घुड़सवार एवं निपुण शमशीरबाज़ था। वह सचमुच ही शक्तिशाली, दयावान, उद्यमी, उत्साही एवं सहनशील व्यक्ति था। इस के अतिरिक्त उस में कार्य करने की आश्चर्यजनक क्षमता थी। वह सुबह से लेकर संध्या तक अपने कार्य में जुटा रहता था। वह शेरशाह के असूलों पर चलता था कि महान बनने के लिए हमेशा उद्यमी बने रहना चाहिए। कार्य करने के अथक सामर्थ्य से उसने हमेशा बहुत ही उद्यमी एवं सरगर्म जीवन जिया।

लाहौर के सरदार में असाधारण हौसला था जिसने घोर लड़ाइयों में अपनी सेनाओं का पथ-प्रदर्शन किया एवं अपनी जीवन-रक्षा की परवाह किये बिना कई मुसीबतों का सामना किया। निडरता के इन गुणों के कारण ही आप को शेर- ए- पंजाब की उपाधि मिली।

रणजीत सिंह अनपढ़ होने के बावजूद भी तीक्ष्ण बुद्धि का मालिक था। प्रायः वह विद्वानों एवं सुशिक्षित व्यक्तियों की संगति चाहता था जिस से वह शासन करने की बहुत सही नई तकनीकें अपने देश तथा शेष संसार के संबंध में बहुत कुछ सीखता रहता था। वह फारसी भाषा बोल सकता था जिस में सरकारी रिकार्ड रखा जाता था।

रणजीत सिंह एक सूझवान शासक एवं महान राजनीतिज्ञ था। उस की राजनीतिक तीक्ष्ण बुद्धि का पता उस के अंग्रेज़ों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों से लगता है कि जिनके साधनों एवं सैनिक शक्ति का मुकाबला 19वीं शताब्दी में कोई नहीं कर सकता था। अतः उसने अपने शासनकाल के दौरान अपने राज्य को अंग्रेज़ों के साथ युद्ध करने के संकट में नहीं पड़ने दिया।

एक निपुण प्रशासक की तरह महाराजा ने एक शानदार दरबार स्थापित किया। वे चांदी की टांगों एवं बाज़ुओं वाली कुर्सी पर बैठा करते थे। बातचीत अधिकांशतः पंजाबी भाषा में होती थी, लेकिन सरकारी कार्यवाही फारसी भाषा में लिखी जाती थी। दीवान मुहकम चन्द, दीवान

मोती राम, फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन, नूरउद्दीन, हरी सिंह नलवा, शाम सिंह अटारी वाला, देसा सिंह मजीठा, लहणा सिंह, राजा सिंह, राजा ध्यान सिंह राजा गुलाब सिंह एवं राजा सुचेत सिंह उसके प्रसिद्ध दरबारी थे। इस के अतिरिक्त बैनतूरा, ऐलार्ड एवं अवीतबेल जैसे विश्वासी एवं सुप्रसिद्ध यूरोपीयन जरनैल भी महाराजा के दरबार में भाग लेते थे।

सैद्धान्तिक रूप में रणजीत सिंह एक संपूर्ण शासक थे। लेकिन वे सर्वदा अपने मंत्रियों का परामर्श लेते थे एवं बहुत से प्रशासकीय कार्यों में उनके परामर्श का सम्मान भी करते थे। उन्होंने अमृतसर की सौध्र अज़ीज़ुद्दीन के परापर्श पर ही की। महाराजा अपने आप को सदैव ''खालसे'' का सेवक ही समझते थे और उन्होंने अपनी सरकार को ''सरकार-ए-खालसा जी'' का नाम दिया। उन की सरकारी मोहर पर ''अकाल सहाय'' (ईश्वर हमारी सहायता करे) अंकित था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने सिक्के भी गुरु नानक एवं गुरु गोबिन्द सिंह के नामों पर चलाये। वे अपने राज्य में न्यायप्रिय शासक थे एवं न्याय करना अपना धर्म समझते थे। क्षमा देने का अधिकार भी उनके अपने पास ही था।

महाराजा रणजीत सिंह एक अद्वितीय व्यक्तित्व

– प्रयाग नारायण त्रिपाठी

दो शताब्दी पूर्व पंजाब की धरती पर पैदा हुए देश के महान सपूत, महाराजा रणजीत सिंह सुयोग्य प्रशासक, महान योद्धा, धर्म निर्पेक्ष शासक एवं मानवता के गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में सर्वदा याद किये जायेंगे। उनके पौरुषत्व की छाप भारतीय इतिहास पर अंकित हो चुकी है।

पंजाब की इन सफलताओं की नींव लगभग 500 वर्ष पहले गुरु नानक देव जी के चिन्तन ने एवं तत्पश्चात् सिखों के गौरवमय सरदार, महाराजा रणजीत सिंह ने रखी थी। 13 नवम्बर, 1780 को गुजरांवाला में पैदा हुए रणजीत सिंह 10 वर्ष की आयु में ही अपने पिता के साथ विभिन्न सैनिक दौरों पर जाने लगे थे। 12 वर्ष की आयु में पिता का स्वर्गवास हो जाने पर सारी ज़िम्मेवारी उनके कंधों पर आ पड़ी जिसे उन्होंने पूरी तरह निभाया। 19वीं शती के आरम्भ में ही उन्होंने लाहौर पर कब्ज़ा करके 19वीं शताब्दी के आरम्भ में संपूर्ण भारत पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो जाने के पश्चात् स्वतंत्र पंजाब में अपने शक्तिशाली एवं स्वतंत्र राज्य की नींव रखी।

रणजीत सिंह से पहले पंजाब के बहुत सारे क्षेत्र सिखों की अलग-अलग मिसलों के अधीन थे, जिन में कोई परस्पर मेल-जोल नहीं था। महाराजा रणजीत सिंह 1792 में अपने पिता की मिसल के मुखिया बने एवं आगामी 6 वर्षों में उन्होंने सतलुज के पश्चिम की सभी सिख मिसलों को एकता की माला में पिरो दिया एवं अफगान शासक ज़मान के आक्रमण को असफल कर दिया। 1801 में सभी सिखों ने उन्हें अपना एवं पंजाब का "महाराजा" मान लिया। महाराजा रणजीत सिंह ने इस के पश्चात् पेशावर, मुलतान, कांगड़ा, काश्मीर एवं अनेक प्रदेश अपने राज्य में मिला लिये।

जिन सफलताओं के लिए महाराजा रणजीत सिंह को विशेष रूप से

स्मरण किया जायेगा उन में मुख्य ये हैं कि अपने शासन काल में उन्होंने अपनी दूर तक फ़ैली साम्राज्य की प्रजा को एक न्यायप्रेमी, लोकतांत्रिक एवं योग्य शासक के रूप में संतोष एवं समृद्धि प्रदान की। राजनीतिक दृष्टिकोण से महाराजा रणजीत सिंह ने सिख धर्म के अनुयायी होते हुए भी राज्य के क्षेत्र में सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान किया और योग्यता की सराहना की। उनके दरबार तथा राज्य में सर्वोच्च पद सभी के लिए प्राप्य थे। उनके सर्वाधिक विश्वासपात्र मंत्री थे – फकीर अज़ीज़ुद्दीन, जिन्होंने जीवन-भर महाराजा साहिब की वफादारी के साथ सेवा की। डोगरा राजा ध्यान सिंह अपनी प्रतिभा एवं स्वामी भक्ति के नाते प्रधान-मंत्री पद तक पहुंचे। मेरठ का एक ब्राह्मण जमादार खुशहाल सिंह भी इसी तरह अपने गुणों के कारण उच्च पद पर पहुंचा। कई यूरोपियों को भी महाराजा के दरबार एवं शासन में प्रमुख स्थान मिला। जहां तक शासन के क्षेत्र का संबंध था हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख सभी के लिए महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में समान अवसर प्राप्त थे। वास्तव में भारत में वह धर्म निर्पेक्ष राजनीतिक व्यवस्था का एक आरम्भिक परन्तु बहुत ही सफल प्रयोग था।

अपनी प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने के लिए महाराजा रणजीत सिंह ने जो महत्वपूर्ण प्रयत्न किये उनके लिए देश सदैव उनका ऋणी रहेगा। पंजाब विशेष रूप में किसान प्रान्त है। इस लिए अपना राज्य स्थापित करने के पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह ने किसानों की दशा सुधारने की ओर सब से अधिक ध्यान दिया। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि वह स्वयं एक साधारण किसान परिवार में से थे एवं किसानों की दशा से परिचित थे। संभवत: वे भारत के पहले ऐसे शासक थे जिन्होंने काश्त करने वालों को भूमि के स्वामित्व के अधिकार देने के सिद्धान्त को लागू किया। इस के साथ ही मध्यस्थों के स्थान पर किसानों से लगान की वसूली सीधी होने लगी। कुओं की मलकीयत भी पहली बार किसानों को प्राप्त हुई। इन दिनों यद्यपि ये सुधार साधारण से लगे, किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त में जब कि सामंती राज्य का बोलबाला था, ये क्रान्तिकारी सुधार ही कहलायेंगे। इन से ही पंजाब कालक्रम में देश में अनाज भण्डार का क्षेत्र कहलाने लगा।

औद्योगिक व्यवसायों को उत्साहित करने के लिए महाराजा रणजीत सिंह ने अनेक कार्य किये। मुलतान के रेशम उद्योग, काश्मीर के पशमीना एवं शाल उद्योग, अमृतसर के फुलकारी उद्योग एवं चम्बा और कसूर के चप्पल उद्योग को महाराजा के शासन काल में विशेष उत्साह मिला। इस

से जहां जनसाधारण को राहत मिली, वहां राज्य को भी अपनी आर्थिक दशा सुधारने का अवसर प्राप्त हुआ।

किसी भी प्रशासन की अच्छाई की कसौटी यह मानी जाती है कि प्रशासक किस सीमा तक न्याय-प्रियता को अपनाता है। न्याय का शासन वास्तव में आज के प्रगतिशील लोकतंत्र की बुनियाद है। महाराजा रणजीत सिंह ने न्यायपूर्वक शासन करने के जो उदाहरण पेश किये वे उनमें पहले शासकों में विशेषतया अंग्रेज़ी शासन काल में नहीं मिलते। महाराजा ने लाहौर के कोतवाल को लिखित अधिकार दिया हुआ था कि यदि मैं स्वयं राज्य का प्रमुख दोषी पाया जाऊं तो मेरे विरुद्ध भी कार्यवाही करने से संकोच न किया जाये।

एक बार जब उनके एक बहुत ही प्रिय सरदार हरी सिंह नलवा के संबंध में उन्हें मालूम हुआ कि वे निर्धारित संख्या से कम सैनिकों को भर्ती कर रहे हैं और फिर भी वे उनके लिए पूरा वेतन खज़ाने से प्राप्त कर रहे हैं, तो सरदार नलवा की जायदाद को ज़ब्त करने का हुक्म दिया गया। इस तरह जब एक बार महाराजा रणजीत सिंह को मालूम हुआ कि बहुत से सैनिक अपने हिस्से का एक सेर राशन खाने की बजाय बेच देते हैं, तो महाराजा ने तुरन्त राशन की मात्रा घटा कर आधी कर दी एवं चौकसी बढ़ा दी जिस से राशन का दुरुपयोग न हो।

महाराजा रणजीत सिंह अपने समय के परिवर्तनों के प्रति भी सावधान थे। उन्होंने अनेक नये अनुसंधानों को अपनाया। अंग्रेज़ों के परामार्श से, जो महाराजा की शक्ति की शासन कुशलता के कारण उनके मित्र बन गए थे, अमृतसर में एक मुद्रणालय खोला। उन्होंने अपनी सेना को आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया, परन्तु उन्होंने पुराने हथियारों को नहीं छोड़ा जो पंजाबी बहादुरों की प्रतिभा के अनुकूल बैठते थे। अपने इतालवी सेनापति वैनतूरा को उन्होंने प्रेरित करके पंजाब की भयानक गर्मी में भी पानी को ठण्डा रखने का यंत्र बनाया।

महाराजा रणजीत सिंह अपनी प्रजा को भी नए-नए कार्यों के लिए प्रोत्साहन देते रहते थे और इस लिए इनाम भी देते थे। तलवार के मुकाबले अक्सर हुआ करते थे। निशानेबाज़ी एवं तैराकी के मुकाबले भी होते थे। पौरुष की अन्य अनेकों क्रीड़ों द्वारा महाराजा रणजीत सिंह बच्चों का भी मनोरंजन करते थे और उनमें से होनहार बहादुरों का चुनाव भी किया जाता था।

इस तरह महाराजा रणजीत सिंह ने अपने लगभग 47 वर्षों के शासनकाल में विभिन्न दिशाओं में शासन एवं आचरण के जो उदाहरण स्थापित किये, उनके कारण पंजाब में साहस, शूरबीरता एवं खुशहाली की अच्छी प्रथाएं बनी। इन प्रथाओं को अपनाते हुए आज केवल पंजाब ही नहीं, हमारे देश के अनेक राज्य नव-भारत के निर्माण में अपना रचनात्मक योगदान दे रहे हैं। महाराजा रणजीत सिंह के अनेक शासकीय एवं मानवतावादी गुणों के कारण ही, उनके आलोचक इतिहासकार सर लीपलग्रिफन को लिखना पड़ा था। "मुगल साम्राज्य के विनाशकारी तत्वों में जिस तरह महाराजा रणजीत सिंह ने अपने कम समय में लाहौर के सिख साम्राज्य का प्रशासन चलाया, उस तरह भारत का कोई भी और तत्कालीन शासक नहीं चला सका। खुशवंत सिंह अपनी पुस्तक "द सिखस" में लिखते हैं - "व्यक्ति के रूप में महाराजा रणजीत सिंह में कई ऐसी खूबियां थीं जिन्होंने उस को जनता में लोकप्रिय बना दिया था। वे महाराजा होते हुए भी किसान वर्ग से कभी दूर नहीं हुए जिस में वह जन्मे थे। पढे-लिखे न होते हुए भी उन्होंने अनुभव की पाठशाला में बहुत सीखा एवं जीवन ने उन्हें अपने साथी-संगियों के साथ नम्रता पूर्वक एवं दयालु बर्ताव करने की शिक्षा दी।"

किसी भी धर्मानुयायी के प्रति उनका बर्ताव नम्रता एवं श्रद्धा पूर्वक होता था। सिखों का सम्मान वे सहधर्मियों एवं साथियों के रूप में करते थे एवं अन्य धर्मों के लोगों के प्रति भी उनके मन में आदर की भावना होती थी, यहां तक कि मुसलमान फ़कीरों के चरणों की धूलि वे अपने सिंहासन से नीचे उतर कर अपनी घनी लम्बी दाढ़ी से साफ करते थे।

27 जून, 1839 को महाराजा रणजीत सिंह का स्वर्गवास हुआ। लेकिन उनके पद-चिन्हों पर चलते हुए आज भी नया पंजाब एवं नया भारत प्रगति की ओर मज़बूत कदम रखता जा रहा है।

महाराजा रणजीत सिंह की अमृतसर को देन

– प्रोः बलदेव सिंह

इतिहास के पन्ने साक्षी हैं कि शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब की धरती को सुशोभित करते हुए श्री अमृतसर को विशेष रूप में अलंकृत किया। श्री अमृतसर महाराजा रणजीत सिंह के राज्य का एक अटूट अंग बनने से पहले विभिन्न कटड़ों में विभाजित था एवं विभिन्न मिसलों के मुखिया इन कटड़ों के मालिक समझे जाते थे। मिश्र छज्जू मल्ल की सहायता से सदा कौर कटड़ा घनन्या पर, सरदार जैमल सिंह कटड़ा जैमल सिंह पर एवं सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया संयुक्त रूप में कटड़ा रामगढ़िया एवं कटड़ा आहलूवालिया पर काब्ज़ थे। इन मुखियों ने हरिमन्दिर के इर्द-गिर्द सड़कें, बुंगे तथा बाज़ार आदि बनवाये।

1803 में जस्सा सिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह एव "रामगढ़िया-परिवार" के मध्य अमृतसर में गुरु ग्रन्थ साहिब की उपस्थिति में एक मित्रता-संधि हुई। इसके साथ ही शेर-ए-पंजाब रामगढ़ का किला अपनी सेना से अपने कब्ज़े में करने में सफल हुए।

इसी वर्ष अमृतसर शहर महाराजा के राज्यैश्वर्य में पूर्णतया शामिल कर लिया गया। महाराजा साहिब ने अमृतसर की सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रगति के लिए कई ठोस कदम उठाये। यह आपकी कठोर परिश्रम एवं लग्न का ही परिणाम था कि अमृतसर पंजाब की आध्यात्मिक राजधानी बन गया एवं व्यापार तथा संस्कृति की दृष्टि से भी पीछे नहीं रहा। इस सभी कुछ का श्रेय निस्संदेह शेर-ए-पंजाब को ही जाता है। यद्यपि लाहौर पंजाब की राजनीतिक राजधानी बना रहा, लेकिन महाराजा ने लाहौर के अनेकों प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं व्यापारियों को अमृतसर में स्थापित होने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भारी राशि व्यय करके अमृतसर में अनेकों सुन्दर भवन एवं इमारतें बनवाई।

श्री हरिमन्दिर साहिब, जैसे कि अपनी वर्तमान भव्यता एवं स्वर्णिम

झिलमिलाहट से पर्यटकों का मन मोह लेता है। यह मुख्यत: महाराजा की ही "देन" है। उन्होंने हरिमन्दिर साहिब को कलात्मक विधि से सजाने में भी गहरी दिलचस्पी ली। इस कार्य के लिए शेर-ए-पंजाब ने 1803 में 500,000 रूपये की सहायता दी एवं चन्योट (अब पाकिस्तान में) में से मुसलमान वास्तु-शिल्पियों, राजों एवं लकड़ी का सुन्दर खुदाई-कार्य करने वालों को निमंत्रण दिया। यार मुहम्मद खां मिस्तरी, 1830 में हरिमन्दिर साहिब को स्वर्णजड़ित करने के कार्य के तकनीकी विशेषज्ञ थे।

इन सभी विशेषज्ञों का लाहौरी गेट के भीतर स्थित चन्योटियोंवाली हवेली में निवास-स्थान नियत किया गया। 1947 के दंगों में इस हवेली का नाम-निशान खत्म हो गया। हरिमन्दिर साहिब की समूची नक्काशी एवं जड़तकारी का कार्य इन कारीगरों के मुख्य वास्तु-विद बदरू मोही-उ-द्दीन की देख रेख में हुआ। 1839 में शेर-ए-पंजाब की मृत्यु के पश्चात् इस शुरू किये गये काम को समाप्त करने की ज़िम्मेवारी तीन सिख सज्जनों — भगवान सिंह जमादार, मंगल सिंह रामगढ़िया एवं राय बहादुर कल्याण
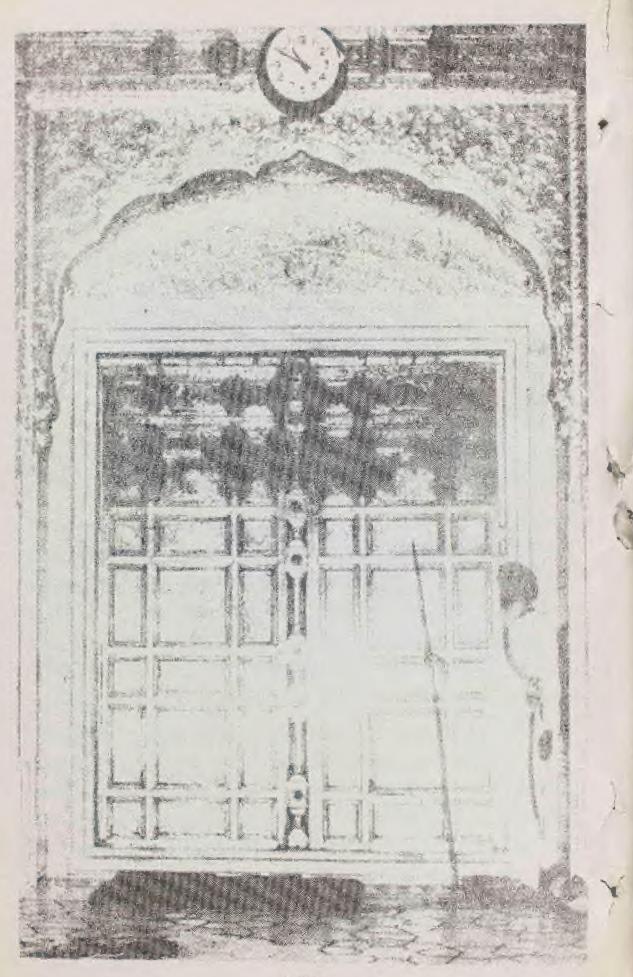
सिंह के कंधों पर आ पड़ी। मुसलमान कारीगरों के वापिस चले जाने के पश्चात् रहता कार्य स्थानीय सिख एवं हिन्दू कारीगरों द्वारा संपूर्ण किया गया।

महाराजा साहिब को चित्र, सोने के गढ़े आभूषण एवं अच्छे वस्त्र उपहार स्वरूप देने का बड़ा चाव था। इस लिए आप ने कई जाने-माने कारीगरों, सुलझे हुए चित्रकारों आदि को हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों, देहली एवं जोधपुर से आमंत्रित किया। आप के निमंत्रण पर कई पहाड़ी चित्रकार पंजाब के मैदानों में रहने के लिए आए। इन में खरखू, जीवन राम एवं हस्सन-अल-द्दीन के नाम प्रसिद्ध हैं। पहाड़ी चित्रकारों के आने से पहाड़ी लोक-गीत एवं पहाड़ी भोजन भी आए।

श्री अमृतसर आने वाले यात्रियों के लिए ये सभी सुविधाएं इस मन्तव्य से प्रदान की जाती थीं कि अधिकाधिक नागरिक इस शहर में आकर रहने लगें। शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह ने सूझ बूझ एवं दूर दृष्टि से काम लेते हुए मारवाड़ी व्यापारियों को अमृतसर में स्थित होने के लिए इस लिए आमंत्रित किया था, क्योंकि आप जानते थे कि सामाजिक क्रान्ति में व्यापार का बहुत बड़ा योगदान होता है। इस संबंध में सेठ राधाकृष्ण एवं पद्मा प्रकाश महेश्वरी सुप्रसिद्ध मारवाड़ी सज्जन हुए हैं।

महाराजा रणजीत सिंह के उद्यम के कारण अमृतसर एक सुप्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया था। एक व्यापारिक गली, जिसे इन दिनों कटड़ा आहलूवालिया के नाम से याद किया जाता है, पहले इस का नाम नौहरियां बाज़ार होता था। यह नाम मारवाड़ियों की प्रसिद्ध बिरादरी के नाम पर रखा गया था। कश्मीरी शालें आदि बनाने के लिए आप ने बहुत से कश्मीरी कारीगरों को अमृतसर बुलाया। इस से हज़ारों कश्मीरियों को यहां रोज़गार मिला।

शेर-ए-पंजाब ने न केवल व्यापारियों को अमृतसर में रहने के लिए प्रेरित किया, बल्कि अपने दरबारियों को भी अमृतसर में अपनी रिहायश स्थापित करने के लिए कहा। व्यापार, धर्म तथा उच्चाधिकारयों की तिकड़ी ने मिलजुल कर अमृतसर को कलात्मक बनाने में बहुत योगदान दिया। इस के कारण इस शहर में अनेकों हिन्दू मन्दिर, सुन्दर हवेलियां, बुर्ज महन्तों के अखाड़े एवं यात्रियों की सुविधा के लिए धर्मशालाएं बन गईं।

तत्पश्चात् महाराजा साहिब ने अमृतसर की प्रगति के लिए अनेकों कार्य किये जैसे कि हरिमन्दिर साहिब को सोने के पत्तों में स्वर्णिम रूप देना, शहर की चार दीवारी बनवाना, हरिमन्दिर साहिब की परिक्रमा में संगमरमर लगवाना, राम बाग में अपना ग्रीष्म ऋतु का महल तैयार करवाना, अपने राज्य की आध्यात्मिक राजधानी बनाना आदि।

उपर्युक्त को दृष्टिगोचर रख कर यही कहा जा सकता है कि जब तक अमृतसर शहर बसता रहेगा, महाराजा रणजीत सिंह का नाम आदरपूर्वक याद किया जाता रहेगा।

इक सरकार बाझों

– एच. आर. धीमान्

फ़िरोज़पुर - लुधियाना सड़क पर फ़िरोज़पुर से लगभग 20 किलोमीटर दूर दुनिया में सब से लम्बी नहर, राजस्थान नहर के किनारे पर एक शानदार स्मारक दिखाई देता है जो उन शूरवीर पंजाबियों की याद ताज़ा करता है, जो महाराजा रणजीत सिंह के अकाल निधन के पश्चात् दिसम्बर, 1845 से लेकर फरवरी, 1846 तक अंग्रेज़ों एवं सिख फौजियों के मध्य मुदकी, फ़िरोजशाह, सभराओं एवं चेलयां वाली में हुए युद्धों में शहीद होने वालों की याद दिलाता है।

इन शहीदों की यादगार स्थापित करने का ध्यान सर्व प्रथम 1957 में आया। उस समय यह महसूस किया गया कि मुदकी एवं फ़िरोज़शाह में अंग्रेज़ों एवं सिखों के मध्य हुए युद्धों के संबंध में जो यादगारी स्तम्भ बना रखे हैं, उन पर इस युद्ध में शहीद होने वाले शूरवीर पंजाबियों का कोई वर्णन नहीं है। इस पर क्षेत्र के लोगों द्वारा पंजाब सरकार से यह मांग की गई कि इन शूरवीर शहीदों का कोई उचित स्मारक बनना चाहिए।

फ़िरोज़शाह के ऐतिहासिक गांव में इन शहीदों को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए पहला शहीदी सम्मेलन 22 दिसम्बर, 1959 में हुआ, जहां सरकार द्वारा यह घोषणा की गई कि आगामी वर्ष तक इस संबंध में कोई ठोस कार्यवाई की जायेगी। 1960 में जब इस गांव में दूसरा शहीदी सम्मेलन हुआ तो सरकार ने यादगार बनाने के वास्ते एक कमेटी की घोषणा की। इस कमेटी ने क्षेत्र के लोगों से इस गांव में इन शहीदों की याद में शहीदी यादगार कायम करने के लिए लगभग 2 लाख रुपए एकत्रिक किये और 23 दिसम्बर, 1961 को पंजाब सरकार ने इस गांव में लगभग 15 लाख रुपये के परिव्यय से बनाये जाने वाले स्मारक का शिलान्यास किया। किन्तु 1962 में भारत पर चीन द्वारा किये गये आक्रमण एवं उसके पश्चात् 1965 में भारत तथा पाकिस्तान के मध्य हुए युद्ध के कारण इस स्मारक का
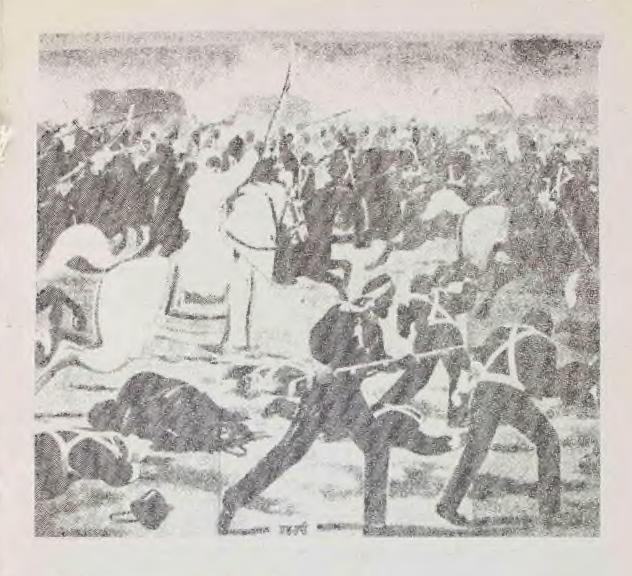
काम शिलान्यास से आगे न बढ़ सका।

इसके पश्चात् पंजाब सरकार ने फ़िरोज़शाह में इस स्मारक के कार्य का आरम्भ करवा कर सम्पन्न करने की घोषणा की। इसके पश्चात् यह फैसला हुआ कि अंग्रेज़ों एवं सिखों के मध्य हुई इन लड़ाईयों में शहीदों की यादगार फ़िरोज़शाह गांव के स्थान पर फ़िरोज़पुर-लुधियाना सड़क पर राजस्थान नहर के निकट बनाई जाये। इस यादगार का नींव पत्थर 11 फ़रवरी, 1973 को रखा गया एवं इस का उद्घाटन अप्रैल, 1976 में स्वर्गीय श्री संजय गांधी जी ने किया।

अंग्रेज़ों एवं सिखों की पहली लड़ाई फ़िरोज़पुर के ऐतिहासिक गांव मुदकी में दिसम्बर 1845 में हुई थी। पंजाब ही नहीं, बल्कि समूचे भारत के इतिहास में इस युद्ध का विशेष महत्व है क्योंकि इस युद्ध में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा धर्म निर्पेक्ष पद्धति पर स्थापित किये गये पंजाबियों के

राज्य की सेनाएं एवं दूसरी ओर अंग्रेज़ों की सेनाएं थीं जो समूचे भारत को अपना व्यापारिक केन्द्र बनाने एवं अपने राज्य का क्षेत्र बढ़ाने के लिए लड़ रही थीं।

सिख सेनाओं का कमानधारी सरदार लाल सिंह था और अंग्रेज़ी सेना की कमान सर गफ कर रहे थे। सिख सेना की संख्या लगभग 35-40 हज़ार थी जबकि सर गफ के अधीन 11 हज़ार सैनिक थे। पहले पड़ाव पर सिख सैनिकों ने अंग्रेज़ों को दबा लिया, लेकिन जब जीत होने वाली थी तो सिख सैनिकों के सेनापति ने एक पूर्व निर्धारित षड़यंत्र के अधीन विश्वासघात किया एवं वह इस संकटपूर्ण घड़ी में सिख सेनाओं को अकेले छोड़ कर रण-भूमि से गायब हो गया। सिख सेना अपने सेनापति के बिना लड़ती रही, फलतः सिखों की जीत हार में परिवर्तित हो गई।

यद्यपि इस युद्ध में अंग्रेज़ जीत गये तथापि उनके लगभग 215 सैनिक मारे गये एवं 675 के लगभग घायल हो गये। सिखों का भी काफी नुकसान हुआ एवं उनकी 17 तोपें उनके हाथों से जाती रहीं। प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार कन्निघम लिखता है कि "लाल सिंह आक्रमण का अग्रणी था लेकिन अपने पूर्व निर्धारित मन्तव्य के अनुसार उसने अपनी सेना को युद्ध में फंसा दिया। बाद में सेना को बिना कमान के लड़ाई के लिए छोड़ कर

खिसक गया। सिखों की हार हुई एवं उनकी 17 तोपें उन से छिन गई, लेकिन अंग्रेज़ों की जीत इतनी मुकम्मल नहीं थी जितनी कि बहुत से युद्धों में विजेताओं की होती थी।"

इस के पश्चात् फ़िरोज़शाह (जिसे कभी फेरु शहर कहा जाता था) सभराओं एवं चेलयां वालों की लड़ाइयां हुई। इनमें सिंह बहुत वीरता से लड़े। इस समय का प्रसिद्ध पंजाबी कवि शाह मुहम्मद लिखता है :

आईआं पलटनां बीड़ के तोपखाने
अग्गों सिंघां ने पासड़े तोड़ सुट्टे।
सेवा सिंह ते माखे खां होए सिद्धे,
हल्ले तिन्न फरंगीआं दे मोड़ सुट्टे।
शाम सिंघ सरदार अटारी वाले
बन्ह शस्त्री जोड़ विछोड़ सुट्टे।
शाह मुहम्मदा सिंघां ने गोरियां दे
वांग निम्बूआं लहू निचोड़ सुट्टे।

लेकिन अन्त को सिंह हार गये क्योंकि उनके बड़े जरनैल अंग्रेज़ों से मिल गये थे एवं उनसे आज्ञा लेते थे।

एंग्लो सिख वार मैमोरियल को वर्तमान रूप देने का श्रेय पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप कुलपति डॉ० एम. एस. रणधावा को जाता है जिन्होंने 1968 में यह विचार प्रकट किया था कि इस यादगार में एक अजायबघर तथा चित्रों की एक गैलरी भी होनी चाहिए ताकि इस यादगार को देखने के लिए आने वाले लोगों को 18वीं एवं 19वीं शताब्दी के पंजाब के इतिहास की अधिकाधिक जानकारी हो सके। डॉ० रणधावा के आदेशानुसार ही उपर्युक्त विश्वविद्यालय के वरिष्ट वास्तु विद् श्री हरबिन्दर सिंह चोपड़ा ने स्मारक का डिज़ाइन किया था, जिस पर लगभग 10 लाख रुपये व्यय हुए। इस स्मारक के लिए ज़मीन गांव घल्ल खुर्द की पंचायत ने दी थी।

इस स्मारक में मुदकी, फ़िरोज़शाह, सभराओं एवं चेलयां वाला युद्धों के जो बहुत बड़े-2 चित्र लगे हुए हैं, वे प्रसिद्ध चित्रकार स. कृपाल सिंह के बनाये हुए हैं। बताया जाता है कि भारत में किसी भी युद्ध के जो चित्र बनाये गये हैं, ये सर्वाधिक बड़े चित्र हैं। एक चित्र 20 फुट लम्बा एवं10

फुट चौड़ा है। इतने बड़े चित्रों को तैयार करने के लिए स. कृपाल सिंह को चण्डीगढ़ में अपनी कोठी में बाहर एक शामियाना लगाना पड़ा एवं इन चित्रों को तैयार करने में प्रायः 3 वर्ष लगे। इस यादगार में जनरल गफ, जनरल शाम सिंह अटारी वाला एवं तेज़ सिंह के जो चित्र लगे हुए हैं, वे भी श्री कृपाल सिंह ने बनाये हुए थे। रानी जिन्दां, लार्ड हार्डिंग, लार्ड डल्हौज़ी, महाराजा दलीप सिंह, लाल सिंह, गुलाब सिंह, फकीर नूरु-उ-द्दीन एवं दीवान मूल राज के चित्र जो इस यादगार में लगे हुए हैं, देहली के चित्रकार स. जसवन्त सिंह के बनाये हुए हैं।

ज़िला फ़िरोज़पुर की पावन धरती को यह गौरव प्राप्त है कि पंजाबियों द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए सब से अधिक खून इसी धरती पर बहाया गया तथा पंजाब और भारत के भाग्य का निर्णय कई बार सतलुज के किनारों पर ही होता रहा है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सिख अंग्रेज़ों के साथ हुए इस युद्ध में कभी पराजित न होते, यदि इस समय स. पहाड़ा सिंह गद्दारी न करता। ऐसे गद्दारों के परिणाम स्वरूप ही सिखों ने सभराओं के रणक्षेत्र में जिस वीरता के साथ लड़ते हुए शहीदी प्राप्त की वह भावी पीढ़ियों को सदैव देश के लिए मर मिटने का उत्साह देती रहेगी।

गत दिनों जब पंजाब के मुख्य मंत्री जी ने इस स्मारक को देखा तो उन्होंने महसूस किया कि इस की समुचित रूप से देखभाल नहीं हो रही। उन्होंने संबंधित अधिकारियों को आदेश किया कि यह एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय स्मारक है। इस लिए इसे और अच्छा बनाने हेतु इस के सम्यक् प्रकार से संरक्षण के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाये जिससे जहां देश के स्वतंत्रता संग्राम की याद ताज़ा हो जाये, वहां शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की कमी को भी महसूस किया जा सके।

सम्पादक :—**कुलदीप राय 'दीप'**